★ प्रकाशक—
किशोर कल्पना कान्त
प्रकाशकीय सम्पादक
सिद्ध-साहित्य-शोध-संस्थान
रतनगढ़ (राजस्थान)

★ लेखक—
सूर्यशंकर पारीक

★ चित्रकार—
सत्यदेव "सत्यार्थी"

★ मूल्य—
दस रुपये

★ प्रथम संस्करण—
चैत्र शुक्ला सप्तमी, २०१३

★ मुद्रक—
श्रीराम शर्मा
धर्म प्रेस, रतनगढ़

प्रकाशकीय—

प्रस्तुत ग्रंथ आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष एवं गौरव का अनुभव होरहा है। हर्ष तो इस लिए कि हम अपने इस कार्य को निभाने में सफल हुए और गौरव इस बात का है कि हमारी कार्य-शक्ति सत्कार्यों की ओर अग्रसर हुई है। निःसन्देह ग्रंथ की सामग्री प्राचीन है। उसे सँजोने सँवारने में लेखक ने अथक परिश्रम ही नहीं किया, अपितु ग्राम-ग्राम में घूम फिर कर इस पुस्तक की सामग्री एकत्रित की है। एकनिष्ठ होकर सामग्री का अध्ययन एवं मनन कर, उसे सरल-सुबोध भाषा में सिद्ध चरित्र के रूप में प्रस्तुत किया है।

बहुत समय से भाई पारीकजी की इच्छा इस सामग्री को ग्रंथाकार प्रकाशित कराने की होरही थी, किन्तु यह कार्य इतना सरल और सस्ता न था। अतः इसके लेखन तथा प्रकाशन में पूरा समय लग गया। इस ग्रंथ के पाठक, ग्राहक और सहयोगी जिस अधीरता से इसके प्रकाशन की प्रतीक्षा कर रहे थे, वह हमारे अनुभव में थी, परन्तु कुछ ऐसी अड़चनें आगई थीं, जिनके कारण शीघ्र प्रकाशित करवा देने में सफल न होसके। मुद्रणकार्य प्रारम्भ होने एवं पांच अध्याय तक छप चुकने के पश्चात भी कई कारणों से कार्य आगे न बढ सका।

श्री सूर्यशंकरजी पारीक वर्षों से सिद्ध-सम्प्रदाय के जसनाथी-साहित्य का अन्वेषण और शोधकार्य कर रहे हैं। राजस्थान के इस मौलिक संत-साहित्य का संचय कर हिन्दी के साहित्य-भण्डार को पूर्ण कर उसकी अक्षुण्णता में पूरा योग देरहे हैं।

विद्वानों की मान्यता है, कि राजस्थानी ने हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाने में पूरा योग दिया है। चन्द बरदाई, मीरा, पृथ्वीराज आदि महा-कवियों की साहित्य-साधना हिन्दी-साहित्य भूला नहीं सकता। राजस्थान का वीर रस तो सर्व प्रसिद्ध है ही, लेकिन इसके अतिरिक्त भी मरुभूमि के धूलि कणों में अन्य रसों के हीरे, मानक, मोती बिखरे पड़े हैं, जिन्हें अथक परिश्रम से खोज कर भाई पारीकजी द्वारा प्रथम 'नौलखाहार-सिद्ध-चरित्र, के रूप में राष्ट्र-भाषा हिन्दी के गले में पहिनाया जारहा है।

सिद्ध-सम्प्रदाय के जसनाथी साहित्य की अनेक रसप्लावित धारायें

हैं; जिसमें नीति के नियम, उपकारात्मक उपदेश, ज्ञानयोग की श्रेष्ठता और साहित्य के शृङ्गार की विभिन्न रसवन्तियाँ प्रवाहित होरही हैं। इसी लिए 'सिद्ध-चरित्र' राजस्थानी और हिन्दी का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ बन गया है। इसमें राजस्थान के प्राचीन रहन-सहन रीति-रिवाज और संस्कृति के साक्षात् दर्शन होते हैं। राजस्थान का यह पाँच सौ वर्ष पुराना साहित्य अनेक परिस्थितियों में से गुजरने के कारण सन्त-साहित्य की अमर निधि है। अतः इसका मूल्याङ्कन करने के लिए ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को दृष्टिगत रखना पड़ेगा। संत पुरुषों की जीवनी और उनकी जीवित समाधियों का वर्णन तो इसमें हुआ ही है तथा सिद्ध सम्प्रदाय की विचारधारा और मान्यताओं का भी लेखक ने विद्वता पूर्वक अच्छी भाँति निभाया है पारीकजी का यह सामग्री एकत्रित करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। ऐतिहासिक तारतम्य मिला कर सामग्री का अत्यन्त महत्वपूर्ण बनाने के लिए और ठोस तथ्य ढूँढने के लिए बौद्धिक श्रम और परिशीलन करना पड़ा है। वस्तुतः पारीकजी का यह कार्य श्लाघनीय है।

अन्त में मैं तो यही कहूँगा पारीकजी के इस कार्य की प्रशंसा करने की आवश्यकता नहीं जो कुछ इन्होंने किया है वह आपके सामने है। आवश्यकता तो इस बात की है कि ऐसे कार्यों में पूरा सहयोग देकर पारीकजी के उत्साह को द्विगुणित किया जाना चाहिए। केवल सराहना में तथ्य नहीं—

प्रकाशन सम्बन्धी कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं। पाठक क्षमा
संस्करण में त्रुटि-शोधन की ओर पूरी सतर्कता बरती जावेगी।

जसनाथी साहित्याध्यान की 'जीव समझोतरी' के बाद
चरित्र पुष्प आपके हाथों में सौंपा जारहा है। इसके अतिरिक्त
जसनाथी-साहित्य हमारे पास संग्रहीत है। इसी सामग्री के लिए
शन योजना बन रही है। सुहृद पाठकों का सहयोग रहा तो अप
यह प्राचीन साहित्य प्रकाशन-योजना सफल होगी। आगामी
रूपरेखा तो तैयार करली गई है जिनमें जसनाथ ग्रन्थावली
ग्रंथावली और सबद ग्रंथ के शीघ्र प्रकाशन की व्यवस्था की

आप सभी का सहयोग वाँछनीय है।

—प्रका०

सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी

सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी की श्रद्धा में—

सूर्यशकर

भूमिका

विशाल भारत के आँचल में राजस्थान अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। राजस्थान की भूमि वीर-प्रसू ही नहीं, अपितु सिद्ध, संत-प्रसविनी भी रही है। जहाँ इस धरित्री ने अपनी गोद में खेलने वाले वीरों को रणांगण में निडरतापूर्वक जूझते हुए देखकर अपना मस्तक गर्वोन्नत किया है, वहाँ आत्म तत्त्व का साक्षात्कार करने वाले, सिद्ध-संतों की अमृतमयी अनहद-वाणी सुन कर परमाह्लाद का अनुभव भी किया है।

राजस्थान का इतिहास राजाओं तथा राज्यों से सम्बन्धित होने के कारण प्रारम्भ से ही ख्यातों के रूप में संकलित होता रहा है। उसमें वीरों का शौर्य-वीर्य चारण-भाटों की ओजस्विनी वाणी का पाथेय बनकर, इतिहास का आधार बन गया, पर आत्मतत्त्व का साक्षात्कार करने वाले सिद्ध-संतों की अनहद वाणी जन-जन के गले का हार बनकर भी न इतिहास का आधार बन सकी और न मुद्रित होकर प्रकाश में ही आ सकी। जो कुछ वाणियाँ मुद्रित होकर प्रकाश में आई हैं, वे राजस्थान के सिद्ध-संतों की विशाल और बहुमुखी परम्परा को देखते हुए संतोषजनक नहीं कही जा सकती हैं। विभिन्न प्रवाहों में प्रवाहित होनेवाली संत-गौरवगाथा आज भी जनवाणी का आधार बनकर विशिष्ट विशिष्ट अवसरों पर जन-कंठों से स्फुटित होती रहती है। उसे लिपिबद्ध करना और जनता के हाथों तक पहुँचाना बहुत ही दुष्कर और श्रम-साध्य कार्य है।

लोकपुरुषों के इतिवृत्त और उनकी वाणी को किसी ने ख्यातों का आधार नहीं बनाया। हाँ, क्षत्रिय कुलोत्पन्न एवं राजाओं और राज्यों से सम्बन्धित महापुरुषों के प्रसंग का यत्र तत्र यत्किंचित् वर्णन भले ही सुलभ हो, पर ऐसे विवरणों से इतिहास का पूर्ण बोध नहीं होता है। बहुत से ऐसे महा-पुरुषों का तो ख्यातों पर आधारित-इतिहास में नामोल्लेख भी नहीं मिलता, पर इससे उनका महत्व कम नहीं होता है। रजवाड़ों का इतिहास साधन सुलभ होने से विद्वानों द्वारा सुसम्पादित होकर मुद्रित भी हुआ है, पर राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में अवतरित लोक-कल्याणकारी भावनाओं को पनपाने, सौहार्द

और बन्धुत्व की भावना जागृत करने, मानमर्दित धर्म-नियमों का प्रतिपादन करने वाले और व्यथित समाज को अपने ज्ञानामृत से पुलकित कर सुपथगामी बनाने वाले अनेक सिद्ध महापुरुषों का इतिहास सर्वांगरूपेण अब तक अंधकार में ही है। ऐसे महापुरुषों की जीवनियाँ और उनके द्वारा सातों की संख्या में निर्मित 'सबद और वाणियाँ' अब तक केवल श्रुति परम्परा से कण्ठस्थ होकर ही सुरक्षित रहती आई हैं।

रामस्नेही, दादूपंथी आदि अनेक सम्प्रदायों ने अपने २ सम्प्रदायों से सम्बन्धित ऐतिह्य और वाणियों का संकलन करके उन्हें कालकृत विकृतियों से बचा लिया पर राजस्थान के बीकानेर और जोधपुर के विस्तृत भूभाग में व्याप्त सिद्ध-सम्प्रदाय के क्रमबद्ध इतिहास और सिद्धाचार्य की परम्परा को यथावस्थित बनाए रखने वाले सिद्धों के 'सबदों' और वाणियों के संकलन की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया था।

मध्यकालीन भारत में भारतीय सिद्ध पुरुषों के कारण भक्ति, योग एवं ज्ञान की त्रिवेणी प्रवाहित होकर जिस पवित्र संस्कृति का नव आलोक फैला, उसमें सिद्धाचार्य भगवान् श्री जसनाथजी का भी अपना विशिष्ट स्थान है। सिद्धाचार्य अपने समय के सिद्ध पुरुष ही नहीं अपितु राजस्थान के आदि महापुरुष भी थे। उनकी उज्ज्वल कीर्ति ने उस समय मरुधरा के किसी एक कोने को ही नहीं, दसों दिशाओं को देदीप्यमान कर दिया था। उनके बाद तो सिद्धों की ऐसी परम्परा चली कि जिसने सिद्धाचार्य के आदर्श को सामने रखकर राजस्थान के जनमन में नैतिक उत्थान के एक बीज बो दिये थे जिसकी जड़ें आज भी सुदृढ़रूप से अवस्थित हैं लेकिन यह सिद्ध-साहित्य और इतिहास अब तक प्रायः अमुद्रित ही रहा। इसी कारण सर्वसाधारण उससे अधिक लाभ न उठा सका।

जसनाथी-साहित्य एवं इतिहास की ओर मेरी प्रवृत्ति होने का भी एक कारण है। उसे यहाँ लिखना अप्रासंगिक न होगा—

बात वि. सं. १९९२ की है, रतनगढ़ (बीकानेर) में स्थित परमहंसों के समाधिस्थल पर जसनाथी सिद्धों द्वारा अग्निनृत्य का प्रदर्शन किया गया था। सुनकर मैं भी अपने कुछ बाल साथियों के साथ नृत्य देखने चला गया।

मैंने देखा, राजस्थानी वेश-भूषा मे गेरुवे रग की पगडी बॉधे कुछ व्यक्ति एक पक्ति में बैठे थे। पक्ति के मध्य मे बैठे हुए व्यक्ति के सामने नगाडा जोडी रखी थी, जिसे वह बजा रहा था और अन्य व्यक्ति कलापूर्ण ढग से मजीरे बजा रहे थे। सभी लोग गीत गा रहे थे। यद्यपि गीत दुर्बोध था, फिर भी उसकी स्वर लहरी से श्रोताओं को अपार आनन्दानुभूति हो रही थी। नर्तक जो उस समय तक बैठे थे, गीत की चढती हुई ध्वनि को सुनकर आत्म-विभोर हो उठे। उन्हे अपने तन-बदन की सुधबुध न रही और वे अलमस्त होकर लाल लाल धधकते हुए अगारों के ढेर में बिना किसी रासायनिक द्रव्य के सहारे नगे पैरा कूद पड़े और नाचने लगे। मैंने जीवन में प्रथम बार ही ऐसा दृश्य देखा था। आँखों पर विश्वास न हुआ। मै मन्त्रमुग्ध-सा बन गया और आश्चर्य की लहरों मे मेरा मन डूबा ही रह गया।

रात भर मैं इस सगीत और नृत्य का रसपान करता रहा। प्रात काल साथ आये हुए साथी अपने २ घर चले गये, पर मैं इतना तन्मय होगया था कि वहाँ से हिलने का मन ही न हुआ। जब तक वे नर्तक लौट न गये तबतक मै वहीं उनके साथ ही साथ रहा। रात्रि मे सुने गये 'सबदो' और नृत्य के बारे में विभिन्न प्रश्न गायक एव नर्तक सिद्धों से पूछता रहा, पर जिज्ञासा शान्त न हुई।

घर आया। मॉ को समस्त बात कह सुनाई। मॉ ने मुस्कराते हुए कहा— "तुमने तो यह नृत्य आज ही देखा है, लेकिन इस नृत्य और नर्तकों के साथ अपना एक अटूट सम्बन्ध है। जब हम गॉव में रहा करते थे, तब वर्ष मे एक बार तो यह नृत्य अवश्य ही अपने घर करवाया करते थे।"

अपने कुल के साथ इस नृत्य का पुरातन सम्बन्ध जानकर मुझे प्रसन्नता हुई। यद्यपि सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के देवत्व से मैं भली भॉति परिचित था पर यह जानकारी नई नई मिली थी कि मैं सिद्ध-सम्प्रदाय के कुलगुरु के कुल में उत्पन्न हुआ हूँ।

माताजी ने मुझे इस विषय की पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए अपने घर सुरक्षित रखे हुए बही-पत्र इत्यादि देखने के लिए दिये। उसी दिन से मैं इस कार्य में मनोयोग से जुट गया। जसनाथी-साहित्य के प्रति मन में

आकर्षण पैदा होगया और माताजी के प्रोत्साहन ने मुझे इस कार्य में लग जाने को और भी अधिक प्रोत्साहित कर दिया। फिर क्या था ? मैंने मुख्य मुख्य जसनाथी-धामों का भ्रमण किया। यत्रतत्र बिखरी इतिहास तथा साहित्य-सम्बन्धी सामग्री प्राप्त करने में जुट गया। इस सम्बन्ध में मैंने कई गाँवों का भ्रमण किया और प्राप्त सामग्री लिपिबद्ध की। इस लम्बे काल में मुझे जसनाथी-साहित्य-मर्मीपियों टीकाई महंतों सिद्धों और विरक्त-संतों से साक्षात्कार करने का सौभाग्य मिला। इनमें श्री गुलाबनाथ जी महाराज (डोंसरा वाले) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनके आग्रह से एक बार घूमे हुए स्थानों का उनके साथ साथ पुनः भ्रमण करना पड़ा।

इस अवधि में मैंने मा॰ हनुमानप्रसाद शर्मा के साथ श्री लालनाथजी परम हंस द्वारा रचित 'जीवसमझूतरी' का सम्पादन किया और 'पारीक-सदन' द्वारा इस प्रकाशित के पश्चात् मेरी यह इच्छा रही कि इस प्रकार छोटी-छोटी पुस्तिकाओं के रूप में जसनाथी-साहित्य की सुन्दर सुन्दर कृतियाँ सुसंपादित रूप में प्रकाशित की जावें। श्री कतरियासर के मेले पर इस ओर अभिरुचि रखने वाले जसनाथ मतानुयायी लोगों से विचार विनिमय हुआ। उनमें कुछ लोगों का आग्रह रहा कि सर्व प्रथम जसनाथी-साहित्य के प्रमुख भाग 'सबदों' का प्रकाशित किया जाय और कुछ लोगों का यह सुझाव रहा कि सबसे पहले सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी और उनकी परम्परा का इतिहास लिखा जाय। मुझे भी यही रुचा कि पहले जसनाथी परम्परा का 'सबदों' पर आधारित परिचय जनता के सामने रखा जाय।

प्रस्तुत ग्रंथ में वे ही 'सबद' आये हैं, जो किसी घटना विशेष से सम्बन्धित हैं। ये सबद वि॰ सं॰ १६ ५ के एक हस्त लिखित गुटके से लिए गये हैं जिसकी प्रतिकृति बीकानेर स्थित सिद्धों की जगह के सिर्मोंवा मुलनाथजी ने व्यास गोपीनाथ से करवाई थी। स्वयं गोपीनाथ ने गुटके के अन्त में ऐसा उल्लेख किया है। इस हस्तलिखित गुटके के अतिरिक्त दो गुटके और भी हमारे संग्रह में हैं लेकिन स्पष्टता एवं सुन्दरता की दृष्टि से वे उक्त गुटके की बराबरी नहीं कर सकते।

गुटके के सबदों के अतिरिक्त, जो सबद ग्रंथ में प्रयुक्त हुए हैं वे

लोगों से जबानी सुनकर लिखे गये हैं और उनका संशोधन अन्य अनेक लोगों से सुनकर किया गया है। मैंने अपनी ओर से किसी 'सबद' में कोई परिवर्तन नहीं किया है। षष्ठ-अध्याय में प्रयुक्त 'कडा' पद्यों का ऐतिहासिक क्रम जोडने के लिए यथा रुचि प्रयोग किया गया है।

समाधियों के क्रम में कोई हेर फेर नहीं किया गया है। जिस महा-पुरुष की समाधि जहाँ हुई, उसका परिचय उसी गाँव, बाडी के प्रसग में दे दिया गया है चाहे वह सिद्ध-पुरुष अन्य किसी बाडी का प्रमुख ही क्यों न रहा हो।

कई बार ऐसे प्रसग भी आये हैं कि जीवित-समाधियों का परिचय गॉव वालों को एकत्रित कर सामुहिक रूप से प्राप्त करना पडा है। कुछ प्रसग उनके द्वारा प्रदत्त प्राचीन पत्र, वही, परवाने, पट्टे एव ताम्र-पत्रों को देखकर लिखे गये है। कहीं-कहीं विस्तार भय से अनेक सत्पुरुषों के प्रवाद-गीतों, छावलियो एव सबदों के 'सबद-ग्रथ' की सामग्री समझ कर छोड़ दिये गये हैं।

जसनाथी-धामों में स्थित मन्दिरों, छतरियों, देवलियों तथा सुरम्य बाडियों के चित्र हमने लिए थे, पर आर्थिक स्थिति को देखकर 'सिद्ध-चरित्र' में उन चित्रों के देनेका विचार छोड देना पडा।

इस कार्य में मुझे जसनाथ-सम्प्रदाय के व्यक्तियों ने पूर्ण सहयोग दिया है। वे अपने हैं, उनके विषय में क्या कहूँ ? पर परमपूज्या माताजी और श्री गुलाबनाथजी के प्रेरणादायक शब्द कि-बेटा! जसनाथी-साहित्य और इतिहास का उद्धार करने का बीडा बडो से बडी कठिनाइयो का सामना करके भी तुम्हें उठाना है।" मुझे निरतर प्रेरणा देते रहे हैं।

सर्व श्री वैद्य प्रवर प० वनावीशजी गोस्वामी, श्री रामदत्त जी सॉकृत्य, श्री सूर्यप्रकाशजी शास्त्री, श्री इन्द्रचन्द्र शर्मा आदि साथियों ने समय समय पर सुन्दर सुझाव और सहयोग देकर मेरा साहस बढाया है। मैं इनका आभारी हूँ।

श्री गजानन्दजी ज्योतिर्विद् (तारानगर) का विशेष आभारी हूँ जिन्होंने सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी का जन्माङ्गम् बनाने में अपनी पूर्ण योग्यता का

परिश्रम किया है। डा० कन्हैयालालजी सहल (पिलानी) ने 'कं सवई' की हिन्दी में सुबोध टीका करके सहयोग दिया। श्री सत्यदेवजी 'सत्यार्थी' ने श्री अमरनाथजी का चित्र एवं पुस्तक का आवरण बनाकर इसके सौन्दर्य को बढ़ाने में पूर्ण भाग लिया है जिसके लिए मैं विशेष धन्यवादार्ह हैं। स्वामी श्री बालकनाथजी परमहंस के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापन करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ, जिन्होंने एक विवादस्पद को सुलझाने का कष्ट किया।

अपने परम प्रिय साथी शिशार कमला कान्त के लिए किन शब्दों में कृतज्ञता ज्ञापन करूँ? जिन्होंने इस पुस्तक को सर्वांगपूर्ण बनाने एवं प्रकाशित करने में मुझे अथक सहयोग दिया है। इनके अतिरिक्त श्री सामदेव 'मधुप", वासुदेवजी रूंगटा आदि ज्ञाताज्ञात सभी महानुभावों का आभारी हूँ जो मुझे समय समय पर सहयोग देते रहे हैं। पूज्य भा० गोवर्धनप्रसादजी एवं सांवतरामजी को भी नहीं भुलाया जा सकता जिन्होंने बराबर मुझे इस कार्य के लिए उत्साहित किया।

मैं इस कार्य में कितना सफल हुआ हूँ। इसका निर्णय विज्ञ पाठक स्वयं करेंगे। पर मैं यह कार्य करके गौरव का अनुभव अवश्य कर रहा हूँ कि मैं शिवधामवासी श्री गुलाबरायजी की आकांक्षा को यत्किंचित रूप में पूर्ण करने योग्य बन सका हूँ। मैं समझता हूँ कि मेरा यह प्रयास सर्वांग सम्पन्न नहीं है फिर भी सिद्धाचार्य श्री अमरनाथजी और उनके परम्परा के इतिहास के भावी अन्वेषकों के लिए राजमार्ग का काम देगा।

विज्ञ पाठकों से प्रार्थना है कि अल्पज्ञता और प्रमादवश इस ग्रन्थ में रही त्रुटियों के लिए क्षमा करते हुए उचित सुझाव देकर मुझे कृतार्थ करेंगे जिससे द्वितीय संस्करण सुन्दर और अधिक उपादेय बन सके।

पारीक-सदन, रतनगढ़
माघ शुक्ला सप्तमी सं० २०१३

सूर्यशंकर पारीक

प्राक्कथन

विश्वकल्याणार्थ कृतसङ्कल्प सिद्धमहात्माओं ने समसामयिक समाज की आध्यात्मिक, राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक परिस्थिति को सुरक्षित रखते हुए उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अपने जीवन की आहुतियाँ अनेक बार दी हैं। श्री जसनाथ जी का अवतीर्णकाल "परित्राणाय साधूनाम्" की उक्ति के अनुसार ठीक उसी समय आँका जाता है जब धार्मिक-असहिष्णु, अत्याचारी मुसलमान शासकों के क्रूर शासन से त्रस्त तथा अपमानित हो हिन्दूजाति अपने कर्तव्यों से च्युत होकर निराशा में डूब चुकी थी। वह निराशा का घोर अन्धकार आशा के दिव्यालोक में तब परिणत, हुआ जब आपने श्रद्धान्वित मानव समाज को सत्य अहिंसा, प्राणियों पर दया, यज्ञानुष्ठान आदि नियमों का पालन करते हुए सर्वतोभावेन हिन्दू-संस्कृति की रक्षा करने का उपदेश दिया। उपदिष्ट नियमों का निष्ठापूर्वक पालन करने से उनके अनुयायियों का जीवन-पथ सिद्धियों से चमत्कृत हो उठा और वह सब "सिद्धसम्प्रदाय" नाम से विख्यात होगया। सम्प्रदाय के मौलिक आचार्य होने के कारण श्री जसनाथ जी "सिद्धाचार्य" कहलाये।

सिद्धाचार्य ने लोककल्याण की भावना तथा संस्कृति-रक्षण को विशेष महत्त्व देते हुए नियमित यज्ञानुष्ठान पर अधिक बल दिया और वह यज्ञानुष्ठान सिद्धसम्प्रदाय में आज तक बड़ी श्रद्धा के साथ किया जाता है। सम्भव है, इसी से सिद्धों में अपेक्षाकृत नाना सद्गुणों का समावेश पाया जाता है। इस विषय में ऋग्वेद का प्रथम मन्त्र—

ॐ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्।

"मैं अग्निदेव की स्तुति करता हूँ, याचना करता हूँ। वे पुरोहित, ऋत्विक् यज्ञ के देवता, देवताओं के आह्वाता हैं और श्रेष्ठतम रत्नों की खान हैं वे हमें उत्कृष्ट-रत्नों (सद्गुणों) को प्रदान करें।'

ऋषि मुनियों ने वैदिक यज्ञ विधान के द्वारा विश्वभावना का जो पुनीत स्रोत प्रवाहित किया वह अविरत गति से ऋजु पथ-पथ में सृष्टि के आदिकाल से आज तक बहता आ रहा है। सिद्धाचार्य ने उस इस महत्त्व में घोषित होने की अपेक्षा अधिक विस्तृत किया है। आपकी उपकार परम्परा में से दो कार्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं एक तो—याज्ञिक अनुष्ठान रूप पतितपावनी सुरसरि धारा को मानव समाज के रीढ़ भूत उपरो कृषकों के जीवनक्षेत्र में प्रवाहित कर उन्हें तथा धरा को महान उपकृत किया है क्योंकि कृषि-लीला की आधारशिला वर्षा है और वर्षा की सुलभता यज्ञ में निहित है

> अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
> यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥ गीता ३-१४,

दूसरे गुरुतर कार्य द्वारा आपने वेदों तथा उपनिषदों के निगूढ़तम आध्यात्मिक तत्त्वों का सरल एवं सुबोध शैली से पदों (सबदों) में गुम्फित करके जनसाधारण के मानस पटल पर अंकित कर वैदिक संस्कृति को अनुप्राण बनाते हुए जन-जीवन को [illegible] किया है।

इस सम्प्रदाय के मुख्य मुख्य सिद्धपुरुषों ने जनसाधारण के कष्टों को वाक्सिद्धि द्वारा निवृत्त कर उन्हें आश्चर्यान्वित ही नहीं किया बल्कि वे सिद्ध पुरुष समय पर अपने सिद्धि-बल से राजा महाराजाओं द्वारा सम्मानित भी हुए हैं। भारत के तात्कालिक क्रूर शासक औरंगजेब को नत मस्तक कराने का अमिट श्रेय स्वनामधन्य की यौगिक चमत्कृतियों का ही है। उन महापुरुषों की जीवनधारा तो काल के अनन्त स्रोत में विलीन हो गई परन्तु काल के वक्षस्थल पर वे अपना अक्षय चिह्न छोड़ गये हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ में सुधाम सम्पादक ने सिद्ध सम्प्रदाय के विस्तृत साहित्य का एक मूल संग्रह ही नहीं किया है अपितु अति परम्परागत सम्पन्न साहित्य का मूलरूप देकर अपनी साहित्यनिष्ठा का परिचय दिया है। अत्यधिक परिश्रम एवं पर्यटन से प्राप्त ताम्रपत्रों शिलालेखों शुभ समाधिस्थलों तथा चरित्रों का संग्रह कर सिद्ध सम्प्रदाय के इतिवृत्त को सजीव बनाते हुए भी पदों के

अतीतान्धकार में विलीन श्री जसनाथजी के जन्मलग्न को खोज निकाल कर तो लेखक ने पुरातत्त्व शोधशीलता का एक आदर्श उपस्थित कर दिया है।

पारीकजी का यह प्रयास अत्यन्त सराहनीय है। इन्होंने राजस्थानी भाषा के शब्दरत्नों को "सिद्धचरित्र" रूपी विशाल थाल में सजाकर राष्ट्रभाषा हिन्दी को समर्पित किये हैं। इससे हिन्दी के इस आक्षेप को कि—'हिन्दी भाषा में शब्दकोश की कमी है" दूर करने की दिशा में आगे कदम बढ़ाकर हिन्दी के प्राङ्गण को विशाल बनाने में पूर्ण योग दिया है। आशा है भविष्य में भी ये ऐसे कार्यों को अधिकाधिक अभिरुचि रखते हुए सम्पादित करते रहेंगे।

वै० धनाधीश गोस्वामी
आयुर्वेदालकार, आयुर्वेदाचार्य,
रतनगढ़

विषय-सूची

गुरु श्री गोरखनाथजी

सिद्ध-चरित्र

प्रथम अध्याय

राजनैतिक व भौगोलिक विवेचन

राजस्थान के अन्तर्गत भूतपूर्व बीकानेर राज्य का प्राचीन नाम 'जांगल देश' था। महाभारत में[1] इसका उल्लेख मिलता है, उस समय श्री कृष्ण, बलराम तथा उनकी सेना को जब द्वारका से 'इन्द्रप्रस्थ' (दिल्ली) आना पड़ता था तब वह इसी जागल प्रदेश में से होकर पहूँचते थे। द्वारका से दिल्ली जाने का सुमार्ग इसी जागल देश में होकर था।

---

(१) कच्छा गोपालकक्षाश्च जाङ्गला कुरुवर्णका।

(महाभारत, भीष्म पर्व, अध्याय ९, श्लोक ५६)

पंथ्य राज्य महाराज कुरुवस्ते स जाङ्गला ॥

(वही, उद्योग पर्व, अध्याय ५४, श्लोक ७)

जांगल देश के लक्षण - जिस देशमें जल और घास की कमी होती हो, वायु और धूप की प्रबलता हो और अन्नादि बहुत होता हो उसको जागल देश जानना चाहिए।

(शब्द कल्पद्रुम, काण्ड २, पृष्ठ ५२९)

भावप्रकाश में लिखा है – जहाँ आकाश स्वच्छ और उन्नत हो, जल और वृक्षों की कमी हो और शमी (खेजड़ा), कैर, बिल्व, आक, पीलु (जाळ) और बैर के वृक्ष हो उसको जागल देश कहते हैं।

(वही पृ० ५२९)

इन लक्षणों से सामान्य रूप से राजस्थान के बालू वाले प्रदेश का नाम 'जागल देश' होना अनुमान किया जा सकता है।

(बीकानेर का इतिहास पृ० १ टिप्पण)

अपहृत सुभद्रा के साथ अर्जुन ने इसी 'जांगल प्रदेश' में विधिपूर्वक विवाह किया था और उसकी स्मृति में 'सुभद्रार्जुन' नाम का नगर बसाया, जिसको अब अपभ्रंश करके 'भाद्राजुन'[1] नाम से पुकारा जाता है। भाद्राजुन में उपलब्ध एक प्राचीन शिलालेख से भी अर्जुन द्वारा अपने विवाहोपलक्ष में 'सुभद्रार्जुन' नगर के बसाये जाने की जानकारी मिलती है[2]। महाभारत के समय वर्तमान बीकानेर प्रदेश (जांगल देश) 'कुरु-राज्य' के अन्तर्गत था[3]। ऐतिहासिक नगर 'जांगलू'[4] का नाम भी जांगल देश का द्योतक है। ऐतिहासिक युग के

राजस्थान के विविध भागों के प्राचीन नाम—

(क) पौराणिक काल में—

उत्तरी भाग— जांगल

पूर्वी भाग— मत्स्य

दक्षिण पूर्वी भाग— शिवि

दक्षिणी भाग— मालवा

पश्चिमी भाग— मरु

मध्य भाग— अर्बुद

(ख) मध्ययुग में—

उत्तरी भाग जांगल

दक्षिणी भाग मेदपाट वागड़ गुर्जरत्रा

पश्चिमी भाग— मरु माड वल्ल त्रवणी

मध्य भाग— अर्बुद सपादलक्ष

(राजस्थानी अंक १ पृ ४ पाद टिप्पण)

(शोध पत्रिका भाग ४ अंक ४ पृ ७८)

(१) यह ग्राम जोधपुर राज्य में है।

(२) ठा. किशोरसिंह बार्हस्पत्य करनी चरित्र अध्याय १ पृ ३

(३) डा. ओझा बीकानेर का इतिहास पहिला भाग पृ ४९

(४) जोधपुर के उत्तर और बीकानेर के दक्षिणी हिस्से में स्थित।

अभाव में यह नहीं कहा जा सकता कि महाभारत के 'कुरु-राज्य' के पश्चात् 'जागल देश' पर किन किन राजवंशों का अधिकार हुआ। [मध्यकाल में नागवशी क्षत्रियों की राजधानी अहिच्छत्रपुर (नागोर) थी] परन्तु यह सुनिश्चित है कि ग्यारहवीं शताब्दी से इस राज्य पर जोहियों, चौहानों, साखलों,[1] भाटियों और जाटों का अधिकार अवश्य रहा[2]। इस प्रदेश के कुछ क्षेत्रों पर मुसलमानों का भी अधिकार था। वैमनस्यता के कारण उपर्युक्त शासकगण एक दूसरे से पूर्ण शत्रुता[3] रखते थे। इसीलिये प्रतिद्वन्द्वी[4] के अधिकृत क्षेत्रों पर वे लूट खसोट कर, वहा की प्रजा का प्रताडन करते रहते थे और अपहृत धनराशि को कुमार्ग का साधन वना कर सर्वनाश के बीहड़ जङ्गल की ओर अग्रसर थे।

---

(१) परमार (पवार) राजपूतों की एक शाखा।

(२) डा० ओझा, बीकानेर का इतिहास, भा० पहिला, अ० २, पृ० ६९।

(३) टॉड कृत 'राजस्थान' में लिखा है– गोदारो का जोइयो तथा भाटियों से वैर रहता था।

(भाग २, पृ० ११२८)

(४) पूगल के रावशेखा, भटनेर (हनुमानगढ) के भट्टी मुसलमानो, वलूचियो तथा अन्यान्य लुटेरो के उत्पातों से थळी की जनता वडी दुःखी थी, इन लुटेरों का आक्रमण इस प्रदेश पर होता तव यहा की जनता दैनिक उपयोग में आने वाले वर्त्तनों तक को जमीन में गाड कर रक्षा कर पाती। जसनाथजी के 'सवदों'(पद्यों) में इस वात का स्पष्ट आभास मिलता है—'गाड्यो धन धरती में रैंसी का कोई कटक खधारे' कटक दौडने के सस्मरण अव तक लोगों की जवान पर हैं।

ठा० किशोरसिंह वार्हस्पत्य ने, करनी चरित्र, अध्याय ७, पृ० १२८ में तत्कालीन भूभोक्तों के विषय में लिखा है कि राजपूत, जाट और मुसलमान सव के सव पक्के डाकू थे, आस पास की प्रजा को लूट कर उसके धन पर अपना उल्लू सीधा करना ही इनका मुख्य कर्त्तव्य था, उसमें यह भी लिखा है–'यह प्रदेश उन दिनों सूवा हिसार के अन्तर्गत था। दिल्ली के लोदी सम्राट् की ओर से नियुक्त किया हुआ

मदिरादि[1] से दूर रहने वाले जाट भी उस समय कल्पित भोमियों[2] आदि को 'बली बाकला'[3] देकर जीव हिंसा और मदिरादि पीने में प्रवृत्त होगए थे, इतिहासों में ऐसा उदाहरण मिलता है। भाटों की बहियों, उनके गूढ़ पद्य गाँवों में अनेकों देवलियाँ देखने में आई हैं जिनसे यह प्रकट होता है कि मदिरादि दुर्व्यसन-रत शक्ति-सम्पन्न लोग महिलाओं की इज्जत लूटने में भी संकोच नहीं करते थे अपहरण की अनेकों घटनाएं उस समय घटित होती थी। *देहातों में स्थित दृष्टिगोचर हुई देवलियों में सबसे प्राचीन विक्रम सं० १०११* की देवली (स्मारक) ग्राम 'धनेरू'[4] और विक्रम सं० १२५० की देवली 'रीडी'[5] में हैं। ये दोनों देवलियां संगमरमर जैसे श्वेत पत्थर पर एक जैसी आकृति में अंकित हैं।

रावत्त (विराज) यहाँ जमा करा देते और उन्हीं के इलाके में लूटमार मचाया करते।

डा. गौरीशंकर हीराचन्द लिखित बीकानेर का इतिहास भाग १ पृ १ १ टिप्पण १ में लिखा है—सीहू पूजा राँधव भीतसी रो छन्द से भी बहलोल लोदी का बीका का समकालीन होना पाया जाता है (छन्द ४६) परन्तु सिकन्दर लोदी और बहलोल लोदी दोनों ही बीका के समकालीन थे।

(१) देवराज बर्मा ने 'जाट इतिहास' में जाटों को विशुद्ध आर्य और पूर्ण रूप से मांस मदिरादि को निषेध मानने वाली जाती माना है।

(२) भैरूँ भूत पितर भोमियां फिर फिर पीर मनावे।

(३) बल बाकल भैरूँ री पूजा थोरथ मना न मायी।

('सबद ग्रन्थ')

(४) डा. ओझा बीकानेर का इतिहास पृ. ९८।

(५) यह ग्राम भी डूंगरगढ़ (बीकानेर) तहसील में है बीकानेर से ५ कोस पश्चिम में है।

(६) दिल्ली-बीकानेर रेल्वे लाइन में बीग्गा स्टेशन से ५ कोस दक्षिण में है।

अश्वारूढ वीरांगनाएं हाथ मे तलवार लिये हुए शत्रुओं का सामना कर रही हैं, इन वीर ललनाओं ने अपहरणकारियो से रणक्षेत्र मे जूझ कर अपने सतीत्व की रक्षा के लिए सहर्ष प्राणोत्सर्ग कर दिया था। गाँव के लोग इन्हें 'सती दादी' की देवली[1] कहते हैं, इन के नीचे लेख भी खुदा हुआ है परन्तु प्राचीन लिपि होने के कारण अक्षर ज्ञान स्पष्टरूप से नहीं हो सकता।

राठोडों के अधिकार से पूर्व इस देश का दक्षिणी हिस्सा (८४ ग्राम)[2] साखलों के अधिकार[3] में था, तब इनकी राजधानी 'जागलू' थी तथा अब तक वह स्थान 'जागलू' नाम से प्रसिद्ध है जांगलू के अतिरिक्त थली प्रदेश में भी यत्र तत्र साखलों के स्वतन्त्र खेडे (ग्राम) थे।

बीकानेर से आग्नेय दिशा में छापर और द्रोणपुर[4] के आस पास का प्रदेश चौहानों के अधिकार में था, इनमें मोहिल और खीची वश प्रधान थे अतएव वह प्रदेश मोहिलवाटी कहलाता था[5]। मोहिल क्षत्रिय अब भी उस भूखण्ड पर अधिकता से पाये जाते हैं।

बीकानेर का पश्चिमी एव कुछ उत्तरी हिस्सा भाटी क्षत्रियों के आधीन था, जिसकी राजधानी 'पूगल' थी। उस समय वहा का शासक राव शेखा[6]

---

(१) यदि ये देवलिया जाट ललनाओ की है तब तो अनुमानत जाटो का आवास इस भूमि पर बहुत पहिले हो चुका होगा। रीडी जाखड जाटो का खेडा है। बीग्गा को बसाने वाले जाखड बीग्गा (वि० स० १३००) के आस पास, रीडी का निवासी था।

(२) ठा० किशोरसिंह बार्हस्पत्य, करनी-चरित्र पृ० १२९।

(३) डा० गौरीशकर हीराचन्द ओझा, बीकानेर का इतिहास, पृ० ३ और पृ० ७३।

(४) वर्तमान गोपालपुरा या उसके आस पास का स्थान।

(५) वही, बीकानेर का इतिहास, भाग १, पृ० ७१।

(६) डा० गौरीशकर हीराचन्द ओझा, बीकानेर का इतिहास, पहिला-भाग, पृ० ७३

जो लुटेरों का समूह था और बाद में भगवना भी करनी जी के समझाने बुझाने पर जिसने चारी जैसे निन्दनीय काम के परित्याग की प्रतिज्ञा ली।[1]

देश के पूर्वोत्तरी हिस्से पर जाहियों[2] और भटनेर (हनुमानगढ़) के आस पास बसने वाले भाटी मुसलमानों का अधिकार था जिन्हें भट्टी भी कहा जाता है। ये भी लूट एवं डाकाजनी में निपुणता पूर्वक अग्रसर थे। इन्होंने बीकानेर नरेश सूरतसिंह के शासन से पूर्व तक भटनेर और उसके समीपवर्ती प्रदेश पर अपना अधिकार जमाये रखा। बीका तथा उसके उत्तर राजाओं से इन्हें कई बार परास्त होना पड़ा किन्तु दिल्ली की मुसलमान सल्तनत का सहयोग होने से उनको अपना अस्तित्व जमाये रखने के लिए सफलता मिलती रही।[3]

'जांगल देश के ऊँचे ऊँचे रेतीले टीलों वाले भूभाग पर छोटे छोटे ठिकानों के रूप में जाटों का स्वतन्त्र अधिकार था,[4] आत्मरक्षार्थ साधन सम्पन्नता में जाट सब से प्रबल थे।[5] यह प्रदेश जाटों की विभिन्न जातियों में मुख्यतया निम्नरूप से विभाजित था–

(१) लाधड़िया शेखसर के स्वामी गोदारा पांडू के अधिकार में ३६० ग्राम, (२) भाड़ंग के स्वामी सारण पूला के अधिकार में ३६ ग्राम (३) सीधमुख के शासक कसवाँ कुंवरपाल के अधीनस्थ ३६० ग्राम, (४) रायसलाणा के स्वामी बेणीवाल रायसल के अधिकार ८४ में ग्राम, (५) धानसूरी (बड़ी लूंबी) के स्वामी पूनियाँ कान्हा के अधिकार में १४ ग्राम (६) सूंईका (सूई) के स्वामी सीहागा चोखा के अधिकार में १४ ग्राम (७) सोहुवा अमरा के अधिकार

---

(१) डा किशोरसिंह बार्हस्पत्य करनी चरित्र पृ ११

(२) पर इन्होंने शीघ्र ही बीका की अधीनता स्वीकार करली।

(वही बीकानेर का इति पहिला भाग पृ ७)

(३) वही बीकानेर का इतिहास पहिला भाग पृ ७४

(४) नरोत्तमदास स्वामी बीकानेर के वीर पृ ९

(५) अन्य अविकृत क्षेत्रों के बीच का प्रदेश

(६) डा गौरीशंकर हीराचन्द ओझा बीकानेर का इतिहास पहिला भाग पृ ७४।

मे धानसी,[1] इसके अतिरिक्त खीचियावाड के स्वामी देवराज मानसिहोत के अधीनस्थ १४० ग्राम, खरला के स्वामी शुभराम ईश्वरोत के अधिकार में ६०० ग्राम, हिसार के रगड़ भाटी मुसलमानों का राज्य। वाघोड राजपूतों के १४० ग्राम, मुट्टा शाखा के सोलङ्की राजपूतों के गॉव, विलोचॉ, कायमखानियों के गाव[2] एव छोटे छोटे विभिन्न ग्रामाधिपति भी इस भूखण्ड पर अपना अपना अधिकार जमाये हुए थे। जिसने जहा कुवा बनवा कर वास वसा दिया उस भूमि का वही अधिकारी समझा जाता था, अब तक उन जातियों के नाम पर खेडे (ग्राम) आबाद हैं।

बीकानेर डिवीजन का थळी प्रदेश अब भी 'जाटायत' के नाम से बोला जाता है। जाटों के नि शक्त होने का मुख्य कारण आपस की कलह एव प्रतिस्पर्धा थी। उस समय के कुछ पूर्व वृत्तान्तो, भाटों की वहियां और गॉवों में स्थित देवलियों के देखने से इस बात की पुष्टि होती है कि प्रवल जाट शासक सावधानी से एक दूसरे की स्त्री का अपहरण करने की ताक में लगे रहते थे। लाधडिया-शेखसर के गोदारा पाडू और भाडंग के शासक सारण पूला में स्त्री सम्बन्धी प्रश्न[3] को लेकर परस्पर युद्ध हुआ था, जिसमें राव बीका ने ने पांडू का पक्ष लिया,[4] इसके परिणामस्वरूप सारण पूला परास्त हुआ और उसने बीका की अधीनता स्वीकार करली।

---

(१) वही, बीकानेर का इतिहास, पृ० ९८, टिप्पण ७।

(२) ठा० किशोरसिंह वार्हस्पत्य, करनी चरित्र, पृ० १२९-३०

(३) जब मारण पूला ने पाडू के ढाढी को यथाशक्य दान दिया था तब सारण पूला की स्त्री मल्की ने कहा— "चौधरी। ऐसा दान करना था जिससे पांडू से अधिक यश प्राप्त होता" पूला उस समय नशे में था, उसने मल्की को मारते हुए कहा— तुझे पाडू अच्छा लगता है तो तू उसके पास चली जा, कुछ दिन के बाद मल्की पाडू के पुत्र नकोदर के साथ शेखसर चली गई। पाडू बहुत वृद्ध होगया था फिर भी पाडू ने मल्की को अपने घर मे डाल लिया, मल्की के नाम पर मल्कीसर तथा पाडू के पुत्र नकोदर के नाम पर नकोदेसर ग्राम वसे हुये हैं।

(४) राव बीका द्वारा पाडू को उसकी खैरख्वाही के वदले में यह अधिकार

कारण पूगल के पराजित हो जाने से अन्य जाट शासकों का भी साहस क्षीण पड़ गया फिर भी अस्तोन्मुख जाटों ने अपने अपने राज्यों की रक्षा के निमित्त राव बीका से संघर्ष किया पर बीका की प्रबल शक्ति के सामने जाटों को अपने संघर्ष में सफलता नहीं मिली अतएव समस्त जाट-शासकों ने अदम्य साहसी वीर योद्धा राव बीका की अधीनता स्वीकार कर साधारण प्रजा की भाँति भूमि-कर देकर[1] निवास करने लगे।

बीका का आगमन—

जांगलू का प्रसिद्ध शासक नापा सांखला[3] [माणकराव का पुत्र] बलोच मुसलमानों से तंग आकर राव जोधा के पास चला गया और वहाँ कुंवर बीका की नया देश जीतने की इच्छा को देख कर विक्रम सम्वत् १५२२ में जांगलू पर कुंवर बीका को चढ़ा लाया तथा शत्रुओं को परास्त कर इसके पश्चात् उसका दायाँ हाथ बन कर बीका की सेवा में रहने लगा[4]। बीका ने साम दाम, दण्ड और भेद की नीति से समस्त देश पर शनैः शनैः अपना अधिकार जमा कर विद्रोही भाटियों जाटों जोइयों खीचियों, पठानों चायलों, बलोचियों और भूटों को हरा कर अभूतपूर्व वीरता, साहस एवं युद्ध-कौशल का परिचय दिया[5]।

दिया गया कि बीकानेर के राजा का राजतिलक उन (पांडू) के ही वंशजों के हाथ से हुआ करेगा यह प्रथा अब तक प्रचलित है पांडू के वंशज रूणिया के गोदारों को अब यह अधिकार प्राप्त है

दयालदास की ख्यात जि. २ पत्र ३। मुन्शी देवीप्रसाद राव बीकाजी का जीवन चरित्र, पृ. १९।

(डा. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा बीकानेर का इति. पृ. ९९)

(१) देशराज जाट, जाट इतिहास पृ. ६१४।

(२) डा. ओझा बीकानेर राज्य का इतिहास पहिला भाग पृ. ७४।

(३) यह राव बीका का मामा भी लगता था।

(४) वही बीकानेर राज्य का इतिहास पहिला भाग पृ० ७६।

(५) वही बीकानेर राज्य का इतिहास पहिला भाग पृ. ९९।

विक्रम सम्वत् १५६१ आषाढ सुदी ५ सोमवार को बीका का देहान्त हो गया[1]। बीका के दस पुत्र थे[2]। बीका के परलोकवास होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र नरा बीकानेर के राज्य-सिंहासन पर बैठा।

सात मास के बाद स० १५६१ माघ सुदी ८ को उसका देहान्त हो गया[3]।

नरा के नि सन्तान मरने पर उसका छोटा भाई होने के कारण लूणकरण विक्रम सम्वत् १५६१ फाल्गुन वदी ४ को बीकानेर की गद्दी पर बैठा[4]। लूणकरण ने अपने पराक्रम से बीकानेर राज्य को काफी बढाया। लूणकरण साहसी और असामान्य वीर होने के साथ ही बड़ा उदार, दानी, प्रजापालक और गुणियों का सम्मान करने वाला था।

उपरोक्त ऐतिहासिक विवरण पढ़ने से यह सुनिश्चित होजाता है कि उस समय देश में शान्ति नहीं थी। अज्ञान-तमसावृत 'जागल देश' के निवासी अपने सही रास्ते से भटक चुके थे। लूट-पाट और अपहरण की घटनाओं से प्रजा इतनी तग थी कि वर्ष भर में दस दिन भी लोग, सुख की श्वास नहीं लेसकते थे। यद्यपि राव बीका ने विद्रोहियों को दबाकर देश में कुछ शान्ति-व्यवस्था की स्थापना की किन्तु यह शान्ति वास्तविक शान्ति नहीं थी अपितु लोग आतक से दबे हुए थे। क्योंकि बीका भी विपक्षियों को लूटने में[5] सकोच नहीं करता था, परन्तु बीका का उद्देश्य निरीह प्रजा को लूटने का नहीं था, वह तो उन लुटेरों को लूट कर तहस-नहस करने पर उद्यत था जिससे उनको दबा कर सर्व साधारण प्रजा को सुख पहुँचाया जाय।

राव बीका के अनुगत उत्तराधिकारियों ने भी अपने न्यायपूर्ण अनुशासन से राव बीका द्वारा इस देश पर संस्थापित राज्य को सुदृढ़ बनाया।

---

(१) वही, बीका० राज्यका इतिहास, पृ० १०९।

(२) १- नरा, २- लूणकरण, ३- घडसी, ४- राजसी, ५- मेघराज, ६- केलण, ७- देवसी, ८- विजयसिंह, ९- अमरसिंह और १०- बीसा।

(३) कुवर कन्हैयाजूदेव, बीकानेर का राज्य इतिहास।

(४) डा० गौरीशकर हीराचन्द ओझा, बीकानेर का इति० पहिला भाग, पृ० ११२।

(५) वही, बीकानेर राज्य का इतिहास, पहिला भाग, पृ० ९९।

पृष्ठभूमि कतरियासर का विवरण—

यह ऊपर कहा जा चुका है कि राठौड़ों के शासन से पूर्व 'जांगल देश' के इस मरुधरी भूभाग पर छोटे छोटे ठिकानों के रूप में जाटों का अधिकार था उन्हीं ठिकानों के अधिकारान्तर्गत बीसलजी के पुत्र स्वनामधन्य हमीरजी उस समय कतरियासर के अधिपति थे और इन्हीं महाभाग हमीरजी को सिद्धाचार्य श्रीजसनाथजी का पालक पिता होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

कतरियासर के लिए यह कहना कठिन है कि विक्रम की कौनसी शती में यह ग्राम आबाद हुआ। पर जसनाथी सिद्धों में कतरियासर के लिए जो धारणा है वह इस प्रकार है—

> सुरगाँ श्याम धणेसर थान, ऊँडा नीर नहीं है पान।
> बालमुकनजी बोलिया, च्यार सुर्गां रो एको थान।
> कतरियासर कळ ऊपन्या, रम्या'र कवस्यो का'न।
> गाळ बगीची देवरा छेतर किया धाम।
> धूँ धूणी है धरम री, थाप्या सुख (दे) हनुमान।
> निशाण नगारा नावरा, सुखदाई सू थान (ण)।
> था'रे धाम धरम री, मळै में भगवान'।

(१) 'धमसू भोम भारी रची, थाप्या सत भगवान।
हरमक सिव भागीरथी न्हाया शील सिनान।
मालासर प्यारी सती, इधका दीन्या मान।
सिलमाळू सेलै दियो, दियो जतीजी मान।
पूनरासर पीपरी (परापरी) न्हाया गै'र गुमान।
सित 'भाळ' छतर किया धन हांसाळू धाम।
पूनर दियो धरम धूँ, धरम'र दियो धाम।
बालमजी ने मिल्या बोल्या धूरे (जी) में भगवान्
नाथ दुमारो 'पांचला' मोकाटी में नांव।

अर्थात् थळी पर अवस्थित स्थान ही श्याम का स्वर्ग स्थान है, जहाँ पानी बहुत गहरा है और लता वाले वृक्षों की कमी है। बालमुकुन्दजी कहते हैं अर्थात् भगवान् ने ही निश्चित किया है कि यह स्थान चारों युगों में स्थायी है। कलियुग मे भगवान् श्रीकृष्ण ने ही कतरियासर में श्रीजसनाथजी के रूप में निष्कलङ्क-अवतार लेकर क्रीडा की, जहाँ भगवान् ने इस क्षेत्र को

घिरत गूगळ ले होमिया, गीरि छुहारा ले बिदाम।
गुरु वचना 'सुरतो'(जी) भणै महर करी भगवान।

इन पंक्तियों के अतिरिक्त अन्य जसनाथी ग्रामो की नामावली के साथ ऐसा पाठ भी सुनने म आया है—

'घिटाळ' गुरु रो बेसणू, निज धूणी असथान।
'जोगलियै' थर थर हरि, दोनों पडिया पाय।
गुरु गोरख पजो दियो, वचना रै परमाण।
खेतोजी (खरै) मन परगट्या निज धूणी असथान।
बींजैजी भगति करी, 'बीनादेसर' धाम।
मैया करी हँसराजजी, 'हासेरा' पर नाम।
सिद्ध मनोहर (जी) तापिया, गगा गोमती ग्राम।
'पारेवडो' है पाचा नगरी, पीरॉ रो असथान।
'साधासर' है सतरो खेडो, टीवि सिद्धाई नाथ।
सिद्धाई सरणै गई, गूग सवाई जाग।
चूक 'चिताणै' में पडी, अवलियो असथान।
कुवै नीर खारो कियो, वचना रै परमाण।
कळजुग किनारै 'कालड़ी' रहसी इदको मान।
गुरू वचना 'ठुकरो' (जी) भणै, गुरु मनावै ध्यान।

पहिले वाले पद में 'सुरतोजी' का सभोग लगा है और दूसरे में 'ठुकरोजी' का, कहते है ये दोनो सगे भाई थे। उपर्युक्त वर्णित नामावली में प्रसिद्ध जसनाथी ग्रामो के नाम छूट गए हैं, रुस्तमजी आदि प्रसिद्ध सिद्धों के स्थानो का नाम छूटना अखरता है अत यह नामावली अधूरी प्रतीत होती है, क्योकि लिखितरूप में ये पंक्तियां देखने में नही आई, जिह्वा-कर्ण परम्परा में पंक्तियो का छूट जाना स्वाभाविक है।

धाम बनाकर आश्रम, वापी और मन्दिर के लिए उपभोगी बनाया। यह धूनी (स्थान) धर्म की है, यहाँ मुलदेवजी तथा हनुमानजी ने तप किया। यहाँ के मुलदायक उपकरण 'नाथ' के नगाड़े और निशान (झण्डा) हैं, वैसे तो जसनाथी सिद्धों में धर्म के बारह धाम माने गये हैं किन्तु कतरियासर के मेले में स्वयं भगवान् के दर्शन होते हैं।

कतरियासर की प्राचीनता के विषय में एक 'सबद' और प्रचलित है उसमें कतरियासर का पूर्व नाम 'केतली' बताया गया है संभव है यह नाम बहुत प्राचीन हो। लोगों का कहना है कि वर्तमान स्थान से कतरियासर पहिले किसी अन्य स्थान पर आबाद था। लोगों का यह कथन भी विचारणीय है— उत्तराधे पास वाला कुआ बहुत प्राचीन है, श्रीजसनाथजी ने लोगों को यह कुआ बताया था इस कुवे की सुरंग नाल (राजा सगर के पुत्रों द्वारा खोदी हुयी) बताई जाती है, श्रीजसनाथजी ने यहाँ सुरंग नाल का निर्मित कुआ ही बताया था राजस्थान— बीकानेर मण्डल के मरु प्रदेश के गाँवों में ऐसे कुओं का पाया जाना सर्वविदित है। इस कुवे की प्राचीनता के आधार पर ऐसा मानना असंगत नहीं कि संभवतः कतरियासर ग्राम भी बहुत प्राचीन हो[२]।

क्योंकि प्राचीनकाल से ही इस परमपवित्र वसुन्धरा पर मनस्वी महर्षिमुनियों ने अपने श्रीचरण रखकर इसे गौरवशालिनी बनाया था। बीकानेर से पश्चिम में श्रीकोलायत तीर्थ सांख्य-दर्शन के प्रणेता भगवान् कपिलमुनि का आश्रम है भगवान् कपिलमुनि ने अपनी माता देवहूती

(१) जसनाथी सिद्धों का ध्वज भगवा रङ्ग का होता है ऊपर के सिरे पर मोर पक्षी की पांखें बन्धी रहती हैं।

> श्रीजसनाथ सिद्ध हनु है आयेष सिरमाज।
> मोर पर ध्वज सुमेरु है श्रीसिद्धेश्वरराज।
>
> (यशोनाथ संगीता मंगलाचरणम्)

(२) सुप्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के मतानुसार काबुल से लेकर बीकानेर डिवीजन के पूर्वी भाग तक प्रागैतिहासिक स्थल हैं।

को इसी स्थान पर सांख्य-योग-दर्शन का उपदेश दिया था। कपिल क्षेत्र के पास 'देवहूति' नाम का ग्राम इस बात की साक्षी के लिए ज्वलन्त उदाहरण है।

कहते हैं महर्षि याज्ञवल्क्य, च्यवन और गुरु दत्तात्रेय ने भी इस पवित्र क्षेत्र में तप-साधन किया था, जिनके नाम पर क्रमश 'जागीरि' नाम का तालाव, 'चिमनगुफा' और श्रीकोलायत से पश्चिम में 'दियात्रा' (द्यातरा) नाम का गाँव इस बात का सार्थक है।

दक्षिणी पूर्वी कोने में छापर के पास काळा डूगर नाम की पहाड़ी है। उसकी तलहटी में पहिले द्रोणपुर नाम का एक बड़ा शहर था, जिसे द्रोणाचार्य ने वसाया था। वहाँ पर द्रोणाचार्य का आश्रम था। कहते हैं वन वास में भ्रमण करते हुए पाण्डव एक वार यहा आये थे[1]।

सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी की समकालीन महाविभूति भगवती श्री करणीजा का मुख्य स्थान 'देशनोक' सदाचार मूलक श्री जाभोजी का 'मुकाम' चौहान श्री गोगाजी की 'गोगामेड़ी' नोहर के पास श्याम पाण्डिये का 'धोरा' और सालासर- पूनरासर श्रीहनुमानजी के मुख्य स्थान इसी पुण्य-धरा-धाम का महत्व प्रकट करते हैं।

कतरियासर इसी प्राचीन 'जागलदेश' और वर्तमान बीकानेर डिवीजन के थली प्रदेश में विद्यमान है।

निखिल जसनाथी सिद्ध, जाट एव अन्यान्य जसनाथी समाज का यह ग्राम पवित्र भावना का श्रद्धा-स्थल है।

कतरियासर बीकानेर से पूर्वोत्तर भाग में १२ कोस की दूरी पर एव बीकानेर-भटिंडा रेल्वे-लाइन की स्टेशन जामसर से ६ कोस पूर्व में है। बीका-नेर-दिल्ली रेल्वे-लाइन की स्टेशन नापासर से कतरियासर ९ कोस उत्तर में है। प्रसिद्ध क्षेत्र 'रुणियें के बास' तीन कोस पूर्व में हैं तथा उत्तर में दो कोस 'मालाणियाँ' ग्राम है। दक्षिण में चार कोस 'वमलू' और पश्चिम में मालासर दो कोस के अन्तर पर है। पूर्वोत्तर भाग में प्रसिद्ध ग्राम काळू है।

कतरियासर का कुल अधिवास १५० घरों के लगभग है, ग्राम के

(१) नरोत्तमदास स्वामी, 'बीकानेर के वीर' पृष्ठ ८।

चारों ओर सुरक्षित ओरण[1] (ओरण) है। ग्राम के दोनों पासों में क्रमशः दो कुएं बने हुए हैं। बाड़ी के पास वाले कुएं का पानी पहिले खारा हो गया था पर अब पुनः पानी मीठा हो जाने से यह अपने माधुर्य को लिए हुए अहर्निश बहता रहता है।

कतरियासर के मूल निवासी सिद्ध और जाट दोनों जाखड़ गोत्र के एक दादे (पूर्वज) की सन्तान हैं। कतरियासर में कुछ घर अन्य जाति के लोगों के भी हैं, पर श्रीजसनाथजी की मान्यता रखने में सब समान हैं। ग्राम का रहन-सहन एवं वातावरण बहुत पवित्र है जसनाथी लोग होनेके कारण यहां के लोगों में कोई दुर्व्यसन नहीं है। शिकारादि करना यहां सर्वथा निषिद्ध है।

सिद्धों की तरह कतरियासर के जाखड़ जाट भी पूर्व परम्परा से मृतक को समाधि देते हैं। इसी नियम का कुछ अन्य गांवों के जसनाथी लोग भी पालन करते हैं परन्तु सिद्धों के अतिरिक्त सभी जसनाथी लोगों के लिए यह नियम आवश्यक नहीं है।

कतरियासर के सभी स्त्री-पुरुष कम से कम दिन में एकबार बाड़ी में दर्शनार्थ अवश्य पहुँचेंगे। प्रायः सभी दर्शनार्थी पक्षियों के लिए चुग्गा और पानी साथ में लेजाते हैं। सप्तमी का पहिला घृत और खेत की उपज के अनुपात से वार्षिक चुग्गा इनके लिए बाड़ी में देना अनिवार्य है। कमीपूर्ति के लिए कभी कभी मासभर में दो बार भी पक्षियों के लिए चुग्गा संग्रह किया जाता है। निकटवर्ती गाँवों से भी बाड़ी के लिए चुग्गा प्राप्त करना इनके लिए कोई संकोच की बात नहीं है।

बाड़ी – जहां सिद्धाचार्य श्रीजसनाथजी ने गोरखमालिये के नीचे बारह वर्ष तपोपदेश किया था जहां श्रीजसनाथजी की समाधि पर विशाल

(१) ओरण' शब्द संस्कृत के उपवन शब्द का अपभ्रंश है। उपवन से प्राकृत में 'उववण' शब्द बनता है जो अपभ्रंश में 'व' और 'अ' की संधि होकर ओवण' बन जाता है यही से डिंगल में ओरण शब्द बना है। उपवन का अर्थ है बाग। आजकल ओरण शब्द रक्षित वन के लिए व्यवहृत होता है। ओरण से आरण्य वन का अर्थ निकलता है।

मन्दिर बना हुआ है, जहाँ अनेकों सिद्ध-पुरुषों एव सतियों की जीवित समाधिया हैं और जहा कतरियासर के विविध सिद्ध, महन्त और सेवकों ने शरीरान्त होने पर जिस भूमि के अन्तर मे चिरनिवास किया है, उसको वाडी या श्रीजसनाथजी की वाडी भी कहते हैं, वाडी का दूसरा नाम आसण (आश्रम) भो है। दूसरे गॉवों में भी जहॉ जहाँ श्रीजसनाथजी का मन्दिर एव स्थान है, वाडी नाम से ही सम्बोधित होता है।

कतरियासर की श्रीजसनाथजी की वाडी का विस्तार ८४ वीघा में है, वीकानेर का जूनागढ और कतरियासर में श्रीजसनाथजी की वाड़ी का क्षेत्र-फल वरावर वताया जाता है।

सुकोमल रेतीले टीवों से आवृत वाडी का दृश्य वडा दिव्य और चित्ताकर्षक है। वाड़ी के मध्य में श्रीजसनाथजी की समाधि पर अडाकार अतिरम्य विशाल मदिर बना हुआ है, जिस पर श्वेतकलई का पक्का पलस्तर किया हुआ है। कगूरेदार विरन्डी मदिर की प्राचीनता का बोध कराती है। प्रारभ में मदिर की प्रतिष्ठा श्री पालोजी ने की थी, जिसका वर्णन यथास्थान किया गया है।

सम्भव है इतने लम्वे समय में मदिर की कई वार मरम्मत हुई होगी पर 'स्व० श्री मघानाथ पोळिये' ने मदिर का समुचित जीर्णोद्धार करवाकर प्रशसनीय कार्य किया है। मदिर के सभामडप में सगमरमर का पत्थर लगा हुआ है। वाहर के चौक पर 'खारी' ग्राम का लालपत्थर लग जाने से मदिर की उम्र वहुत वढ गई है। मदिर के इधर उधर चौक पर कतरियासर के सिद्ध महन्तों की समाधियों के चिह्न, हैं किन्तु चौक पर मृतक को समाधि दीजाने की प्रथा अब समाप्त होगई है जो वहुत ही समयानुकूल और उचित प्रतीत होती है। सभामदिर में कब्रनुमा समाधि है जो नाथ, परम्परा के अनुकूल नहीं है, यह कार्य मुसलमानी शासनकाल में लोभ, दवाव या मूर्खतावश किया गया जान पडता है। वहुत ही अच्छा होता यदि इस मदिर में सिद्धाचार्य की समाधि पर स्थापत्यकला की आदर्शपूर्ण मूर्ति सस्थापित की हुई होती। मुख्य मदिर के अतिरिक्त वाडी में जीवित समाधियों पर और भी छोटे छोटे देवालय वने

हुए हैं। इनके अलावा मुख्य मंदिर के सामने 'संगीत चौकी' और हवन वेदी बनी हुई है जहाँ मेले के समय सिद्ध लोग बैठकर जागरण एवं हवन कार्य सम्पन्न करते आरहे हैं।

गोरख मालिया— यह वही परम पवित्र स्थान है जिसका विशद वर्णन तथा प्रसंग आगे की अध्यायों में किया गया है। गोरख मालिये' के चारों ओर गोलाकृत से लाल पत्थर का चबूतरा बंधा हुआ है इसका श्रेय भी मघानाथ को है। पहिले यहाँ गोबर मिट्टी का कच्चा कोटिया (चबूतरा) था। गोरखमालिया इस लाल पत्थर के चबूतरे का नाम ही नहीं है अपितु चबूतर पर जो मीठी जाल (पीलु) का पेड़ है उसे मय इस स्थान के गोरख मालिया संज्ञा दी गई है। जाळ का पेड़ बहुत ही सुन्दर और सुहावना लगता है। यह जाल वि० सं० १५४१ में स्वयं सिद्धाचार्य श्रीजसनाथजी के कर-कमलों से लगाई गई थी। मीठी जाल के पेड़ की उम्र दस हजार वर्ष से भी अधिक बताई जाती है इस दृष्टि से यह जाल अभी अपनी किशोरावस्था में है। जाल की टहनियों ने लता की भांति फैल कर चौक को चारों ओर ढांप लिया है। जाळ के सघन और ठंडी होनेके कारण बाड़ी के मयूरादि पक्षी बड़े आराम से इसके झुरमुट में बैठे कल्लोल करते रहते हैं।

श्रीजसनाथजी की मुख्य चौरासी बाड़ियों में सब जगह जाल का पेड़ लगा हुआ है। जाल के प्रति जसनाथी सिद्धों का निम्नांकित उद्गार मान्यता और श्रद्धा का जीवित उदाहरण है।

> ज्यूँ वृक्ष में गोविन्द रम्यो, ज्यूँ सरवर में पाल।
> जीव ! तूँ ने'चै राखिये, जाळ बटै जसनाथ ॥

तालाब— बाड़ी के बाहर पूर्वी भाग में गोरखाणा नाम का एक छोटासा पक्का तालाब है। पहिले रेतका टीला आजाने से भूमिगत होगया था ग्रामीणों ने सामूहिक श्रम से रेत हटा कर जीर्णोद्धार कर पुन: इसे जन लाभ के लिए उपयोगी कर दिया।

सतीजी की बाड़ी— कतरियासर से पूर्व की ओर लगभग एक माइल के फासले पर महासती काळलदे की बाड़ी है। बाड़ी में सतीजी का

एक सुन्दर मंदिर है। जव सतीजी और वेणीवाल परिवार चूड़ीखेड़ा से कतरियासर आये थे तव सतीजी का रथ और वेणीवालों के गाडे (वैलगाड़ियां) सबसे पहिले इसी स्थान पर ठहरे थे। चैत्र शुक्ला ४ को प्रतिवर्ष यहां सतीजी का वड़ा भारी मेला लगता है। रात को यहाँ सतीजी का जागरण होता है। इसी गाव के दक्षिणी मुहल्ले में श्री पालोजी की बाडी का स्थान है।

कतरियासर से दक्षिण में 'जाभाथळ' नाम का धोरा (टीला) है, सरकारी पैमाइशी कागजों में भी इस स्थान का नाम 'जाभाथळ' ही अंकित है। प्रसिद्ध सन्त जाभोजी जव सिद्धाचार्य से मिलने कतरियासर आये थे तव आचार्य की यौगिक शक्ति ने उनका रथ वहीं घुमाया अत. जाभोजी को रथ से नीचे उतर कर पैदल ही चलना पड़ा, यह 'जाभाथळ' अव तक उस घटना की स्मृति करवाता है।

कतरियासर के उत्तरी भाग में दो कोस पर 'भागथळी' नामका खेत है जहाँ वि० स० १५५१ में गुरु गोरखनाथजी ने श्रीजसनाथजी को दर्शन देकर कृतार्थ किया था और चार कोस के अन्तर पर 'डावला' नाम का तालाव है जहाँ हमीरजी को वालक जसनाथजी की प्राप्ति हुई थी।

कतरियासर में क्रमश तीन मेले लगते हैं—आश्विन शुक्ला सप्तमी, माघ शुक्ला सप्तमी और चैत्र शुक्ला सप्तमी, इन तीन मेलों में श्रीजसनाथजी की वाडी में वडी धूमधाम से जागरण होता है और प्रात.काल से सायंकाल तक घृत मिश्रित सुगन्धित द्रव्यों का हवन होता रहता है।

यात्रीगण अपने वच्चोंका चूडान्त (झडूला) सस्कार इसी दिन 'गोरखमाळिये' पर आकर करते हैं। प्रत्येक जसनाथी के लिये कतरियासर गठजोड़े की यात्रा करनी अनिवार्य वनी हुई है अत दूर दूर से अनेकों यात्री उपर्युक्त तीनों मेलों में कतरियासर आकर अपने को कृतार्थ करते हैं।

कतरियासर की दोनो वाड़ियों के पीछे 'माफीदान' की काफी भूसम्पत्ति है जिसका हिस्सेवार उपभोग कतरियासर के सभी सिद्ध करते हैं परन्तु श्री जसनाथजी के मन्दिर की आय तथा पूजा का अधिकारी श्री जागोजी की परम्परानुगत टीकाई सिद्ध ही है। इसी प्रकार सतीजी के मन्दिर की

ध्याय और पूजा का अधिकारी 'सती सेवक' उपाधिकारी सिद्ध है।

श्री जसनाथजी के यात्रियों को दोनों समय का भोजन बागोजी की परम्परा में नियुक्त महन्त का देना पड़ता है और सतीजी के यात्रियों को दोनों समय का भोजन 'सती सेवक' के जिम्मे है। सम्प्रदाय में सती सेवक को मेले में आगत संघ की अगाड़ी करने का भी अधिकार प्राप्त है और इसी प्रकार टिकाई महन्त अपने सेवकों में धरमगत फेरी चढ़ाने का अधिकारी है। अच्छी संवत् में इनको हजारों रुपये की आय होती है।

मन्दिरों (श्री जसनाथजी और सतीजी) में दोनों समय विधि विधान से पूजा आरती होती है। सिद्ध पवित्रता पूर्वक पहिले हवन-ज्योति का प्रबन्ध सिद्ध करता है तत्पश्चात् नगाड़ा शंख और झालर की झंकार के साथ आरती प्रारंभ होती है। छोटे छोटे देवालयों और गोरखमालिये पर इसी आरती पात्र से आरती उतारी जाती है।

समस्त जसनाथी समाज में प्रत्येक मास की शुक्ला सप्तमी एवं चतुर्थी विशेष तिथि समझी जाती हैं। जसनाथी का यह अर्थ है कि जो व्यक्ति श्री जसनाथजी द्वारा प्रतिपादित ३६ धर्म नियमों का भली भाँति से पालन करने की 'चलू'[1] लेकर प्रतिज्ञा करता है या जिसने की हो वह तथा उसकी सन्तान को जसनाथी समझा जाता है। श्री जसनाथजी को मानने वाले दूजे[2] देवों की उपासना नहीं करते।

कतरियासर सहित सिद्धों के कई मुख्य स्थान माने जाते हैं किन्तु मूल ठिकाने निम्नांकित हैं— (१) कतरियासर मुख्य धाम— यहाँ के टिकाई महन्त श्री बागोजी की परम्परा के होते हैं। (२) बमलू— श्री हारोजी की परम्परा (३) लिखमादेसर— श्री हांसोजी की परम्परा, (४) पूनरासर—

---

(१) पंचामृत की तरह तरल पदार्थ को चलू कहते हैं। हाथ में जल लेकर या आचमन कर प्रतिज्ञा करना एक भारतीय पुरातन पद्धति रही है।

(२) दुनियाँ पूजे देवता, पूजा भैरूपाल।
जाम्भ की मानों सिद्धो, (चलू) धारन जोत जाल।
(श्री लालनाथजी 'जीव समझोतरी')

श्रीपालोजी की परम्परा, मालासर और पाचलासिद्धों का श्रीटोडरजी की परम्परा, विरक्त परम हंसों की मण्डली इनके अतिरिक्त सिद्धों के जितने ठिकाने व श्री जसनाथजी की 'वाडिया' हैं वे सब अलग अलग इन्हीं उपर्युक्त परम्पराओं के अन्तर्गत आजाते हैं जिनका प्रसंगानुसार वर्णन आगे की अध्यायों में किया गया है। सिद्ध या महन्त अपने अपने मण्डल के सेवकों के यहां 'फेरी'[१] के समय जागरण देकर भेंट लेते हैं, जसनाथी सेवक अधिकतर बीकानेर, जोधपुर और जेसलमेर के प्रदेशों में निवास करते हैं।

---

(१) सेवक के घर प्रतिवर्ष नगाडा-निशान सहित जाकर तथा श्री जसनाथजी का जागरण देकर भेंट लेने को 'फेरी' कहते हैं।

द्वितीय अध्याय

हमीरजी और उनके पूर्वजों का वृत्तान्त

भारतवर्ष के विशाल जाति समूह में जाट जाति का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। पूर्व इतिहासकारों ने जाटों की गणना शासक जाति में की है और स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहिले तक जाट कई जनपदों के शासक थे। छत्तीस राजवंशों में जाटों की गणना की गई है जिसका उल्लेख चंद कवि ने 'जिट' नाम से किया है। कर्नल टॉड ने 'जित' व 'जाट' लिखा है[1]। 'टॉड राजस्थान' में लिखा है कि 'जित' जाति पंजाब में स्थित होकर बहुत दिन तक अपने अटल प्रताप से विराजमान रही'

महमूद गजनवी को भी जाटों ने अपने प्रबल पराक्रम से बड़ा तंग एवं तिरस्कृत किया था अतएव यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि जाट वंश भी किसी समय भारत का एक विख्यात वीर वंश था जिसने एक बार तो दुर्दान्त विदेशी आक्रान्ता महमूद गजनवी को अपनी वीरता के बल पर ऐसा छकाया कि उसके दान्त खट्टे कर दिये थे। उसको इनके सामने भागते ही बन पड़ा[2]। अब तक के उपलब्ध विवरणों व तथ्यों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि धर्मपालन, धार्मिकउत्सर्ग ईश्वर निष्ठा सदाचार-सम्पन्नता, सत्यप्रियता एवं ध्येय-दृढ़ता आदि सद्गुण जाट जाति में प्रचुर मात्रा में विद्यमान थे और इन्हीं कारणों से विशाल हिन्दूसमाज में उसका महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

जाटों की मूल उत्पत्ति के विषय में इतिहासज्ञों के विभिन्न मत हैं— भगवान शंकर की जटा से उत्पन्न होने के कारण भी इनको जाट कहा जाता है। यह सर्व विदित है कि जाट विशुद्ध आर्य हैं, विदेशी इतिहासकारों ने

(१) ले. शिवप्रसाद त्रिपाठी वीर-भूमि के चार धर्म-वीर जुझार पृष्ठ ४२
(२) वही पृष्ठ ४२

तथ्यान्वेषण की धुन में बहुत से प्रचलित तथ्यों को जाने अनजाने में उपेक्षित या विस्मृत कर, सारा गुड गोवर कर दिया है। इतिहासकारों ने जाटों को हूण, शक और सिथियन घोषित किया है, जो असगत होने के साथ साथ अन्याय-पूर्ण भी है।

गभीरता पूर्वक विचार करने से पता चलता है कि जब हूण और शक जाति के लोगों के आक्रमणों की कल्पना तक नहीं थी, जाट तब भी भारत में यत्रतत्र आवाद थे। महर्षि पाणिनि, जो ईसा से लगभग ९०० वर्ष पूर्व हुए हैं, के प्रसिद्ध व्याकरण (धातु पाठ) में जट शब्द आता है, जिसका अर्थ होता है 'सघ'। पजाब में जाट की अपेक्षा 'जट' या 'जट्ट' शब्द का ही प्रयोग अब तक भी होता है। किसी अरबी यात्री ने श्री कृष्ण तक को जाट लिखा है[1], यदि उस अरबी यात्री की बात मान भी ली जाय तो सिर्फ यही अभिप्राय निकलता है कि श्री कृष्ण अपूर्व सगठन कर्ता थे।

अग्रेज अन्वेषकों ने मानव-जाति-भेदों की पहचान के विषय में जिन आधारों को स्वीकार किया है उनमें से दो मुख्य हैं (१) शारीरिक बनावट, और (२)भाषा-विज्ञान। अन्वेषकों ने शरीर शास्त्र के आधार पर मनुष्य जाति को पाच श्रेणियों में विभक्त किया है— (१) आर्य, (२) मगोलियन, (३) मलय, (४) हवशी और (५) अमेरिकन। रग भेद से ये जातियाँ क्रमश. गोरी, पीली, काली और लाल कहलाती हैं। आर्य जातीय जन गोरे वा उजले रग, उन्नत ललाट, सुआसारी नाक, विशाल छाती और काली आँखों वाले एव दीर्घ भुजाओं व टागों वाले होते हैं। आर्यों के ये सब लक्षण नि सदेह ही जाटों में पाये जाते हैं, अतएव विदेशी इतिहासकारों के निष्कर्षों का भ्रान्तता व काल्पनिकता इस सम्बन्ध में स्पष्ट हो जाती है और जाटों के आर्य जातीय होने में किसी सदेह की गु जाइश नहीं रह जाती।

जाट जाति की अनेकों शाखायें क्षत्रियों में से निकली हुई हैं, क्योंकि इनके गोत्र अधिकतर क्षत्रियों के गोत्रों से मिलते हैं, तथा वश परम्परा भी उन प्राचीन मनस्वी क्षत्रियों से मिलती है। राजस्थानी जाटों के ऐसे अनेकों गोत्र

(१) देशराज जघीना, जाट इतिहास, पृ० ५९

हैं जो क्षत्रिय गोत्रों के सर्वथा समान हैं। यथा—परिहार, सोलंकी सासर, कछवाह, भाटीवाल, सेंगर और भट्टी। मध्यकालीन क्षत्रियों के गोत्र और जाटों के गोत्र एक जैसे पाये जाते हैं, जैसे—मारी, राठी दीक्षित दाहिया वहिया और चोटिया[1]।

इसके अतिरिक्त जाटों में अन्य वर्ण एवं समकक्ष जातियों का भी सम्मिश्रण हुआ जान पड़ता है। जाटों में 'जाखी' 'बुरा' 'ईसराम' और 'भूरिया' गोत्र पुरुषोत्तम ब्राह्मण के पुत्रों के नाम पर चालू हुए हैं।

पुरुषोत्तम ब्राह्मण नागौर के पार्श्ववर्ती किसी ग्राम का रहने वाला था। मुसलमानों ने एक बार वध करने के उद्देश्य से ब्राह्मण पुरुषोत्तम की गाय को पकड़ लिया। धर्म-प्राण पुरुषोत्तम से यह जघन्य कृत्य नहीं सहा गया। उसने साहस पूर्वक वधिकों का काम तमाम कर उनके हाथ से गाय की रक्षा की। इसी के फलस्वरूप पुरुषोत्तम को तात्कालिक यवन शासक का कोप भाजन बनना पड़ा। पुरुषोत्तम को विश्वास हो गया था कि यवन शासक द्वारा उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है अतः दूरदर्शी पुरुषोत्तम ने अपनी सती साध्वी गृहलक्ष्मी को सचेत कर दिया कि उसके पकड़े जाने पर वह अपने चारों पुत्रों सहित 'खेड़[2]' में अपने यजमान के यहाँ शरण लेवे। तदनुपरान्त ऐसा ही किया गया। निदान पुरुषोत्तम भी उस यवनशासक द्वारा पकड़ा गया और निर्दयता पूर्वक तलवार के घाट उतार दिया गया।

पुरुषोत्तम के चारों पुत्र उस दिनों बहुत छोटे थे। जब वे विवाह के योग्य हुए तो ब्राह्मणों ने इन्हें भ्रष्ट हुआ समझकर जाति बहिष्कृत कर दिया। अतः उनके सम्बन्ध में बड़ी कठिनाई उपस्थित हुई क्योंकि इनका आश्रम

(१) 'चोटिया' खण्डेलवाल ब्राह्मणों का भी एक शासन है—
शिखा चूड़तरा यस्य सर्वांगे लुलिता परा।
तस्मात्प्रोक्त इतिख्यातो भूसुरो भुवि संज्ञके॥
(ब्राह्मण [illegible] इतिहास

(२) नागौर से लगभग ९ कोस पूर्व भाग में [illegible] ग्राम का महत्व है।

दाता 'डेह' का शासक जाट था। ये डेह से चलकर वाडेला[1] ग्राम में आकर रहने लगे और जाट जाति से ही अपना वैवाहिक सम्बन्ध जोड लिया। उस समय वाडेला की अधिकतर आबादी तिवाडी ब्राह्मणों की थी। पुरुषोत्तम के चारों पुत्रों ने उस समय की परिपाटी के अनुसार तिवाडी को ही अपना 'घरू ब्राह्मण' बनाना स्वीकार किया। स्वय पुरुषोत्तम भी तिवाडी ब्राह्मण था[2]। पुरुषोत्तम के चारों पुत्रों की सन्तान उनके नाम गोत्र से ही जाट जाति में प्रसिद्ध हुई। यही कथा भाटों की 'बहियों' एव मिरासियों (ढाढियों) की दन्त कथाओं में प्रकारान्तर से लिखी तथा कही जाती है।

ज्ञात होता है कि पुरुषोत्तम के चारों पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र 'जाणी' बड़ा ही साहसी, वीर तथा कुशल विजेता था, क्योंकि जाणी के नाम पर 'जाणीवा' 'जाणीयावास' आदि[3] कई ग्राम बसे हुये हैं। सम्भवत जाणी ने 'जाणीवा' को ही अपना प्रधान स्थान बनाया, क्योंकि अब तक 'जाणीवा' में अधिकाश आबादी जाणी जाटों की है। 'जाणीवा' के स्थापना-काल निर्धारण के सम्बन्ध में अब तक प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं हुई है। संभवत. १४-१५ वीं शताब्दी में यह ग्राम बसा हो।

'जाणीवा' से जाणी के वशज केतली ग्राम आकर बस गये। तत्पश्चात् जाणी के वशज कुन्तोजी ने केतली से कतरियासर नाम देकर आबाद किया। कुन्तोजी की पीढी में वजीणजी हुये और वजीणजी के कुल में शील-सन्तोष

(१) यह ग्राम श्रीडूगरगढ तहसील में है। श्रीडूगरगढ से दक्षिण में लगभग १० कोस की दूरी पर है।

(२) अन्य मतानुसार 'जोशी' था किन्तु सिद्ध रामनाथ ने पुरुषोत्तम को पारीक-तिवाडी ब्राह्मण ही माना है एव उसका जीवनकाल वि० स० १३९० माना है। उपर्युक्त पुरुषोत्तम एव उसके पुत्रों के सम्बन्ध में सिद्ध रामनाथजी ने एक पर्चा वि० स० १९९९ में श्री राधाकृष्ण प्रिंटिग प्रेस, जोधपुर से प्रकाशित करवाया था, जो हमारे सग्रह में है।

(३) यह ग्राम नागौर परगने में नागौर से १० कोस के आस पास पूर्व दिशा में है।

क्षमाव्रतधारी, परोपकारी, सद्‌गुणसम्पन्न, विराटकाय अत्यधिक प्रभावशाली साहसी वीर-पुरुष बीसलजी हुए। बीसलजी की गुण-गरिमा की साक्षी भाटों की पुस्तकें अनेकों विशेषणों के साथ दे रही हैं। बीसलजी ने अनेकों बार कटक (सामूहिक रूप से डाका डालने वाला दल) दौड़ने वाले भट्टी एवं संधारों[1] के विरुद्ध अपनी तलवार उठाकर उन्हें परास्त किया था।

बीसलजी के चार पुत्र हुए-(१) हमीरजी (२) राजोजी (३) धनराजजी और (४) मंगलोजी। भाटों और उनकी बहियों के कथनानुसार बीसलजी की अन्तिम सन्तान मंगलोजी ने वि० सं० १५४० में[2] विश्नाई धर्म स्वीकार कर लिया।

महामना बीसलजी के देवलोक होने पर उनके ज्येष्ठ पुत्र परम विवेकी धर्म-परायण तथा भाग्यशाली हमीरजी कसरियासर ग्राम के अधिपति घोषित हुए। हमीरजी की धर्म-पत्नी का नाम रूपादे था, यह 'सोमवाल' शाखा के जाट की लड़की थी। किन्तु यह पता नहीं चलता कि हमीरजी की ससुराल किस ग्राम में थी।

एक हस्तलिखित लेख में योगी श्री कृष्णनाथ 'तितिक्षु' ने हमीरजी के विषय में लिखा है— 'उनका यश मरुस्थल की चारों दिशाओं में चन्द्रमा की कौमुदी के सदृश देदीप्यमान हो रहा था। उनका घर-जन धन-धान्यादि से सुसम्पन्न था। वे दान करने में राजा कर्ण के समान साहसी थे और प्रजापालन में विष्णुजी के समान कहें तो भी अत्युक्ति असंभव है। उनकी अर्द्धांगिनी श्रीमती रूपादे पातिव्रत्य धारिणी सती सीता के सदृश सौभाग्यवती और सुशीला महिला थी। इतना सब कुछ होते हुए भी दैवदुर्विपाक से

---

(१) सांभो धन बरती में है ही का कोई कटक संधारे।
(सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी)

(२) वि० सं० १५४० में विश्नोई धर्म अस्तित्व में भी नहीं आया था। हां इस समय में श्री जांभोजी गुरु गोरखनाथ द्वारा दीक्षित अवश्य हुए थे।

युवावस्था में[1] उनके हृदय में चिन्ता की आग निरंतर धधकती रहती थी। कारण यह था कि उनकी धन-सम्पत्ति तथा यश का स्तम्भस्वरूप कोई पुत्र नहीं था।

काल की अबाध व निरतर गति में कोई विराम नहीं आता। उदय और अस्त, दिन एवं रात काल के पटाक्षेप उठते एव गिरते रहते हैं, क्षणों और पलों के सूक्ष्म कदमों से काल देवता निरतर दौडते चले जाते हैं। बाल्य में यौवन और यौवन में वृद्धत्व छिपा हुआ है। आशा की लम्बी रज्जु का अन्तिम छोर हमीरजी को तब दिखाई दिया जब वे काफी वृद्ध होगये। जैसे जैसे हमीरजी की वृद्धावस्था समीप आती थी वैसे ही हमीरजी के हृदय में चिन्ताग्नि अधिकाधिक प्रज्ज्वलित होकर उन्हें दग्ध किए जा रही थी, फिर भी हम उस परमपिता परमात्मा की अद्भुत इच्छा व विधान को समझने में सर्वथा असमर्थ हैं। क्षण में राई को पर्वत, पर्वत को राई, शुष्क को हरित, हरित को शुष्क, जल पर स्थल, स्थल में जल और असभव को सभव करने की सामर्थ्य रखने वाले उस जादूगर के बारे में कुछ भी कह सकना असभव है। सम्पूर्ण ऐश्वर्यशाली प्रभु के अद्भुत विधान को यह साधारण चर्मचक्षु धारी मनुष्य समझ भी कैसे सकता है कि वह कहाँ-किस रूप मे क्या माया दिखाने वाला है।

हमीरजी की अवस्था ८५ वर्ष[2] की हो गई थी तथा उनकी अर्द्धांगिनी रूपादे की अवस्था उनसे दस वर्ष कम रही होगी, फिर भी उन्हें सन्तान लाभ नहीं हुआ। धन-धान्य से पूर्ण घर में हमीरजी को कोई खटकने वाला अभाव था तो एकमात्र यही कि उनकी अभिलाषाओं तथा मनोकामनाओं की प्रतिमूर्ति कोई सन्तान नहीं थी। यदि उनके एक पुत्री भी हुई होती तो यह हृदय विदारक अभाव उन्हें नहीं खलता। निसन्तान होने के कारण ही हमीरजी

(१) सिद्ध रामनाथ ने 'यशोनाथ पुराण' में हमीरजी की अवस्था पुत्र प्राप्ति से पहिले ५० साल की लिखी है किन्तु ५० साल की अवस्था में पुत्र होने की आशा नही छोडी जा सकती, अत हमीरजी की अवस्था बहुत अधिक हो चुकी थी।

(२) वर्ष पिच्यासी ऊमर बीतो, पुत्र होण की मन के रीती। (लोक-श्रुति)

को पद पद पर अपमानित होकर आत्मग्लानि का अनुभव सहन करना पड़ता था। उदाहरण के लिए नीचे दो घटनाओं का उल्लेख किया जाता है जिनसे पाठकों को बोध होगा कि किस प्रकार हमीरजी के जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ हुआ—

(१) हमीरजी की धर्मपत्नी रूपादे एक बार समीप के कूए पर पानी लाने के लिए गई। आगन्तुक महात्माओं के लिए ताजा जल की तात्कालिक आवश्यकता पड़ गई थी, इसलिए स्वयं रूपादे को शीघ्रतावश कूए पर जाना पड़ा था। कूए पर पनिहारिनों की बड़ी भारी भीड़ थी और पारी के अनुसार कूए से पानी भरा जा रहा था। घर पर पधारे हुए सन्तों के लिए जल की तुरन्त आवश्यकता बतलाते हुए रूपादे ने पारी के बीच में जल भरने की अनुमति विनम्रतापूर्वक पनिहारिनों से मांगी।

श्री रूपादे जब पानी का मटका भर कर कूए से उतर रही थी तब किसी स्त्री ने कटाक्ष करते हुए कहा— सन्तों की सेवा करते करते बाल सफेद हो गए ताक खेलाने की लालसा अगले जन्म में ही पूरी होगी' इस तीक्ष्ण वाक्यशर (बाण) से रूपादे का मर्मस्थल बिंध गया पर कोई उपाय नहीं था।

(२) दूसरी घटना यह है— वर्षाऋतु के प्रथम दिन की बात है, हमीरजी प्रातःकाल ही शौचादि की निवृत्ति के लिए जंगल की ओर गए हुए थे, जब वे वापिस घर की ओर आरहे थे तब खेत जोतने को जाने वाले हालियों[1] को सबसे पहिले हमीरजी ही सामने मिले, हमीरजी को देखते ही 'हालियों' के माथे ठनके और उनको मिलना अपशकुन समझ कर वे सब मन ही मन उन्हें (हमीरजी) को कोसते हुए अपने घरों को लौट आये। जब घर वालों ने हालियों से तत्काल ही घर लौट आने का कारण पूछा, तो हालियों ने घरवालों के सामने खेतों के मार्ग में हमीरजी के मिलने के अपशकुन

(१) राजस्थान में पहली वर्षा के होते ही किसान लोग शकुन-स्वरोदय से हल जोतना शुरू करते हैं।

(२) हल जोतने वाले को 'हाली' कहते हैं।

का हाल सुनाते हुए कहा— साल भर की रोटी-व्यवस्था के श्रीगणेश में, खेत यात्रा के समय 'यह अभागा निपूता न जाने कहा से आ टपका।' निपुत्र के दर्शन साल भर की आजीविका साधन मे भला कैसे अच्छा हो सकता था ? पड़ौसी की यह बात सुन कर हमीरजी स्तब्ध रह गये। हमीरजी अब तक ऐसी व्यंग्यात्मक बातें स्त्रियों के ही करने की समझ रहे थे, किन्तु आज तो निकट सम्बन्धी पुरुषों के मुह से भी ऐसी बातें सुनने को मिली। उनके दुख का कोई पार नहीं रहा, उनको अपने जीवन मे ग्लानि होने लगी और वे अहर्निश चिन्तातुर एव खिन्न चित्त रहने लगे। सहसा उन्होंने एक दिन निश्चय किया कि इस घृणास्पद तथा अनादृत जीवन से क्या लाभ ! इससे तो यही अच्छा है कि इस मृततुल्य जीवन को कठिन व्रतादि प्रण द्वारा त्याग देना चाहिए।

शिव-गोरख के परम उपासक हमीरजी ने उपर्युक्त निश्चय के अनुसार अपने ग्राम कतरियासर से कुछ दूर निर्जन वन में जाकर अनशन कर लिया, कहते हैं हमीरजी ने यह निश्चिय किया था कि या तो पुत्र लाभ करने पर सन्तति हीनता का कलक धुल जायगा या देह-पतन होकर चिर शान्ति प्राप्त हो जायगी।

श्री गणपति शर्मा ने 'सिद्धाचार्यप्रशस्ति' में हमीरजी के बारे में इस प्रकार परिचय दिया है—

> हमीरः क्षत्रियो जात्या विसलस्य सुतोऽभवत् ।
> कत्रियासर वासोऽसौ पुत्र चिन्तातुरस्तदा ॥

सिद्ध रामनाथजी ने भी 'यशोनाथ पुराण' में हमीरजी को ज्येष्ठ क्षत्रिय ही लिखा हैं परन्तु लोक प्रचलन से जाणी जाट 'वामणिया जाट' ही कहलाते हैं। देश के समस्त जाणी जाट जसनाथी होते हैं तथा मास मदिरा से पूर्ण परहेज रखते हैं।

तृतीय अध्याय

सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी का प्रादुर्भाव

सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी का प्रादुर्भाव विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के पूर्व भाग में हुआ, और वे सशरीर केवल २४ वर्ष ही राजस्थान-बीकानेर की पुण्यवती धरा भागथली[1] पर विराजमान रहे। उस समय दिल्ली के सिंहासन पर लोदीवंश का अधिकार था[1]। सैकड़ों छोटे-छोटे राज्य परस्पर एक दूसरे को हड़पने की ताक में लगे रहते थे एवं एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए जी-जान से प्रयत्नशील थे। मुसलमान शासक हिन्दू राजाओं के सहयोग से मुसलमान शासक पर और हिन्दू राजा मुसलमान शासकों के सहयोग से हिन्दू राजा पर धावा बोलकर उसके राज्य को विनष्ट करने पर तुले हुए थे। सम्पूर्ण भारतवर्ष पर एकछत्र राज्य नहीं था, जिसमें भी बल-पराक्रम हुआ, जिसके अधीन बलवान सेना हुई, वही इस प्रान्त का शासक बन बैठा और दिल्ली के बादशाह ने भी उसे उसी समय शासक स्वीकार कर लिया।

राजस्थान के विशाल भू-भाग में स्थित बीकानेर मण्डल का अन्तवर्ती यह मरु-प्रदेश आधुनिक काल की भान्ति इतना सघन जनाकीर्ण नहीं था थोड़ी-थोड़ी दूरी पर उत्तुंग अट्टालिकाओं से सुसज्जित भव्य व सुन्दर नगर, शहर एवं कस्बे इस भूमि पर नहीं थे। छोटे छोटे ठिकानों के रूप में जाटों का गणराज्य था। बलोच, भट्टी और लंभारों के सामूहिक आक्रमणों से यहां की जनता त्राहि त्राहि कर उठी थी।

---

(१) उस समय दिल्ली का बादशाह सिकन्दर लोदी था।

भगवती श्री करणीजी[1] के सत्परामर्श से राव वीका ने इस प्रदेश को अपने अधीन किया, जिससे यहा के शासकगण जाटों का पूर्णतया राजनैतिक पतन हो गया। पहले तो राजमद मे जाटों का नैतिक स्तर गिरा, उन्होंने कुलोचित कर्म का परित्याग किया और तत्पश्चात् राज्यपतन से यहाँ के बहु-सख्यक जाट घोर निराशा के वातावरण में अपने को असहाय समझने लगे। भगवती श्री करणीजी ने सब प्रकार से राजनैतिक विषमताओं का ही विनाश करना चाहा। उन्होंने समाज को अन्य निर्देश नहीं के बराबर दिये।

उस समय इस प्रदेश की धार्मिक स्थिति तो बहुत ही जटिल थी। लोगों में यज्ञ-यागादि के प्रति कोई रुचि नहीं रही थी। तान्त्रिक, वाममार्ग के प्रचारक और पाखडी जमातियों के इस प्रदेश में बराबर आवर्तन प्रत्यावर्तन होते रहने के कारण मरुधरा के निवासी ऐसे जघन्य कर्मों में अज्ञानतावश प्रवृत्त हो चुके थे, जो सर्वथा मानवता के उत्थान में बाधक थे। भैरव, भोमिया आदि विविध काल्पनिक देवों की आराधना में मास-मदिरादि से बलि-देने की कुत्सित भावना यहा के लोगों में घर करती जा रही थी। यहां के जनमानस पट पर अंकित कुटेवरूपी कालिमा से धर्म जैसी पवित्र वस्तु की विकृति का स्पष्ट आभास मिल रहा था। लोगों की आचार विचार की भावना, स्वधर्म के प्रति आस्था न जाने कहाँ विलुप्त हो चुकी थी।

अधिकांशत वीरान और उजाड़ इस रेतीले भूभाग पर ऐसा कोई इतिवृत्त सुनने में नहीं आया, जिससे यह जाना जासके कि सिद्धाचार्य

---

(१) ये चारणी थी। इनका जन्म जोधपुर राज्य के सुयाप गांव में विक्रम सवत् १३८७ में और देहान्त १५१ वर्ष की अवस्था में सवत् १५३८ में (अन्य मतानुसार १५९५ चैत्र शुक्ला ९ गुरुवार) को हुआ। एक दोहा भी प्रचलित है-

पनरैसै पिच्यार्णवें, चैत सुकल गुरनम्म,
देवी सागण देह सूँ, पूगा जोत मरम्म।

ये देवी का अवतार मानी जाती हैं और देवी के रूप में पूजी जाती हैं।

(राजस्थान रा दूहा, पृ० २०४)

श्री जसनाथजी एवं जाम्भोजी¹ से पहिले कोई सामर्थ्यशील महापुरुष यहाँ हुआ हो। अतः इस प्रदेश में धर्म-प्रधान भावना को लेकर ही आदि महापुरुष श्री जसनाथजी ने विविध सबद' 'वाणी' एवं योगबल के माध्यम से यहाँ के लोगों के हृदय में सच्चे धर्म की भावना जागृत की। गीता में लिखा है—

> यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
> अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
> परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
> धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

धर्म की संस्थापना के लिये युगयुग में भगवान अनेक रूपों में जन्म लेकर अधर्म का नाश करते हैं। भारत के भिन्न २ प्रान्तों में उस समय अद्भुत से महापुरुष एक साथ उत्पन्न हुए और उन सब ने अपने अपने प्रान्तों में धर्म का प्रचार व पुनरुद्धार किया एवं लोगों के नैतिक स्तर को ऊंचा उठाया।

जिस काल में श्री जसनाथजी का प्रादुर्भाव हुआ था वह समय निःसंदेह ही बड़ा विकट था। समाज मानवोचित सद्गुणों को छोड़कर दानवोचित आसुरी सम्पदा के भ्रम जाल में फंस चुका था। ऐसा कहना अनुचित न होगा कि यह समय आध्यात्मिक अशान्ति का युग था। मानव मस्तिष्क में नये नये विचार उठ रहे थे। मनुष्य जीवन के जन्म-जरा-मरण आदि दुःखों से छुटकारा पाने के साधन खोज खोज रहे थे। वे ऐसे महापुरुष की प्रतीक्षा

(१) श्री जाम्भोजी महाराज का जन्म विक्रम सं. १५०८ भाद्रपद कृष्णा अष्टमी को आधी रात के समय पंवार क्षत्रिय जाति में जोधपुर राज्य के पीपासर नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम ठाकुर लोहटजी और माता का नाम हंसादेवी था। वि. सं. १५४२ में वे गुरु गोरखनाथ द्वारा योग दीक्षित हुए और उन्होंने 'बिश्नोई' धर्म की स्थापना की। आजन्म ब्रह्मचारी रहकर बयासी वर्ष की अवस्था में वि. सं. १५९३ मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष की नवमी को लालासर (बीकानेर) ग्राम के जंगल में जाम्भोजी ने इस शरीर को छोड़ दिया। उन्होंने बीस तथा नव (उनतीस) बातों की अपने अनुयायियों को शिक्षा दी जिससे वे बिश्नोई कहलाये गये।

कर रहे थे, जो उन्हें मोक्ष का मार्ग बतलाता। जो सासारिक दुःखों की सवेदना से उन्हे बचाता, और जो धर्म के उच्च आदर्श को उनके सामने रख कर उन्हें कल्याण-पथ का पथिक बना देता। इन्हीं सब समाधानों को लेकर स्वय भगवान् श्रीकृष्ण ही सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के रूप में विक्रम सम्वत् १५३६ कार्तिक शुक्ला एकादशी शनिवार (अन्य मतानुसार सोमवार) को प्रादुर्भूत हुए[1]। आचार्य विनोवा के शब्दों में —

'सन्तों की परम्परा अति प्राचीनकाल से आज तक चली आ रही है। जब से मानवता का उद्गम हुआ, सन्तोका आविर्भाव हुआ है[2]"।

"सिद्धाचार्य प्रशस्ति" में लिखा है[3]—

धर्मः सनातनो लोके, आपद्ग्रस्तो यदाऽभवत् ।
यशोनाथस्तदा कालेऽवतीर्णो भुवि लीलया ॥

सिद्ध रामनाथ ने लिखा है[4] –

सन्त तणा पग देखतॉ, करै मेदनी आस ।
पाप हरै पुन ऊपजै, करै ग्यान परकाश ।
ईश्वर के शुभ अंशते, होवत संत सुजान ।
नित्य गुरू जसनाथजी, प्रकटे श्री निरवान ।

यशोनाथाष्टक में सिद्धाचार्य को कविने इस प्रकार नमस्कार किया है—

---

(१) विक्रम सवन् पचदश, गुणचाली दरसात।
कार्तिक शुक्ल एकादशी, मिल्यानाथ परभात।
जाणी जाट हमीरजी, वा घर हो ओतार।
'भागथळी' जसनाथजी, दु ख खडन सुखधार।
(यशोनाथ पुराण, उत्पत्ति प्रकरण, पृ० २)

(२) वियोगी हरि, सन्त-सुधा-सार, प्रस्तावना, पृ० ९।

(३) गणपति शर्म्मा, क्यामसर, रामगढ (शेखावाटी)।

(४) यशोनाथ पुराण, उत्पत्ति प्रकरण।

नित्यमुक्त योगिराजं सर्वज्ञं सर्वतोमुखम् ।
सच्चिदानन्द-सिद्धेशं जसोनाथं नमाम्यहम् ।
वेद-वेदान्त तत्त्वज्ञं सर्वतंत्र स्वतंत्रकम् ।
ब्रह्मनिष्ठं समाचार्यं, जसोनाथं नमाम्यहम्[1] ।

सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी का ऐतिहासिक जीवनवृत्त लिखने का प्रयास करते समय कुछ कठिनाइयाँ विशेष रूप से उपस्थित होती हैं।

भारत के समस्त सन्तों की यह प्रणाली रही है कि वे अपने विषय में बहुत कम कथन करते थे। सिद्धेश्वर ने भी अपने निजी परिचय के सम्बन्ध में बिल्कुल कथन नहीं किया। जो कुछ उन्होंने कहा है, वह भी केवल किसी को उपदेश करते समय प्रसंग वश आध्यात्मिक परिचय के रूप में ही[2]। जिससे

---

(१) श्री ब्रह्मानन्दजी शास्त्री चोटिया, जसोनाथाष्टक जसोनाथ संहिता पृ १

(२) 'सिंभू धड़ो' की निम्न पंक्ति में श्री जसनाथजी कहते हैं—

मागणजी ओतार लियो है, कुण सह अन्तर पारू ।

लोहापांगल को कहते हुए—

हम हरखेश निरंजन जोगी, जुग जुग रा अगवाणी ।
जोंसूँ जैसा तोंसूँ तैसा, और न जोवां पाणी ।

राव बीका के पुत्र धड़सी को—

म्हे तो धड़सी आद ही हुंता, बरतन्ता धुंधूकारू ।
आपही करता आपही भरता, आपही सृष्ट विचारू ।
जब री धड़सी कोंसूँ बूझै, आद रा देवों विचारू ।

हे धड़सी ! जब प्रारंभ में सर्वत्र अन्धकार था तब भी हम ही थे। [illegible] कर्ता हर्ता और इष्ट हैं। और भी—

दुनियाँ में समझाऊ आया कई तारया गिंवारू ।
समझ्या समझिया माहीं ढोटै गया हैंकारू ।

सिद्धाचार्य धड़सी को फिर कहते हैं—

जनम मायां आपरी निभावाँ करो जका मन भाएँ ।
तीन कोटड़ा नाम मणीजाँ अम्मर रचिया थाएँ ।
असंग मारों दुष्ट पठाणां, निकलंग नाम कहाएँ ।

जन्म, जाति, स्थान एवं निर्वाण के विषय में अधिक कुछ भी नहीं जाना जा सकता। अधिकाश सिद्ध पुरुषों के जीवन वृत्त अनुश्रुतियों के आधार पर ही लोक प्रचलित रहते है। सिद्धाचार्य के जीवन-वृत्त सम्बन्धी जो पुष्ट प्रमाण हैं, वे जसनाथी सम्प्रदाय में प्रचलित "जलम-भूलरा" नामक पद्य हैं। अब तक प्राप्त जलम भूलरों की संख्या चार है। अधिक प्राचीन जलम-भूलरा जियोजी साखले का है[1]। जियोजी ने अपनी स्वाभाविक रचना शैली में सिद्धेश्वर का इतिवृत्त वर्णन किया है, जो इस प्रकार है—

कळ दसमैं प्रगटिया जादम, घर जाणी रै आया[2]।
बाळक आय हुया हरियाळा, सोवन थाळ बजाया।
सोवन तणियाँ पिंगो बान्ध्यो, ले माता हुलराया।
दिना दसा (रो) दसोटण थरप्यो, जोशी ने तेड़ाया[3]।
कुळ रै जोशी पुस्तक बाँच्या, जसवन्त नाम दिराया।
दूजी दुनियाँ जव तिल बद्धै, जसवन्त जोत सवाया।
ना'ना सूँ हर मोटा हुवा, बरस बा'रा बोळाया।

दसवें (दशावतार) कलियुग में प्रकट होकर भगवान श्रीकृष्ण जाणी के घर आये। बालक आकर आनन्दित हुआ, (बालक के प्राप्त्युपलक्ष में) सोने का थाल बजाया गया। (बालक के) झूलने के लिये सोने की तनियों से पालना बाधा और माता ने (बालक को) लोरी दी। जोशी को बुलाकर दस दिनों का दशोटन (नाम करण सस्कार) किया। कुल के जोशी ने बालक का नाम जसवन्त रखा। दूसरे बालक यव और तिलक के प्रमाण से बढते हैं, (किन्तु) बालक जसवन्त सवाई ज्योति से बढता है। बालक से भगवान (जसनाथ) वृद्धि को प्राप्त हुए। इस क्रम से बारह वर्ष व्यतीत होगये।

---

(१) जियोजी सांखला पालोजी के शिष्य एव जसनाथजी के समकालीन माने जाते है। सिद्धाचार्य श्रीजसनाथजी की समाधि पर स्थित मन्दिर के निर्माण में इनका बड़ा योगथा। इनकी जन्मभूमि पूनरासर (बीकानेर) से पश्चिम में सांखलो का बास था।

(२) (जाणी जाट हमीरजी होंता, जिणघर बाळक आया, कुछ लोग इस पंक्ति का भी उच्चारण करते हैं, पर यह क्षेपक है)

(३) तेडो तेडाया जोशी नें बुलाया, नखतर बार बुझाया।

चूर चूरमो फड़कै बान्ध्यो, हित कर माय जिमाया ।
गिया डिसण में हद चरन्ती, सोधण नै मुकळाया ।
भागथळी गुरु गोरख मीळिया, जिण जोगी भरमाया।
स्वामी देख'र संको आण्यो, गुरु धीरज बन्धाया ।
काना फूंक सीस पर पंजो, सतरो सबद सुणाया ।
चेलै रै फड़कै भोजन होतो, गुरु चेलै रळ पाया ।
गुरु री तोंबी पाणी होतो, चेलो कर हर पाया ।
गुरु अर चेलो रळमळ चाल्या, नगर नेड़ै रै आया ।
चेलो फिर फिर पाछो जोया, गुरु (म्हारै) नजर न आया ।
मार पलाथी तपस्या बैठा, सूरज सूं लिव लाया ।
समद सूं सिद्ध हरमल हुआ, सेव गुरां री आया ।

एक दिन माता (रूपादे) ने बालक को प्रेम पूर्वक भोजन करवाया तथा चूरमा चूरकर कपड़े के छोर में बान्ध दिया और निर्जन वन में चरती हुई साँडों (ऊँटनियों) के समूह को खोजने के लिये भेज दिया। (वहाँ) भागथली में (बालक जसनाथ) को गुरु गोरखनाथजी मिल गये (और) उस योगी ने सांसारिक कार्यों की ओर से भ्रमित कर दिया। (बालक जसनाथ) योगी को देखकर (कुछ) सशंकित हुए (किन्तु) गुरु गोरखनाथ ने उनको धैर्य बन्धाया (और) उनके सिर पर वरद-हस्त रखकर कान में 'सत्य शब्द' की फूँक देदी अर्थात् योग दीक्षित कर लिया। शिष्य (जसनाथ) के कपड़े में जो भोजन बन्धा हुआ था उसे गुरु और शिष्य ने मिलकर पाया। गुरु के कमण्डलु में पानी था उसे गुरु गोरखनाथ ने शिष्य समझ कर (बालक जसनाथ को) पिलाया। तत्पश्चात् गुरु और शिष्य दोनों मिलकर नगर (कतरियासर) के समीप आये। वहाँ शिष्य ने जब मुड़कर पीछे देखा तो गुरु दिखाई नहीं दिये। (बालयोगी) अपने गुरु के पद चिह्नों पर वहीं पलाथी लगाकर बैठ गया एवं उन्होंने सूर्य से लगन लगाली। (कुछ समय बाद) समद् गाँव से सिद्ध हारोजी चलकर गुरु की सेवामें आये।

हरमल हर री सेवा कीनि, पार गुरॉ रा पाया ।
हरमल नै गुरु आज्ञा दीवि, सत रा राह बताया ।
गुरु चेला आळोच रचाया, दिन सात्यू का थाया ।
लेय मजीरा गावण वैठा, गै'रै मादळ वाया ।
जती सती रो अवचळ जोड़ो, थळसर थान रचाया ।
सरण सिद्धॉ रै 'जियो' वोलै, जलम झूलरो गाया ।

हारोजी ने अपने गुरु जसनाथजी की वड़ी सेवा की और गुरु के भेद को समझा । गुरु ने हारोजी को सत्य का मार्ग बताते हुए आज्ञा दी । (यहॉ आज्ञा देने से यह अभिप्राय है कि सती काळलदे को लाने के लिये हारोजी को चूड़ीखेड़ा भेजा) गुरु और शिष्य ने विचार कर सप्तमी का दिन निश्चित किया, अर्थात् सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी सप्तमी को जीवित रूप में समाधिस्थ हो गये । उस दिन सिद्ध लोग मजीरा लेकर गाने के लिए वैठे और प्रेम पूर्वक वादन किया । यति और सती का जोडा अविचल है, उन्होंने थली पर अपना स्थान वनाया । सिद्ध-शरणगत 'जियोजी' कहते हैं (मैंने यह) जन्म भूलना गाया है।

जियोजी सावला के जलम भूलरे के वाद 'लालनाथजी' के 'जलम भूलरे' का महत्व है तीर्थाटन एव भारत के ऐतिहासिक स्थानों का भ्रमण करते हुए लालनाथजी जव द्वारिका पहुँचे, तव वहाँ के लोगों ने इनका परिचय पूछा । लालनाथजी ने परिचय-प्रसग में यह भी कहा--मैं जसनाथ-सम्प्रदाय को मानने वाला हूॅ । लोगों ने साश्चर्य कहा कि यह जसनाथ और जसनाथ-सम्प्रदाय क्या है ? इसका उद्‌गम तो हमने नहीं सुना । इनका कव, कैसे और कहा जन्म हुआ तथा इनका जन्म लेने का क्या हेतु है ? तव लालनाथजी ने उनकी शका निवारण के लिए यह 'जलम भूलरा' कहा--

सुरनर अरज करै सायव नै, सुण स्वामी दाता किरतार ।
सुरपत सुर तेतीसों विलखा, सुर-नर उवा पोळ दुवार ।
विरमा विस्न महेसर ईसर, गोरख जोगी ज्ञान विचार ।
जादम घर जाणी रै आया, वुध-रुपी निकळंग ओतार ।

मात पिता नै मान बडाई हमीरै घर जाग्या किरतार ।
गुरु चेलो आलोच स्वामी, दोन्यो आया धळी मंझार ।
मात पिता कळपै दुख पावै, सोच करै सारो परिवार ।
थे तो बाळक भोजन कीजो, लाडू पेडा खीर खसार ।
चिरत मिठाई गिरी छुहारा, दूध मंगायो देव दुवार ।
मार पलाथी तपस्या बैठ्या, जाप जप्यो थाँ ओंकार ।

धर्म की पुनःस्थापना के लिए देवता और मनुष्य परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि हे, सबके भरण-पोषण करने वाले भाग्य विधाता, स्वामी, सुनो! आपके द्वार पर इन्द्र सहित तेतीस करोड़ देवता (पृथ्वी पर अधर्म का नग्न नृत्य देखकर) विलख रहे हैं। (तब) ब्रह्मा विष्णु महेश तथा योगिराज गोरखनाथ ने विचार किया। (तब) स्वयं श्रीकृष्ण ही जो पहले बुद्ध रूप में अवतरित हुए थे, वही श्रीकृष्ण जाणी के घर (सिद्धाचार्य श्रीजसनाथजी के रूप में) निष्कलंक अवतरित हुए। (ऐसे अलौकिक बालक के) माता-पिता सम्मान और बड़ाई के (पात्र) हैं (जो) हमीरजी के घर स्वयं भगवान ही प्रकट हुए। गुरु (गोरखनाथ) शिष्य (जसवन्त) दोनों विचार कर धळी के बीच में आये (बालक जसवन्त तो कतरियासर की ओर से गौओं के समूह को खोजने के लिए भाग धळी की ओर आया, और गुरु गोरखनाथ को तो आज यहाँ साक्षात् प्रकट होकर सिद्धाचार्य द्वारा संसारमें ज्ञान ज्योति के प्रसार का निर्देश करना ही था) माता और पिता संताप करते हैं; क्योंकि बालक ने संसार से विरक्ति लेली है अतः दुःखी हुये हैं (और) सारा परिवार सोच करता है। परिवार के लोग बालक (जसवन्त) से कहते हैं— हे बालक! आप तो लड्डू, पेड़े खीर तथा कसार का भोजन करो। (सविनय अनुरोध करने पर बालक ने) घृत मिठाई गिरी (खोपरे) छुहारे तथा दूध पुण्यभूमि 'गोरख मालिये' पर (जहाँ जसनाथजी अपने गुरु के पद चिह्नों पर बैठे थे और जहाँ उन्होंने अपनी हाथ की लाठ की टहनी को गाड़कर पल्लवित किया था उसी स्थान को अब गोरख मालिया कहकर पुकारते हैं) मंगवाया और पद्मासन लगाकर तपस्या में बैठ गये, एवं 'ॐ' मंत्र का जप जपना आरम्भ कर दिया ।

लेय विसन्नर होमण बैठा, घिरत मंगायो देव दुवार।
विरमा जाप जप्या जुग जूना, सुरग मंडल में गई महकार।
सुर तेतीसूँ हुया सुवाया, सुरपत इन्दर मेघ मलार।
पांच'स पाण्डु[1] दस दिगपाळा[2], सिध सोरासी[3] दस ओतार[4]।

---

(१) १ युधिष्ठिर २- भीमसेन ३- अर्जुन ४ नकुल ५ सहदेव।

(२) दिक्‌पाल— १- पूव के देवता इन्द्र, २- अग्निकोण के अग्नि, ३- दक्षिण के यम, ४- नैऋतिकोण के नैऋति, ५- पश्चिम के वरुण, ६- वायुकोण के मरुत, ७- उत्तर के कुवेर ८ ईशानकोण के ईश्वर ९- ऊध्व दिशा के ब्रह्मा और १०- अधो दिशा के देवता अनन्त हैं।

(३) १- सिद्धरावलनाथ, २- मीननाथ, ३- मच्छन्दरनाथ, ४- चर्पटनाथ, ५- चोरङ्गीनाथ ६- कनकनाथ, ७- काननाथ, कनरीगनाथ, ९- गजवेलीनाथ, १०- गजकथडनाथ, ११- अचलनाथ, १२- अवहलानाथ, १३- स्वर्गविनाथ, १४- रेन्दनाथ, १५- अयनचङ्गरीनाथ, १६- भूसभूसापानाथ, १७- लोहाहरकनाथ, १८- घोडानाथ, १९- चोलीनाथ, २०- चञ्चलानाथ, २१- मलकीनाथ, २२- कपलीनाथ, २३- वर्पाटीनाथ, २४- टिण्डीनाथ, २५- मीडकीनाथ, २६- अमराईनाथ, २७- कुट्टालीनाथ, २८- कुकडीनाथ, २९- घूमकनाथ, ३०- घामकनाथ, ३१- खेचरनाथ, ३२- भूचरनाथ, ३३- नन्दाईनाथ ३४- लोहानाथ, ३५- लव्वरनाथ, ३६- शोरीनाथ, ३७- सुन्दरनाथ, ३८- वनवणखण्डीनाथ, ३९- सिद्ध अर्जुननाथ, (रसग्रन्थ कर्ता) ४०- वहुदण्डिनाथ, ४१- श्रीअव्वाईनाथ, ४२- सारस्वताईनाथ, ४३- भूताईनाथ, ४४- जलपाईनाथ, ४५- भुसकाईनाथ, ४६- सहजाईनाथ, ४७- वालगुन्दाईनाथ, ४८- सागरकुण्डनाथ, ४९- उघाडीपानाथ, ५०- गुरुवानाथ, ५१- गोचरनाथ, ५२- ढेयाढुमकीनाथ ५३ ब्रह्मानन्दनाथ, ५४- कुह्मारीपानाथ, ५५- अजयपालनाथ मुनि, ५६- कपिलनाथ ऋषि, ५७ घून्वलीनाथ, ५८- धर्मनाथ, ५९ नाशकेतनाथ, ६०- सुनकाईनाथ सादिक, ६१- हारीतनाथ, वप्पारावल के परम गुरु, ६२- ठेकरनाथ, ६३- रसूलनाथ, ६४- वीर वकनाथ, ६५- सिद्ध भगाईनाथ, ६६- श्री चतुरनाथ, ६७- भस्मनाथ, ६८- मुक्ताईनाथ, ६९- पाईनाथ, ७०- माईनाथ, ७१- औरानाथ, ७२- गोरानाथ, ७३- चोरानाथ, ७४- भरतनाथ, ७५- कपलनाथ, ७६- जलनाथ, ७७- जलन्धरीपानाथ ७८- हाँडीपानाथ, ७९- नागीपानाथ ८०- कहनिपानाथ, ८१- मूगीपानाथ, ८२, गोपीचन्द्रनाथ, ८३- मर्तृनाथ, ८४- श्री ओघड़नाथ स्वामी।

(४) १- मत्स्य, २ कूर्म, ३- वराह, ४ नृसिंह, ५- वामन, ६- परशुराम, ७- दाशरथीराम, ८- बलराम, ९- वुद्ध, १०- और कल्कि।

धरती[1] धवळ शेष रिख[2] साधक, साध सती[3] को अन्त न पार।
नव नाथों[4] गुरु गोरख आया, नाद बजायो ओंकार।
सुण हो मुल्ला, सुण हो काजी, सुण हो पंडित वेद विचार।
दोऊँ कर जोड़ दाखवै 'लाख', इण विध श्याम लियो औतार।

देव द्वार पर संगृहीत द्रव्य गव्य घृतादि पदार्थों की (हवन कुण्ड में) आहुति देनी प्रारम्भ करदी। यज्ञ के अनादि जाप का अपना आरम्भ किया (उस) यज्ञ की सुगन्धी स्वर्ग–मण्डल में पहुँची (यज्ञ से) तैंतीस करोड़ देवता संतुष्ट हुए (और सन्तुष्ट होकर) सुरपति इन्द्र ने मेघमल्हार (मूसल वर्षा) की। पाँचों पाण्डव दसों दिक्पाल, चौरासी सिद्ध, भगवान् के मुख्य दसों अवतार, पृथ्वी धरनेश्वर शेषनाग, ऋषि और वासुकि यहाँ आये। (जहाँ जसनाथजी हवन कर रहे थे) साधक, दृढ़ भक्ति, सत्पुरुष और सती महिलाएं वो इतनी आईं कि जिनका कोई पार (परिमाण) नहीं। नव नाथों के साथ गुरु गोरख आये (और उन्होंने) ओंकार की ध्वनि की। हे मुल्लाओ सुनो, हे काजी सुनो और हे पण्डित तुम भी वेद का विचार करके सुनलो। लालनाथजी हाथ जोड़ कर कहते हैं— इस प्रकार परमात्मा ने अवतार लिया।

★ ★ ★ ★

जियोजी सांखला और लालनाथजी के जसम झूलरों के बाद चोखनाथजी का जसम झूलरा माना जाता है। चोखनाथजी ने अपने जसम झूलरे में

(१) छप्पन करोड़ पृथ्वी।
(२) रिख—ऋषि जिनमें— रै रै मैं मैं धु मितछिरया कोड़ अट्ठाठी रिख
(३) संसार में सतियों की संख्या सात मानी गई है—

सीता कुन्ता द्रोपदी अनुसूया रिछनार।
तारादे मन्दोदरी सात सती संसार॥

(४) १ ओंकार (ओंकार स्वरूप) श्री आदिनाथ २ उदयनाथ ३ प्राण नाथ ४ सत्यनाथ ५ सन्तोषनाथ ६ अचल अचम्भेनाथ ७ गजबली गजकंथड़ नाथ ८ मायारूपी मच्छंदरनाथ ९ आचारजी (श्री) ज्ञान पारखी सिद्ध चौरङ्गी नाथ।

आदि गुरु श्रीजसनाथजी को बड़े व्यापक रूप में देखा है। चोखनाथजी ने अपने चार युग के सबदों[1] (पद्यों) में भी अपने गुरु के प्रति व्यापक दृष्टिकोण का परिचय दिया है—

जोत सरूपी परगट्या, जुग में जै-जै-कार।
जाग्या भाग हमीर का, अलख लिया ओतार।
पुन पूरवला परगट्या, मछ रूपी ओतार।
झै'र पियाला झेलिया, नीलकंठ निरकार।
ऊबा सुर नुर देवता, बिरमा वेद बिचार।
सुरत भई से जागिया, दस डालम जैकार।

जोत सरूपी=ज्योति-स्वरूप। हमीरजी का भाग्य जाग पड़ा कि उनके घर अलख ने अवतार लिया। पुन=पुण्य। पूरवला=पिछला। मछरूपी=मत्स्य-रूप। (चोखनाथजी ने अपने आराध्यदेव को व्यापक रूप में देखा है—) श्रीजसनाथजी के रूप में वही भगवान् प्रकट हुए, जिन्होंने मत्स्यावतार का रूप धारण किया था, गरलपात्र को सहर्ष स्वीकार कर, जिन्होंने पान किया, उन्हीं नीलकंठ निराकार शिव के रूप में जसनाथजी प्रकट हुए। देवता तथा श्रेष्ठ मनुष्यों ने ब्रह्मा के सम्मुख उपस्थित होकर प्रार्थना की, तब ब्रह्मा ने वेद का विचार कर, जसनाथजी के रूप में दिव्यज्योति को प्रेषित किया। जब भगवान् ही जसनाथ जी के रूप में प्रकट हुए, तब जयकार हुई।

---

(१) देव निकळंगजी परगट्या, जोत जगाई नाथ।
घर हमीरै ओतरया, अलख निरजण आप।
पथ चलायो परमगुरु, मीलिया गोरखनाथ।
हरमल आयो हेतसूं, कहो अगम री वात।
जोग छतीसूं रमरयो, जद निरभै रमिया नाथ।
ओंकारे गुरु रमरह्या, जद म्हे रमिया साथ।
भीड बणी पहलाद में, हिरणा (कस) आयो हाक।
पहलाद पुकारै परमगुरु! वीरियाँ विसमीनाथ।
पलक फिरन्ती परगट्यो, वळवन्त घाती बाथ।
थवउ फाड'र गाजियो, दाणू दळिया घात।
मनस्यारूपी माहुवो (जदम्हे) . . . ।

जूना जोगी परगट्या, माग थळी ओतार ।
हरमल कंठ सरेवैतों, बीती पोह न म्यार ।
पैठ 'गोरखमाळिये' मळकन्ते दीदार ।
तिलक चन्दरमाँ मळकळे, शीस मुकुट गंगधार।
सदा हजूरी देव री' पांडू पोळ दुवार ।
सातम रा मेळा मण्डै, आसी जात अपार।
आसीं देई देवता, होसी होम हजार ।
चढ़े चढ़ावे चूरमाँ, मोसन खीर खसार ।
आगळ नाचै अपछरा, मंगळ गावै नार।
शंख पैंचायण बाजसी, झालर रै झणकार ।
पंथ चलायो परम गुरु, ईसर गोरखनाथ ।
दोनों थळसर ओतरया, मात सती जसनाथ ।
गुरु शरणै 'चोखो' भणै, तूठ्या निकळंग नाथ।

जूना=प्राचीन वयोवृद्ध । मागथळी=माग्यस्थली, संसार। वैसे इस क्षेत्र का नाम भी मागथळी है। (हांसोजी को संदेश द्वारा बुलाकर) श्री जसनाथ जी ने उनको प्रेम पूर्वक अपनी शरण में रखा। गोरखमालिये=आदि आसन (यह वही, पुण्य स्थान है जहाँ सिद्धाचार्य ने बारह वर्ष तपोपदेश किया था) चोखनाथजी को गोरखमालिये पर बैठे हुए तेजस्वी श्रीदेव जसनाथजी साक्षात् भगवान् शंकर के रूप में ही दृष्टिगोचर हुए हैं। श्रीदेव जसनाथजी की सेवामें पाण्डव उनके द्वार का पहरा देते हैं। 'गोरख मालिये' पर सप्तमी का मेला लगता है और अपार यात्री आते हैं। (वहाँ) देवी-देवता भी आयेंगे क्योंकि वहाँ हजारों मन घृत का हवन होगा। अपच्छरा=अप्सरा। बाजसी=बजेगा। आगळ=आगे। चोखनाथजी की मान्यता है कि इस पंथ के प्रवर्तक भगवान् शंकर तथा परम गुरु गोरखनाथजी हैं। उसी परम्परा में मातेश्वरी महासती काळलदे तथा श्रीजसनाथजी पृथ्वी पर अवतरित हुए। गुरु शरणागत चोखनाथजी कहते हैं— निष्कलंक सबके प्राणपति श्रीजसनाथजी मुझ पर संतुष्ट हुए।

× × × × × ×

उपर्युक्त जलम भूलरों मे वर्णित सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के सक्षिप्त इतिवृत्त का आपने अवलोकन किया, अब सवाईदासजी कृत चौथे जलम-भूलरे को भी देखिये। यह जलम भूलरा बडा महत्वपूर्ण है। इस 'जलम-भूलरे' में अन्य जलम भूलरों को अपेक्षा ऐतिहासिक तथ्यान्वेषण का अधिक समावेश हुआ है। इस जलम भूलरे की असाधारण विशेषता यह भी है कि इसमें हमीरजी के विषय में भी कुछ जानकारी प्रकट की गई है, जिससे पूर्ववर्ती इतिहास के ज्ञान में अच्छी सहायता मिलती है। जैसा वर्णन सवाईदासजी के जलम-भूलरे में पाया जाता है वैसा ही वृत्त लोक में प्रचलित है। अत इस जलम-भूलरे पर विश्वास तथा सत्य पक्ष अधिक स्थिर होता है।

वणी झिरोळतॉ कण-पण लाध्यो, माणक मोल अपारी।
आक बाग में आमो ऊगो, ऊगो सतरी क्यारी।
करणी सधीर जती नरजाग्या, जुग में जोत विराजै।
नाथाँ माहिं रमै नारायण[1], (धणी म्हारो) जोगारम साजै।
पै'ली पार परम गुरु[2] भेट्या, स्वामी सिद्ध जटाधारी।

जगल मे ढूढने से (ऐसा) सार (ऐसा) सत्व (ऐसा) माणिक्य मिला, जिसका मूल्य नहीं आका जासकता। आक के बागमे आम पैदाहुआ, (और वह आम) सत्य की क्यारी में उत्पन्न हुआ। कर्त्तव्यनिष्ठ, धैर्यशाली, यतिवर्य (श्री जसनाथजी) जागृत हुए। अब भी उनकी कला (शक्ति) ससार में विद्यमान है। हमारे मालिक नाथों में रमण करते हैं (अर्थात जिन्हों ने अन्त. करणकी वृत्तियों का निरोध कर लिया है) (श्री जसनाथजी) नारायण स्वरूप रहकर योगाभ्यास में लगरहे हैं। सर्व प्रथम जटामुकुट धारी स्वामी सिद्ध परम गुरु (गोरखनाथ) मिले।

---

(१) १ कवि नारायण, २- करभाजन नारायण, ३ अन्तरिक्ष नरायण, ४- प्रबुद्ध नारायण, ५- अविर्होत्र नारायण, ६- पिपलाय नारायण, ७- चमस नारायण, ८- हरि नारायण, ९- द्रुमिल नारायण।

(२) सतरूप, ज्ञानरूप, आनन्दरूप, (सत्य ज्ञानमानन्द ब्रह्म)

हमीरजी नै हरजी मिलिया, रिणविण बीच मझारी ।
आपो उत्तम बताओ थारो, जात पाँत कुळ कांई ।
किण कारण ज्यूँ तपै जोगेसर, करड़ी फूँत बन माँही ।
जात'म जाणी नाँव हमारो, बाळक नि सुत म्हारै ।
के स्वामी ! किसड़ी के दाखाँ, (हररो) नाँव लियाँ गुरु तारै ।
हमीर आवै झुळ सीस निवावै, बासक भोम मनावै ।
बासक पंथ पियाळाँ[1] लागो, बालक सुनमुख आवै ।

हमीरजी को निर्जन वन के बीच में (साक्षात्) ईश्वर ही मिले । (उस परम गुरु गोरखनाथजी ने हमीरजी से पूछा) हे हमीर ! अपना परिचय बताओ आप कौनसी जाति बिरादरी व उत्तम कुल के हैं । (और) दृढ़ विचार करके जैसे योगेश्वर वन में तपता है उसी तरह से आप कैसे वन में तपस्वी की तरह तप रहे हैं । (तब हमीरजी बोले) मैं जाटी जाति का हूँ । मेरा नाम हमीर है । मेरे बालक नहीं है । हे स्वामी ! मर्मस्थल की पीड़ा का कैसे प्रकट करूँ, (क्योंकि हमीरजी को निःसन्तान होने के कारण यहाँ वन में आकर देह त्याग या पुत्र प्राप्ति के निमित्त अनशन करना पड़ा) तब गुरु गोरखनाथजी ने हमीरजी को पुत्र-प्राप्ति के लिए जायला तालाब की ओर जाने का निर्देश किया। यद्यपि जसम झूलरे की किसी पंक्ति से यह आशय प्रकट नहीं होता है किन्तु अन्य अनेकों प्रमाणों एवं अनुभूतियों से यह बात सिद्ध है । हमीरजी (यहाँ बालक के पास) आते हैं (और) नीचे झुककर बालक को नमस्कार करते हैं, तथा पृथ्वी और वासुकि (यहाँ बालक पर सर्प राज ने अपने फन का छत्र कर रखा था) नाग को मनाते हैं । (यहाँ जो) सर्प राज था वह पाताल के मार्ग से चला गया, और बालक हमीरजी के सामने आया या हमीरजी बालक के सामने गये ।

(१) १ पाताल २ तल ३ वितल ४ सुतल ५ तलातल ६ महातल ७ रसातल ।

वालक सू मन माँयलो, मिलियो जोत में जोत मिलावै ।
बाँह पिसार हर कान्धै लिया, हमीर हरिख उमावै ।
सकळ सुधारण कुळ उजारण, रिधि सिधि[२] घर ल्यावै ।
घर लेय जाय घरणी नै सूंप्यो, वालक सू चित लावै ।
हुया अणद अगम घर वाजा, मंगळ गाय वधावै ।
खाती वुलाओ पालणो घड़ावो, रंगरी रीज दिरावै ।
सोनै रूपै रा झालण झूलणा, जसवन्त कुँवर हिंडावै ।
'पाँच सात' 'दोयाँ दसा' में, साँढ्याँ सोधण जावै ।
काना कुंडळ गळ'ज कन्था, गोरख आ वतळावै[१] ।

(हमीरजी की) आत्मा वालक में तद्रूप हो गई जैसे ब्रह्म ज्योति में आत्मा लीन होती है। (हमीरजी) ने भुजाओं को लम्बी फैलाकर ईश्वर-स्वरूप वालक को कधों पर लेलिया । वहाँ (हरिरिख तथा) हमीरजी आनन्द से उमंगित हो उठे। सकल सृष्टि को पवित्र करने वाले तथा कुलोद्धारक ऋद्धि-सिद्धि-सम्पन्न वालक को हमीरजी अपने घर ले आये । हमीरजी ने वालक को घर लेजा कर अपनी गृहलक्ष्मी (रूपादे) को सौंप दिया । (रूपादे का) मातृ-वात्सल्यपूर्ण चित्त वालक में लग गया। (वालक के आने से) घर में वडा आनन्द हुआ। प्रसन्नता के वाद्य वजने लगे। महिलाओं ने मगल गीत गाकर वधाई दी अर्थात् वालक का हार्दिक स्वागत किया। वढई को वुलाओ और वालक के लिए भूला वनवाओ और भूले को रेशम की रग विरगी डोरियों से वाधो। स्वर्ण और चाँदी के (खूटे से वधे हुये) भालरदार भूले पर कुमार जसवन्त को भुलाते हैं। पाँच और सात, दो और दस अर्थात् वारहवें वर्ष में (वालक जसवन्त) ऊँटनियों को खोजने के लिए जाते हैं। (वहाँ भागथळी नाम के स्थान पर) कानों में कुण्डल तथा गले में कन्था (अलफी) पहने हुए गोरखनाथजी ने आकर जसवन्त को सम्बोधित किया और उनको अपने मार्ग में प्रवृत्त कर लिया।

---

(२) योग की अष्ट सिद्धियाँ— अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति प्राकाम्य, ईशित्व वशित्व, और कामावसायित्व ।

(१) कर्णे शोभित कुण्डल शिरजट यज्ञोपवीतान्वितम् ।
भस्माङ्ग धृत कम्वल शशि-निभ विश्वैक शोभाधरम ।

गिरै त्याग गिरवर नैं धाल्या, जसमन्त 'नाथ' कहावै ।
सो जुग आवै, सीस निवावै, पूजा देव चढावै ।
माता'रूपां' पिता 'हमीरजी', धिन(स) पदारथ पावै ।
'सवाईदास' जती नैं सिंवरै, जाळम झूलरो गावै ।

बालक ने घर को छोड़कर उत्तर दिशा-स्थित ऊँचे टीले पर अपना अडिग आसन जमा लिया । अब जसवन्त 'नाथ' संज्ञा से पुकारे जाने लगे, अर्थात् जसवन्त से जसनाथ हो गये। सारा संसार जसनाथजी के दर्शनार्थ आता है और श्रद्धापूर्वक शीश झुकाता है । सभी उन्हें देवता की भाँति पूजते हैं और प्रसाद लगाते हैं । माता रूपादे पिता हमीरजी धन्य हैं, जिन्होंने ऐसा पदार्थ (मानव रत्न) प्राप्त किया है । सवाईदासजी यतिवर्य श्रीजसनाथजी का स्मरण करते हुये जाळम झूलरा गाते हैं ।

• • • • • •

जियोजी सांखला लालनाथजी, चोखनाथजी और सवाईदासजी ने सिद्धेश्वर श्री जसनाथजी के प्रादुर्भाव से निर्वाण तक का मुख्य वृत्तान्त संक्षिप्त रूपमें अपने जाळम झूलरों में विविध निजी मान्यताओं के साथ प्रकट कर दिया है । सन्तों ने श्री जसनाथजी का जीवन परिचय कृष्ण शंकर आदि देवताओं के रूप में श्रेष्ठ मनुष्यों की भावना के फलस्वरूप प्रादुर्भूत यज्ञ-यागादि वेद विहित कल्याणकारी, श्रेष्ठ भावों के प्रवर्त्तक तथा भू-मण्डल में शान्ति समेरा धारक भगवान् की दिव्य ज्योति के रूप में दिया है । जसनाथी सिद्ध लोग जाळम झूलरों को कण्ठस्थ रखते हैं तथा हवनादि के समय सिंभूधड़ों' के पश्चात् इनका भी पाठ (उच्चारण) करते हैं

यदि आजतक की इन सभी उपलब्ध रचनाओं का एक साथ तुलनात्मक अध्ययन कर उन पर विचार किया जाय तो इनके विषय भाषा व रचना शैली में एक विचित्र साम्य दीख पड़ेगा और जान पड़ेगा कि लगभग एक ही प्रकार की विचार धारा व परम्परा का पालन इन जाळम झूलरों में हुआ है । जाळम झूलरों के रचयिताओं ने क्रमशः अपने पूर्व रचयिताओं के आदर्शों व पद्धतियों का स्पष्ट अनुसरण किया है । सवाईदासजी ने जियोजी का और चोखनाथजी ने लालनाथजी का अनुसरण किया है । लालनाथजी और चोखनाथजी जियोजी सांखले से लगभग दोसौ वर्ष पीछे हुए हैं, और और सवाईदासजी इन दोनों से अनुमानतः १००-१५० वर्ष पीछे हुए हैं ।

जलम झूलरों में संवत्, वर्ष, तिथि और वार का उल्लेख नहीं हुआ है। यदि हुआ भी होगा, तो वे पंक्तियां संभवतः अब विनष्ट होचुकी हैं और इस लेखक के बहुत प्रयास करने पर भी उपलब्ध नहीं हो सकी हैं। बहुत काल तक इन जलम झूलरों की रक्षा अनुयाइयों द्वारा कर्णपरम्परा से होती रही है। जलम झूलरों के बाद जसनाथ-सम्प्रदाय में "सिद्धजी रो सिरळोको" छन्द प्रचलित है। जसनाथी लोग इस सिरळोके को एक विशेष राग से बड़े चाव के साथ गाते हैं। मालाणी परगने में इस सिरळोके का विशेष प्रचार है। सिरळोके में संवत्, वर्ष तिथि और वार का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। देखिये.—

श्री जसनाथ रो कहूँ सिरळोको, सुणमुख होणजे नै हुणज्यो रै लोको।
राम भजन रो आयो है मोको, भजन चुकोला तो पावोला धोको।
संवत पनरा सै बरस गुण चाळे, मास काति नै पख उजाळे।
एकादशी नै छनिछर वारो, उण दिन धरती में परगट अवतारो।
गढ विकाणों नै कतरियासर कहिये, जाणी तो जाट हमीरजी रहिये।
आधी रैण रा सपनो दरसायो, जोगी जटाधर गोरख आयो।
उठो हमीरा नै वचन सम्भावो, बाळक परगटियो डावले जावो।
पाना फूला में घर ले आवो, बाटो वधाई खोळे हुलरावो।
मानव नहीं छै देव दरसाया, जुग में जादुपति किरपा कर आया।
जाग्या भाग हो भक्ति वर पाया, भागथळियाँ में पाँव धराया[1]।

यह गीत काफी लम्बा है। इस में भी जलम झूलरों की तरह प्रायः मुख्य २ घटनाओं का ही उल्लेख हुआ है। इन सभी मुख्य घटनाओं के साथ संवत्, वर्ष, मास, तिथि और वार का संयोग, इस सिरळोके में भी नहीं हो पाया है, किन्तु प्रादुर्भाव सम्बन्धी तिथि आदि का उल्लेख इस में वैसा ही हुआ है, जैसी जसनाथी सम्प्रदाय में मान्यता है। जसनाथजी का संक्षिप्त परिचय कुछ अन्य (मुद्रित) पुस्तकों[2] में भी मिलता है पर संवत् तिथि आदि

(१) यशोनाथ पुराण, पृ० ३ में भी पाठान्तर भेद से अंकित है।
(२) मुंशी सोहनलाल; तवारीख राज श्री बीकानेर पृ० ४६ ४७।
रमेशचन्द्र गुणार्थी, 'राजस्थानी जातियों की खोज'

का उल्लेख उसमें नहीं है । शिवनाथजी सिद्ध द्वारा संग्रहीत जसनाथी साहित्य के अनेकों प्राचीन पत्रों में उपरोक्त संवत ही लिखा हुआ मिलता है—

'श्री जसनाथजी संवत् १०७ समा ३? वीसे (बिये) सिध किरस माँ प्रगटा था। पछे सीमत १५ सवें ३५ काती सुदी ११ सनिवार क दिन गांव कतरियासर माँ प्रगट हुआ'। 'वंशावली सिद्धों का' के प्राचीन हस्तलिखित पत्रों में उपर्युक्त संवत का ही विवरण है। 'सिद्धाचार्य श्री जसनाथ'[1] नाम के लेख में भी उपरोक्त सम्वत्, तिथि आदि के साथ शनिवार का भी उल्लेख किया गया है। इन सबके आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि दिव्य देवमूर्ति सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी का प्रादुर्भाव निश्चय ही वि० सं० १५३९ कार्तिक शुक्ला देवोत्थानमी एकादशी शनिवार को ब्राह्ममुहूर्त में हुआ।

हमीरजी को जंगल में तप करते हुए जब तीन दिन व्यतीत हो गये, तब जटा मुकुटधारी तपोधन, शिवावतार गुरु गोरखनाथ ने हमीरजी को दर्शन देकर उनके मनोगत दुःख को सुना और द्रवित होकर हमीरजी को डाबले तालाब पर पुत्र-प्राप्ति का वरदान दिया। 'यशोनाथ पुराण' में लिखा है कि हमीरजी को अर्धरात्रि में ऐसा स्वप्न आया[2] कि एक योगी उनको भाग

(१) संतोष पण्डित, 'निर्वाण पाक्षिक'।

'चमत्कार को नमस्कार' लेखक- राव शिवनाथसिंह हिन्दू समीर प्रेस, जोधपुर। इस ग्रन्थ में भी सिद्धाचार्य की उत्पत्ति संवत् १५३९ कार्तिक सुदी एकादशी सोमवार लिखा है। बालक प्राप्ति-स्थान का नाम डाबला लिखा है। इसमें लिखा है हमीरजी को आकाशवाणी हुई थी।

सिद्ध तुलछनाथ महंत पांचलासिद्धों का (मारवाड़) 'सिद्ध जाति दर्पण' इस ग्रन्थ में भी उपरोक्त संवत् वर्ष का समर्थन है। डा० श्री कन्हैयालाल तथा सत्यप गौड़ 'सिद्धाचार्य महात्मा जसनाथजी तथा लोहापांगढ़' 'राजस्थान-साहित्य' वर्ष १ अंक १।

(२) सामी सपनो दो अलख दरशाया नगरी पसतर धू जोगेसर आया।
मायलड़ी में बालक बतलाया। डाबले तरवर पर हुकम पठाया।
होम वड़ी में बवेर आया जोई बीज करन मैं कया।
जिम जोई पर सभी बताई पहिया हमीरजी उत्तर दिया जाई।

थली में डावले तालाव की ओर जाने के लिए कह रहा है। तव हमीरजी उठे और घोड़े पर जीन कसकर डावला की ओर गये। जलम झूलरों में घोड़े की सवारी का तथा हमीरजी को स्वप्न आने के बारे में विवरण नहीं है।

सरवर डावळै हमीरजी आया, हुई परभाता भानु दरसाया।
खड़िया घोड़ो तो हालै नी आगै, सिंह वसगरी चोकी'ज लागै।
(वही, पृ० ५)

ददर्श स्वप्न धीमान्स रात्रौ सुप्तो द्विनादिते।
गोरक्षनाथ नामाऽऽह डावर्त्ते याहि सत्वरम्।
तत्रवैक सुवालोऽस्ति लीला मानुष विग्रह।
गत्वा तत्र तमानीय पुत्रवान् भवत्व क्षत॥
(गणपति शर्मा, ययामसर सेखावाटी)

योगी कृष्णनाथ 'तितिक्षु' ने अपने एक हस्तलिखित लेख में लिखा है— हमीरजी तीन दिन के वाद एक समय पुत्र चिन्ता के कारण ध्यान में मग्न हो गये। कुछ कालान्तर उनके हृदय कमल में एक अद्भुत अनुपम प्रकाश प्रकट हुआ। अभीतक हमीरजी इस प्रकाश का यथाथ निश्चय नही कर सके थे कि अचानक देदीप्यमान मकराकृत कुंडल जिनके कानों में शोभायमान है तथा जटा का मुकुट वाधे हुए, अंग में भस्म रमाये हुए, कर में कमडल, लिये हुए, तत्वज्ञानी, तपोधन, शिवावतार, योगाचार्य श्री गोरक्षनाथजी ने हृदय में प्रवेश किया। हमीरजी ने उस परमोत्कृष्ट दिव्य मूर्ति को देखकर विनय की भावना से अनेक कल्पना की कि अव मैं इनकी किस विधी से स्तुति करूँ। य इधर विचार ही रहे थे कि कुछ शव्द ध्वनि श्रवगत हुई वह शव्द यह था कि– हे हमीर ! तू क्यो वृथा अनशन कर रहा है। अनित्य पुत्रधन के लिये अमूल्य देह को नष्ट कररहा है। उस समय गोरक्षनाथजी के उपदेश-मय वाक्य को सुनते ही ज्ञानोत्पत्ति के प्रभाव से गभीर मधुर स्वर से नीतियुक्त विनय पूवक नम्र भाव से, हमीरजी ने कहा कि महाराज! आपके दशनमात्र से ही अनेक जन्म के अकृत्य कार्यों का जो अपराध रूप पाप प्राणियो की आत्मा में रहता है वह कपूर के समान एक क्षण में नष्ट होजाता है और इस लोक परलोक में जीव को सुख आपकी कृपा से ही मिलता है। इस प्रकार मनही मन यह कह ही रहे थे कि कानो में फिर मधुर ध्वनि आने लगी वह यह थी कि तुम चिंता न करो। डावले तालाव पर जाओ वहाँ तुम्हें अति विक्रमशाली, धर्मोपदेशक, परमोदार चित्त वाला एक अलौकिक पुत्र प्राप्त होगा।

'म्हारी भिरोल्यों कष्ट मया भा'रो सारण मोख अपारी'—

लिखकर सयाईदासजी ने यह स्पष्ट संकेत किया है कि पुत्र के अभाव से पीड़ित, हमीरजी को जंगल में भटकते (ढूँढते) हुए अमूल्य सार युक्त माणिक्य के रूप में बालक की प्राप्ति हुई। राजस्थानी में 'भिरोल्यों' हाथों के छटपटाने को कहते हैं। हमीरजी तो निःसन्तान होने के कारण छटपटा ही रहे थे। हमीरजी ने जिस जगह अनशन प्रारम्भ किया था, सम्भव है— वह स्थान डाबला के पास ही रहा होगा। अतः हमीरजी उसी स्थान से डाबला चले गये होंगे या हमीरजी पहले घर गये होंगे और घोड़े की सवारी से डाबला गये होंगे। अस्तु। यह कोई विशेष विवाद का विषय नहीं है। किसी भी प्रकार गए हों, हमीरजी डाबला पर चले गये। यहाँ हमीरजी ने एक तेजःपुंज बालक को देखा। बालक पर एक काले साँप ने अपने फन से छत्र कर रखा था, तथा पास में एक सिंह[1] भी बैठा बालक की रखवाली कर रहा था। हमीरजी उनको देखकर भय से पहले तो ठिठक गये पर तत्काल ही हमीरजी ने विनम्रतापूर्वक उनको नमस्कार किया। तब सिंह उत्तराखण्ड की ओर चला गया और साँप पाताल के रास्ते से चला गया।

'बाँह पसार हर कान्धै लिया' 'हमीर' 'हरख' उमावै[2] हमीरजी ने अपनी भुजाएँ फैलाकर प्रभु-स्वरूप बालक को कन्धों पर ले लिया, और हर्ष से प्रमुदित हो उठे। सकल सृष्टि को पवित्र करने वाले, कुलोद्धारक तथा ऋद्धि-सिद्धि-सम्पन्न बालक को घर ले आए और अपनी धर्मपत्नी रूपादे को सौंप दिया। बालक को देखते ही उल्लसित रूपादे के स्तनों से दूध की धारा बहने लगी। यह सब विग्रह-लीला अलग सूत्रों में वर्णित की जा चुकी है। अतः यहाँ अधिक विस्तार की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

यहाँ इस प्रश्न का उठना स्वाभाविक है कि आखिर ऐसा अलौकिक तेजःपुंज बालक डाबला पर कहाँ से आया? इस सम्बन्ध में कई प्रकार की किम्वदन्तियाँ प्रचलित हैं।

---

(१) अलग सूत्रों में सिंह की चौकी का कहीं उल्लेख नहीं है।

(२) राजस्थानी में 'उमावै' और 'हरख' पर्यायवाची शब्द हैं। यहाँ हरख से हर्षादि से भी तात्पर्य हो सकता है।

(१) जसनाथजी सम्प्रदाय में ऐसी मान्यता है कि-स्वयं भगवान् ही बालक के रूप में यहा प्रकट हुए और गोरखनाथजी ने हमीरजी को इस गुसम्वाद से ज्ञात करा दिया, अत. हमीरजी बालक को डाबला से अपने घर ले आये। वह अलौकिक ऐश्वर्य-सम्पन्न बालक था अर्थात् उसका जन्म हुआ ही नहीं, वह गर्भवास में आया ही नहीं।

(२) दूसरा मत है, कि श्रीजसनाथजी, सवत् १०७ समै ३२ सिद्ध किराणा[1] (सिद्धक्षेत्र) में प्रकट हुए थे। यही महात्मा यहा बालक के रूप में प्रकट हुए।

(३) तीसरे मत के अनुसार कहा जाता है कि हमीरजी पूर्व-जन्म (सत्य-युगादि) में हरि ऋषि (हरि-रिख) नाम के ब्राह्मण थे, और उनके कोई सन्तान न होने के कारण उन्होंने भगवान शकर की चिरकाल तक घोर आराधना की। एक दिन प्रत्यक्ष में प्रकट हो कर प्रसन्नतापूर्वक भगवान शंकर ने कहा "हे ऋषि! मन इच्छित वर मागों" हरि ऋषि ने कहा- "भगवन् आप प्रसन्न हैं तो मुझे आप जैसा दिव्य देहधारी पुत्र-रत्न प्राप्त होना चाहिए"। भगवान् शकर ने कहा— "हे ब्राह्मण! तुम्हारी यह इच्छा कालान्तर में पूर्ण होगी"।

कहते हैं यही हरि ऋषि कलियुग में हमीरजी हुए और पूर्व वचनानुसार भगवान् ने सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के रूप में अलौकिक रीति से प्रकट होकर हमीरजी की इच्छा पूर्ति की तथा पुत्र रूप में बारह वर्ष तक उनके घर निवास किया।

---

(१) जि० सरगोदा (पश्चिम पजाब, पाकिस्तान) में सिद्ध किडाणा नाम से एक पहाड़ी प्रसिद्ध है, जिसके सस्थापक योगी भर्तृहरि माने जाते हैं। उन्होंने ही गोरखटीला नाम की पहाड़ी से एक हिस्सा योगबल से तोड कर यहा सस्थापित किया था।

सिद्ध रामनाथजी ने 'यशोनाथ पुराण" में हमीरजी का सत्य युग का नाम भी हरि ब्राह्मण ही बताया है[1]। जसनाथी सिद्धों में भी यह कथा इसी रूप में प्रचलित है जैसा अमराम करते समय गोरखनाथजी द्वारा हमीरजी को सम्बोधित किया गया था— 'जाग जागरे हरिरिख ब्राह्मण जूना जोग विचार"। भगवान् लीलाधारी हैं वे जहां जैसा रूप धारण करना चाहें कर सकते हैं। वाराह, वामन और नृसिंह आदि भगवान् के इसी श्रेणी के रूप हैं। सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी को जसम मूलरों के रचयिताओं ने श्रीकृष्ण का निष्कलंक अवतार माना है[2]।

---

(१) पूर्व जन्म की कहुं समझाई हरिरिख ब्राह्मण हमीर हुताई।
ते दिन की नित्य सेव कराई दिन परसन भर देत वराई।
और वचन हम मांगत भाई मम सुत हत सदा सुखदाई।
युग युग भक्त होत घर पाई ते कारण अवतार धराई।

नित्य निमत भगवान के मम घर हो अवतार।
ये वर हमको दीजिये हरिरिखदास पुकार।

(यशोनाथ पुराण पृ ४२)

(२) उपरोक्त घटना से सम्बन्धित कुछ ऐतिहासिक तथ्य हमारे सामने हैं किन्तु जसनाथ सम्प्रदाय वालों को यह तथ्य स्वीकार नहीं अतएव पुरक मान्यताओं का प्रकाशन ही यहाँ समीचीन समझा गया है। सम्भव है द्वितीय संस्करण में ऐसे ही कुछ ऐतिहासिक तथ्यों का उल्लेख किया जा सकेगा।

श्रीसिद्धेश्वर जन्माङ्गम्

श्री सवत् १५३६ शाके १४०४ (१४८२ ई० सन्) कार्तिक शुक्ला ११ शनेष्टम् ०/० लग्न वृश्चिक।
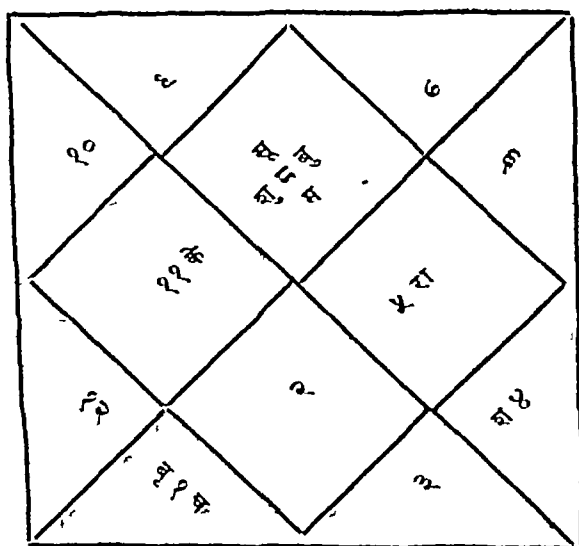
विरछी लगन 'भान' 'कुज' 'सुकर', 'वुध' भी रै'सी आॅ मेळो।
दश में 'राह' भागमें 'पगु' 'गुरु' 'चन्दर' छटै मेळो।
पडग्यो पाप 'केत' चोथै मे, कस जचियो रचियो खेळो।
चिन्ता त्याग भजी 'हरिहर नै. आगैं को देखी वेळो!

बालचरित्र:—

सिद्ध पुरुषों का समस्त जीवन ही अलौकिक घटनाओं से गुँथा हुआ रहता है। महापुरुष अपनी जीवन घटनाओं और विचार धाराओं के द्वारा ही समाज को आत्म शान्ति का मार्ग दिखाते हैं। सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के बाल चरित्रों से सम्बन्धित घटनाओं का नीचे कुछ उल्लेख किया गया है। यद्यपि 'जसम सूतरों' में इन घटनाओं का वर्णन नहीं आया है किन्तु जसनाथी समाज में दन्तकथा के रूप में ये चरित्र सुनने में आते हैं। यशोनाथ पुराण' में भी इस प्रकार के कुछ चरित्र प्रकाश में आये हैं।

(१) बालक जसवन्त– जिस समय एक साल का था खेलता हुआ आँगन में पड़ी एक अग्नी की बड़ी अँगीठी में जा बैठा। माता यह देखकर अत्यन्त व्याकुल और भयभीत हो उठी और दौड़कर बालक को अग्नी के गड़कते हुए ढेर से बाहर निकाला किन्तु बालक के जलने का कहीं निशान तक न देखकर माता के हर्ष और विस्मय का पारावार न रहा।

(२) जब बालक जसवन्त दो वर्ष का था तब खेलता खेलता दौड़कर माता के पास आया और अनुरोध करने लगा–माँ मैं भूखा हूँ दूध पीऊँगा। माता ने उपेक्षा पूर्वक कहा– वह पड़ा है पीलो। माता कार्यवश इधर उधर चली गई। बालक ने लोटा उठाया और वह "कढ़ावणी"[१] में से ढेर मण दूध चट कर गया। दो घड़ी बाद अत्यन्त कौतुहल के साथ माता ने बालक का इस अद्भुत क्रियाकलाप का देखा।

(३) बालक जसवन्त जब पाँच वर्ष का हुआ तब हमीरजी बालक को पढ़ाने के लिए एक विद्वान् ब्राह्मण के पास लेगये। बालक की अल्पायु देखकर पण्डितने कहा, कुमार (कुंवर) अभी छोटा है। कुछ और बड़ा होने पर विद्याध्ययन प्रारम्भ करायेंगे। कहते हैं कि इस पर बालक ने पचीस वर्ष के युवक का दिव्य-स्वरूप धारण कर विनीत भाव से गुरु के समक्ष निवेदन किया महाराज ! मैं छोटा नहीं हूँ। विद्याध्ययन का सुअवसर दें न टालिये।

(१) दूध के कढ़ाने (गर्म करने) का मिट्टी का बर्तन।

ब्राह्मण ने आश्चर्य चकित होकर हमीरजी से पूछा, यह क्या लीला है ? हमीरजी ने सम्माननीय ब्राह्मण को बालक के पूर्व चमत्कारों का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। बालक ने माँ सरस्वती की पूर्ण अनुकम्पा से उन ब्राह्मण देवता के पास स्वल्प काल में ही समस्त विद्याओं का अध्ययन समाप्त कर लिया।

(४) अपने ग्राम के टाडे में एक दिन टोळे के दो भीमकाय 'महिये' (सॉड छोड़े हुए ऊँट जिनसे कोई काम नहीं लिया जाता) लड़ पड़े। महिये गुस्से से पागल होकर इतने भयानक रूप में एक दूसरे से गुथ गये कि उनको छोड़ाने का किसी को साहस नहीं हुआ। सब लोग इधर उधर धूलकोटों पर चढगये। कूए पर जलार्थ आनेवाली पनिहारिनों के मार्ग अवरुद्ध होगये। गाव के पशु भी उधर पानी पीने न आसके। टाडे का शान्त वातावरण क्षुब्ध हो उठा। इस विकट स्थिति को अनुभव कर ससिद्धि-सिद्ध बालक जसवन्त को सब पर दया आई और बालक ने सहज ही दोनों हाथों से महियों के कान पकड कर उन्हें पृथक् कर दिया। उस समय इस दृश्य को हरियाणा के चूड़ीखेडा ग्राम का निवासी नेपालजी वेणीवाल भी देख रहा था।

नेपालजी के घर भी ऐसी ही एक अलौकिक कन्या ने जन्म लिया था, जिसके सम्बन्ध में आगामी अध्यायों में विशेष रूप से लिखा गया है। नेपालजी उस समय किसी सुयोग्य वर की खोज में घर से निकले हुए थे। उन्होंने बालक के समुचित आदर्श गुणों का परिचय प्राप्त कर हमीरजी के सम्मुख सगाई-सम्बन्ध का प्रस्ताव रखा। आगन्तुक नेपालजी में वाञ्छित गुणों का समावेश पाकर, हमीरजी ने उन्हें अपना समधी बनाना उचित समझा और प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृति देदी। शास्त्र-रीत्यनुसार मागलिक कार्य-क्रम का आयोजन किया गया। उस समय जसवन्त की अवस्था दस साल की थी।

(५) ग्रामीण बालकों की तरह बालक जसवन्त भी उस समय जगल में गौ चराने जाते थे। इनकी गायें तथा बछडे बड़े सुन्दर सुडौल थे। उन दिनों यवन तस्करों का बडा प्राबल्य था। वे समूह बनाकर ग्रामीण-धनवित्त पर आक्रमण कर क्षति पहुँचाते रहते थे। वे लोग अधिकाश सिन्ध एव उत्तर पजाब के मार्ग से इस थली प्रदेश की ओर आया करते थे। एक दिन इन लुटेरों की

लोलुप दृष्टि जंगल में चरते हुए जसवन्त के सुडौल गौ बछड़ों पर पड़ी। एकान्त पाकर लुटेरों ने बालक जसवन्त को एक शमी-वृक्ष के तने से कसकर बाँध दिया एवं उन के चारों ओर ईंधन डालकर उसमें आग लगायी और जसवन्त को भस्मीभूत हुआ समझकर, यवन तस्कर गौ-बछड़ों को होरकर नौ दो ग्यारह हुए। थोड़ी दूर जाकर क्रूर-कर्मी यवनों ने बालक जसवन्त के सर्वप्रिय नन्दी बछड़े का वध कर दिया और वहीं बैठकर भक्षण करने लगे। परमसिद्ध जसवन्त का अनिष्ट अग्निदेव कैसे कर सकते थे? अग्नि से निकलकर उन्होंने मुसलमान लुटेरों को एक कोसपर जा पकड़ा और कहा— अरे अन्धो! मेरी गायों को तुम नहीं लेजा सकते इतना कहने के साथ ही उनमें से दो मुसलमान लुटेरे— जो गायों को दौड़ाकर ले जाते थे, तत्क्षण अन्धे हो गये। सिद्धराज ने अपनी गायें अपने अधिकार में की, परन्तु उन गायों में अपने सर्वप्रिय नन्दी बछड़े को नहीं पाया। बछड़े का जंगल में इधर उधर तलाश करने पर देखा कि एक वृक्ष के नीचे शेष दो मुसलमान लुटेरे बछड़े की लाश निकाल रहे हैं। सिद्धेश्वर ने उनको देखकर कहा—अरे नराधमों! 'तुम्हें काल चक्र पहुँचे'। इतना कहते ही एक काले साँप ने उन मुसलमान लुटेरों को डस लिया और वे वहीं धराशायी हो गये। बछड़े को बालक जसवन्त ने अपने योगबल से जीवित कर लिया। चार मुसलमान लुटेरों में से जो दो लुटेरे जसवन्त के कोप से अन्धे होगये थे वे दोनों सिद्धनाथ से प्रभावित होकर उनके भक्त बन गये तथा काश्मीर में नेत्र लाभ कर तपस्यामय जीवन बिताने लगे। इन यवनों द्वारा कुछ सबद भी सादरदीन तथा समसदीन की 'छाप' के प्राप्त होते हैं। कुछ लोगों का मत है कि सादरदीन और समसदीन दो मुलतान के सुल्तान थे। उस समय समसदीन नाम का एक व्यक्ति काश्मीर में भी हुआ है। वह सूर्यदेव का उपासक था। ऐतिहासिक तथ्यों के अभाव में वस्तुतः निर्णय करना कठिन है कि ये सादरदीन और समसदीन वस्तुतः कौन थे?

(६) कतरियासर के कूए पर नमक की कतार आई यद्यपि लोगों को यह भली-भाँति ज्ञात था कि कतार के इन ऊँटों पर नमक लदा हुआ है फिर भी

विनोद भावना से बालक जसवन्त को बुला कर लोग कहने लगे देखो, जसवन्त ! ये ऊँट मिश्री से लदे हुए हैं, इच्छा हो तो निकाल कर दें ! खाओगे ? बालक जसवन्त मुस्कराकर कहने लगा, हाँ ! ये ऊँट मिश्री से लदे हुए हैं। मैं ही क्यों ? आप लोग भी तो खाइये ! नमक की बोरियों के मुँह खोल दिये गये। सर्व प्रथम बालक को ही मिश्री-प्रसाद दिया गया। तदुपरान्त सब ने नमक समझते हुए भी प्रसाद ग्रहण किया। बालक ने मिश्री का टुकड़ा मुँह में रखते हुए सबको मिश्री-प्रसाद चखने की आज्ञा दी। लोगों ने चख कर देखा तो नमक सचमुच ही मिश्री के रूप में परिणित हो गया था। कतारियों ने अपने भाग्य की सराहना की।

चतुर्थ अध्याय

महासती काळूदे का प्राकट्य

बीकानेर नगर से पूर्व की ओर लगभग निन्नानवें कोस की दूरी पर हरियाणा के भूभाग में बूड़ी-खेड़ा नाम का एक गाँव है। उस गाँव में नेपालजी वेणीवाल निवास करते थे। नेपालजी की गणना उस समय के श्रेष्ठ शिवभक्तों में थी। घटना उस समय की है, जब कि नेपालजी के घर में प्यारलदे को जन्म लिये छः मास का समय हो चुका था। माता ने एक दिन बहुत तड़के तीन बजे के समय ६ मास की कन्या प्यारलदे को स्तन पान कराकर झूले में लेटा दिया और स्वयं नित्य की भाँति घर के कार्य में लग गई।

उसी दिन विक्रम संवत् १२४१ आश्विन शुक्ला चतुर्थी को सूर्योदय के समय में देखा गया कि उस छः मास की गौराङ्ग कन्या के साथ तद्रूप ही एक अन्य बालिका लेटी हुई है। यह आश्चर्यजनक घटना त्वरित गति से सारे गाँव में फैल गई और कन्या के दर्शनार्थ गाँव के स्त्री पुरुषों का ताँता लग गया। सम-स्वरूपा कन्याओं के पहचानने में जब माता पिता को कठिनाई हुई तब उनमें से एक बालिका ने श्यामवर्ण धारण कर लिया। इसी श्यामांग कन्या का नाम काळूदे रखा गया। चन्द्रकला की भाँति दोनों ये कन्याएँ वृद्धि को प्राप्त होने लगी। इनकी मधुर मुस्कान शौर्य भरी दृष्टि, सहज संकोचशील स्वभाव आदि से नेपालजी और उनकी धर्मपत्नी अति-प्रसन्न रहने लगे।

(१) नेपालजी के परिवार में किसी के यहाँ विवाह था और विवाहोत्सव में सम्मिलित होने के लिए दोनों बालिकाओं को शीघ्रतापूर्वक जाना था, परन्तु काळूदे ने वस्त्राभूषणों से अपना शृंगार करने में बहुत विलम्ब कर दिया।

परिजन महिलाओं ने काळलदे को चलने के लिए बार २ आवाज दी, पर काळलदे बाहर नहीं निकली। स्त्रियों की व्यग्रता को देखकर स्वय नेपालजी काळलदे के कक्ष में गये किन्तु नेपालजी ने कक्ष में देखा कि पलग पर काळलदे के स्थान पर साज-शृ गार-युक्त एक सिंहनी लेटी हुई है। काल के विकराल रूप को सहसा सम्मुख देखकर, नेपालजी के प्राण सूख गये। वे दबे पॉव कक्ष से वापिस लौट आये, बाहर देखा कि स्त्रियों के साथ काळलदे भी विवाह वाले घर की ओर जारही है।

उसी दिन से नेपालजी काळलदे को महामाया का अवतार मानने लगे। कहते हैं देवी स्वय भी कभी २ अपने को काली एव प्यारलदे को पार्वती कहती थी। लालनाथजी 'जीव समझोतरी' में एक जगह कहते हैं—

' पारवती प्यारी सती, काळी सो हिंगळाद"

देवी का दूसरा चमत्कार यह सुनने मे आया है—

नेपालजी घेणीवाल के घर के सामने एक बहुत बडा पत्थर था, जिस पर कई ऊखल खोदे हुए थे। इन ऊखलों में गाँव की समस्त स्त्रियाँ धान कूटने के लिए आती थी। एक दिन दो चार स्त्रियाँ परस्पर झगड़ा कर बैठी। तू तू, मैं मैं होने लगी। महामाया काळलदे ने सोचा— ऊखल के इस पत्थर के विषय में स्त्रियाँ लडती झगडती रहती हैं और नित नये फसाद होते हैं। मैं इस प्रकार की बुराई नहीं देख सकती। ऐसा निश्चय करके काळलदे आनन फानन में उस पत्थर को उठाकर अपने घर ले आई।

काळलदे की इस असाधारण शक्ति और साहस को देखकर नेपालजी का चकित व विस्मित होना स्वाभाविक था। इससे अधिक सामर्थ्य सम्पन्न वर कहाँ मिल सकेगा? इसी प्रकार के विचार नेपालजी के हृदय को आन्दोलित करने लगे। उनका मष्तिष्क विभिन्न प्रकार के विचारों से चचल रहने लगा। ऐसा होना स्वाभाविक ही था। क्योंकि साधारण कन्या के भविष्य के लिये भी जब माता पिता चिन्तित रहते हैं जैसी कि कहावत है "कन्या जाइरै जगनाथ, जारॉ हेठा होया हाथ" फिर इस असाधारण कन्या के लिए तो नेपालजी का चिन्तित होना अवश्यम्भावी था।

कई दिन तक नेपालजी मन ही मन कुढ़ते रहे। 'किं कर्तव्य विमूढ़' होकर भविष्य के बारे में कोई निर्णय न कर सके।

एक दिन एक ब्राह्मण अपने यजमानों में भ्रमण करता हुआ चूड़ीखेड़ा में नेपालजी के घर आया। प्रसंगवश नेपालजी ने ब्राह्मण के आगे किसी सुयोग्य वर के विषय में अपनी जिज्ञासा प्रकट की।

ब्राह्मण ने प्रशंसात्मक भूमिका बांधते हुए कतरियासर के ग्रामाधिपति हमीरजी के सुपुत्र जसवन्त (जसनाथ=यशोनाथ) का नामोल्लेख किया। ब्राह्मण के मुँह से हमीरजी के पुत्र के गुणों की प्रशंसा सुनकर नेपालजी को कुछ सांत्वना मिली और दूसरे दिन नेपालजी ने कतरियासर के लिये प्रस्थान किया।

महामाया कामख्या की भाँति प्यारल सती भी कम सामर्थ्यशालिनी नहीं थी। माता ने एक दिन प्यारल से बछड़े चराने के लिए कहा। माता की आज्ञानुसार प्यारल गाँव के पोखरे के किनारे बछड़े चराने को चली गई। सांयकाल जब प्यारल अकेली घर में लौटकर आई तो माता ने पूछा, बेटी, बछड़े पीछे क्यों छोड़ आई। गऊ आने का समय हो गया चू ग जाँयगे न। वापिस जाकर बछड़े घेरला, शीघ्रता कर। माता के मु ह से शीघ्रता की बात सुनकर प्यारलदे ने अपनी पंवरी (ओढ़णी) को फटकारा। फटकारने के साथ ही सारे बछड़े पंवरी से बाहर निकल पड़े और अपने २ स्थान (थान=ठाण) पर आ खड़े हुए। माता ने अपनी बेटी के इस चमत्कारिक कृत्य को देखा और दंग रह गई।

पंचम अध्याय

श्री जसनाथजी की दीक्षा तथा यौगिक चमत्कृति

नाथ सम्प्रदाय के प्रणेता एव आदि आचार्य श्री आदिनाथ भगवान् विश्वेश्वर शकर ही हैं। भगवान् शकर से ही नाथ (सिद्ध) सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ है। श्री सिद्ध मत्स्येन्द्र नाथजी को भगवान् शंकर से ही योग दीक्षा मिली थी। श्री मत्स्येन्द्रनाथ की उत्पत्ति-कथा पुराणों में[1] विद्यमान है। पुराणों में मत्स्यनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, मीननाथ, सिद्धनाथ, अखिलसिद्धनाथ और आर्यावलोकितेश्वर[2] आदि शुभ नामों का उल्लेख है। नेपाल-राज्य के अधिष्ठात्री देवता श्री गुरु मत्स्येन्द्रनाथ ही हैं।

आदिनाथो गुरुर्यस्य गोरक्षस्य च यो गुरु'।
मत्स्येन्द्रतमहवन्दे महासिद्धं जगद् गुरुम् ॥

इस पद्य से नाथ (सिद्ध) सम्प्रदाय की परम्परा का पता लगता है। 'शिवदिन केशरी' के शिष्य मालुनाथ ने भी अपनी रचना में कहा है— 'जो गुणातीत अव्यक्त विद्याविलासी, सृष्टि के मूल और सारे ऐश्वर्य के आदि हैं और जो सदा सच्चिदानन्द की स्थिति में ही रहते हैं, उन आदिनाथ को मेरा नमस्कार है।'

---

(१) सकन्दपुराण, नागरखण्ड, अध्याय २६२ तथा नारद पुराण, उत्तर भाग वसुमोहिनी सम्वाद, अध्याय ६९।

(२) आर्यों से अवलोकित अर्थात् साक्षात् ईश्वर (ब्रह्म विद् ब्रह्मैवभवति) बोद्ध मतावलम्बियो ने श्री मत्स्येन्द्रनाथ को 'अवलोकितेश्वर' सज्ञा से देव पदासीन किया है।

'जो सज्जनों के सुख निधान, योगेश्वरों के विश्राम और परमधाम हैं, निरालम्ब देश में जो अनुपम राजा हैं उन मत्स्येन्द्रनाथ को मेरा नमस्कार है।'

ज्ञानेश्वर चरित्र' में लिखा है— महादेव और पार्वती क्षीर सागर के तट पर बैठे ब्रह्म-चर्चा कर रहे थे। महादेव जी कहते जाते थे और पार्वती हुंकारा भरती जाती थी। कुछ समय बाद ब्रह्म-चर्चा में पार्वतीजी इतनी तन्मय हो गईं कि उनको समाधि लग गई तब मत्स्येन्द्र-रूप से भगवान् विष्णु वहां आकर उनके बदले में हुंकारा भरने लगे, पर इस हुंकारे का स्वर कुछ भिन्न जानकर महादेवजी ने पार्वतीजी की ओर देखा। देखा, पार्वतीजी तो समाधि में हैं। तब यह जानकर कि यह काम विष्णु का है, उन्होंने 'अलख' शब्द किया, त्योंही मत्स्य के उदर से बाहर निकल कर कुमाररूप विष्णु ने 'आदेश' प्रतिशब्द किया। यही कुमार मत्स्येन्द्रनाथ (मच्छेन्द्रनाथ) हैं[१]।

स्वयं श्री गोरखनाथजी ने भी अपने गोरखा किमयागार' ग्रन्थ में श्री मत्स्येन्द्रनाथ को 'महा विष्णुसाईं' कहा है, इससे यह ज्ञात होता है कि श्री मत्स्येन्द्रनाथ ही विष्णु स्वामी थे अर्थात् सकल सृष्टि के भर्ता भगवान विष्णु थे।

> नमः समस्त भूताना मादिभूताय भूभृते ।
> अनेक रूप रूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे ॥
> यस्मान्मत्स्योद राज्जातो योगिनां प्रवरोह्यम् ।
> तस्मात्तुमत्स्य नाथोति लोके स्यातोभविष्यति ॥

गुरु गोरखनाथ—

गुरु-भक्ति जिनसे मूर्तिमती हुई, महासिद्धि जिनसे व्यक्त हुई और जो दीनों के उद्धार के लिए दौड़ते फिरते हैं उन गोरखनाथ को मेरा नमस्कार है।

कतिपय सिद्ध-साहित्य को प्रकाश में लाने व उसमें अभिरुचि रखने वाले विद्वानों ने श्री गुरु गोरखनाथजी का प्राकट्य विक्रम की दसवीं शती

(१) पं० लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर अनुवादक लक्ष्मण नारायण गर्दे पृष्ठ ७१।

के अन्त या ग्यारहवीं शती के आदि में माना है[1]।

आधुनिक इतिहास शोधक 'नाथ सम्प्रदाय' का आविर्भाव काल के निर्णय करने में छठी शती तक पहुँच गए हैं। आदिनाथ भगवान् शकर के अतिरिक्त इस भूमण्डल पर नाथ सम्प्रदाय के प्रथम आचार्य श्री मत्स्येन्द्रनाथ तथा दूसरे समर्थ आचार्य गुरु गोरखनाथ ही माने जाते हैं।

गुरु गोरखनाथजी के अवतार की कथा पुराणों[2] में भी अकित है। आप सस्कृत विद्या के प्रकाण्ड विद्वान् थे। अनेकों योगशास्त्र[3] आज भी आपकी गुणगरिमा गारहे हैं। गुरु गोरखनाथ का पवित्र नाम आज भी भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक वैसा ही प्रसिद्ध है, जैसा कि शताब्दियों

---

(१) आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, नाथ सम्प्रदाय, पृ० ९६। स्वर्गीय डा० पीताम्बरदत्त वडथ्वाल, गोरखवाणी, भूमिका, पृ० २०। इन विद्वानो ने अपनी विद्वतापूर्ण शोधो के परिणामस्वरूप इम आविर्भाव काल को निश्चित किया है।

आचाय रामचन्द्र शुक्ल ने श्री गारखनाथ का आविर्भाव काल पन्द्रहवी शताब्दी माना है। कहा तो यह भी जाता है कि कवीर के भी परवर्ती गुरु नानक के तथा सत्रहवी शताब्दी के जैन साधु वनारसीदास के साथ भी गुरु गोरखनाथ का वाद विवाद हुआ था।

राजस्थान के महापुरुष वीरवर पावूजी राठोड के भतीजे झरडोजी ने गुरु गोरखनाथजी के वरदान से ही आततायी खिची जिन्दराव को मार कर अपने चाचा पावूजी का वैर लिया था, वाद में झरडोजी ने गुरु गोरखनाथजी से योग दीक्षित हुए तथा रूपनाथ नाम से प्रसिद्धि पाई। यह वात वि० स० १३७३ के वाद की है।

(राव शिवनाथसिह, कूपावत राठोडो का इतिहास, पृ० १५९) पावूजी का जन्म वि० स० १३१३ तथा स्वर्गवास १३३७ में हुआ।

गोगाजी चौहान के गुरु भी गोरखनाथजी ही थे। वि० स० १३५३ में गोगोजी युद्ध क्षेत्र में लडते हुए वीर गति को प्राप्त हुए।

(डा० सहल, राजस्थान के सांस्कृतिक उपाख्यान, पृ० २)

(२) स्कन्द पुराण, भक्त विलास, अध्याय ५१–५२। ब्रह्माण्डपुराण, ललितोपाख्यान, उत्तर भाग, हयग्रीवागस्त्य सम्वाद, स्वणमयशाल वर्णन।

(३) सिद्ध सिद्धान्त पद्धति, विवेक मातण्ड, गोरक्षसहिता, दत्त गोरक्ष गोष्ठी और भी अनेकों सस्कृत के योग विषयक ग्रन्थ मिलते है। आपकी 'सवदियो' का प्रचार आसेतु–हिमाचल तक है। भारत की समस्त भाषाओ में न्यूनाधिक रूप से 'नाथ साहित्य' पाया जाता है।

पूर्व था। काबुल से कामरूप एवं काठमाण्डू (नेपाल) से सुदूर दक्षिण तक का कदाचित ही कोई प्रदेश, गुरु गोरख के प्रभाव से वंचित हो। महाराष्ट्र एवं राजस्थान में सर्व प्रथम 'नाथ सम्प्रदाय' का ही सर्वमान्य प्रभाव रहा है। श्री शंकराचार्य के अतिरिक्त इतना प्रभावशाली और महिमान्वित-महापुरुष भारतवर्ष में गुरु गोरखनाथ के सिवाय दूसरा नहीं हुआ। भक्ति आन्दोलन के पूर्व सब से शक्तिशाली धार्मिक आन्दोलन गुरु गोरखनाथ का योग-मार्ग ही था। भ्रमणशील यात्रियों को यदि कहीं लोट, कहीं टीले, कहीं मन्दिर व कहीं कहीं भिन्न भिन्न जातियों तथा संस्थाओं द्वारा इनका स्मरण हो जाता है, तो अध्ययनशील पाठकों के सामने[1] संस्कृत, बंगला, मराठी, पंजाबी, हिन्दी आदि भाषाओं की रचनाओं के अन्तर्गत इनकी यागापद्धति शरीर विज्ञान, कायाकल्प आत्मनिरीक्षण, शुद्धाचार एवं समाज-सुधार सम्बन्धी सिद्धान्तों के अनेक प्रभाव बराबर दृष्टि-गोचर होते रहते हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास में गुरु गोरखनाथ व उनके पंथ वालों की रचनाओं को एक विशेष महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

महाराष्ट्र के ज्ञान-सूर्य श्री निवृत्तिनाथ तथा ज्ञानेश्वर ने नाथपंथ से ही दीक्षा प्राप्त की थी। श्री ज्ञानेश्वर के प्रपितामह त्र्यम्बकपन्त को वि० सं० १२६४ में स्वयं श्री गोरखनाथ ने ही दीक्षा दी थी। अमरेन्द्र राज भर्तृहरि को इन्हीं श्री गुरु गोरखनाथ से योग दीक्षा मिली थी। शालिवाहन के पुत्र 'पूर्णभक्त' के गुरु भी श्री गुरु गोरखनाथजी ही थे।

जब महाराष्ट्र में चांगदेव अपने योगबल से १४०० वर्ष जीवित रहे तब गुरु गोरखनाथ जैसे महान् योगी कई शताब्दियों तक इस भूमण्डल में संचार करते रहे हों और आज भी यौगिक बल से विचरण करते हों तो योग की अद्भुत सामर्थ्यशक्ति और सन्तों की सिद्ध-स्थिति की दृष्टि से यह कोई असाधारण बात नहीं है।

---

(१) आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी 'नाथ सम्प्रदाय'।

(२) नेपाल की स्वर्णमुद्रा तथा रजत मुद्रा में आपका परम पावन नाम अंकित है।

ऋग्वेद में लिखा है—

इन्द्रोमायाभि पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरय शतादश अर्थात् इन्द्र, सच्चिदानन्द परमात्मा, अपनी योग माया शक्ति द्वारा अनेक प्रकार के अनेक शरीरों की रचना कर, अपने भक्तों के मनोरथों को पूर्ण करते हैं, इसी प्रकार अणिमाद्यैश्वर्य-सम्पन्न योगिराज अपने कायव्यूहकी रचना कर सकता है। महाभारत में स्पष्ट लिखा है—

आत्मनो वै शरीराणि वहूनि भरतर्पभ।
योगी कुर्याद् वल प्राप्य तैश्चसर्वैर्मही चरेत् ॥
प्राप्नुयाद् विपयान् कैश्चित् कैश्चि दुग्र तपश्चरेत्।
सङ्क्षिपेच्च पुनस्तानि सूर्यो रश्मि गणानिव ॥

अर्थात् हे भरतर्षभ ! युद्धिष्ठिर ! अणिमादि सिद्धि-सम्पन्न योगीश्वर (काय-निर्माण-योगकला द्वारा) अपने एक आत्मा से ही अनेक शरीरों की रचना कर लेता है। उन विभिन्न शरीरों मे से कोई तो राज्यादि विपयों में ही उलझ जाते हैं, और कोई तपादि साधनों में ही तत्पर हो जाते हैं। जब इस योगी के मन में कुछ तरग उठ खडी होती है तो जैसे सूर्य भगवान् अपनी रश्मियों को इकट्ठाकर अस्ताचल पहाड़ के उस पार छिप जाते हैं, वैसे ही योगी भी अनेक शरीरों से एक वनकर चुपके से किसी निर्जन कन्दरा की गुफा में निर्विकल्प समाधि स्थित हो जाता है। गुरु गोरखनाथ के सिद्धियोगके चमत्कारों की चर्चा भारतवर्ष में ही नहीं अपितु विश्व के अनेकों देशों में प्रचलित है। "नाथलीलामृत" के पाचवें अध्याय में लिखा है —

'उस काल में पाताल में जाकर योग-साधन करना श्री गोरखनाथ से ही वन पड़ा। वहाँ से वे भूमण्डल पर आये और चिरजीव स्थिति को प्राप्त हुए। उनकी पलकें नहीं गिरती थीं, श्वासकी गति नीचे की ओर नहीं होती थी। वह 'रहते थे पृथ्वी पर, पृथ्वी को स्पश किये विना, और उनकी छाया भी नहीं पडती थी'। इस प्रकार की अपार महिमा वाले गुरु गोरखनाथ को यह मानना कि अब वे इस पृथ्वी पर नहीं हैं, हृदय इस वात पर विश्वास नहीं करता, वुद्धि चाहे इतिहास के पृष्ठों पर कुछ भी सोचती रहे। सोलहवीं

शताब्दी और सत्रहवीं शताब्दी के राजस्थान के भी कई अपने ऐसे ही अनेकों उदाहरण हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि गुरु गोरखनाथ ने समय समय पर प्रकट हो अपने श्रद्धालु भक्तों को दर्शन देकर कृतार्थ किया है। वि० सं० १५४० में जाम्भोजी को और संवत् १७०० के प्रारम्भ में जसनाथ सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध सिद्ध रुस्तमजी को गुरु गोरखनाथ ने दर्शन देकर उन्हें सिद्धि-सम्पन्न बनाया था। भारत में घटित ऐसे सभी उदाहरणों को इकट्ठा किया जाय तो एक बहुत बड़ा ग्रन्थ तैयार हो सकता है। गोरखपन्थी लोग शिव गोरख (शिव गोरख) मन्त्र का जप करते रहते हैं भगवान शंकर का ही सौम्य रूप गुरु गोरखनाथ हैं। ज्ञानेश्वर चरित्र में गोरखनाथजी की उत्पत्ति इस प्रकार लिखी है—

"एक बार श्री मत्स्येन्द्रनाथजी घूमते घामते अयोध्या की ओर 'जयश्री' नाम के नगर में पहुँचे। उस समय वहाँ विजयध्वज राजा राज्य करता था। इस नगर में सद्बोध नामका एक पवित्र ब्राह्मण अपनी सद्वृत्ति नाम की स्त्री के साथ धर्माचार पूर्वक रहता था, इसके कोई सन्तान नहीं थी। इसके द्वार पर एक दिन भिक्षा-निमित्त श्री मत्स्येन्द्रनाथजी पहुँचे। ब्राह्मण-स्त्री ने इन्हें तेजस्वी जानकर बड़े आदर के साथ इनकी झोली में भिक्षा डाली।

श्री मत्स्येन्द्रनाथजी उस स्त्री के सतीत्व का तेज देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उसके कोई सन्तान न होने से उसके तेजस्वी मुख-मण्डल पर उदासी की एक रेखा खिची हुई दिखाई देती थी। मत्स्येन्द्रनाथ ने उदासी का कारण पूछा उसने निःसंकोच भाव से उत्तर दिया सन्तान न होने से संसार फीका जान पड़ता है'। मत्स्येन्द्रनाथ ने झोली से विभूति (भभूत) निकाली और अभिमन्त्रित कर उस सती को दी और कहा कि इसे खाओ। इससे तुम्हारे पुत्र होगा, यह कह कर मत्स्येन्द्रनाथ चले गये।

एक पड़ोसिन ने उस ब्राह्मणी से कहा कि 'न जाने कहाँ का जोगड़ा था। वेशों पर कभी विश्वास मत करना। ये कनफटे वैरागी हैं ऐसा मन्तर फूंक कर देते हैं कि कोई खावे तो उसकी सुध-बुध खो जाय और कुत्तिया बन कर उसके पीछे पीछे चले।

पड़ोसिन की यह बात सुनकर ब्राह्मण स्त्री की श्रद्धा विचलित हो गई और उसने वह भभूत गड्ढे में फैंक दी। इस घटना को हुए बारह वर्ष बीत गए। पुन बारह वर्ष पश्चात् श्री मत्स्येन्द्रनाथजी उस ब्राह्मण के घर आये और 'अलख' कहकर खडे होएग। उन्होंने उस स्त्री को बारह वर्ष पहले की बात याद दिलाई और कहा कि अब तो तेरा बेटा बारह वर्ष का होगया होगा। देखूँ तो वह कहा है? यह सुनते ही वह स्त्री घबरा गई और उसने सब हाल कह दिया। मत्स्येन्द्रनाथ उसे साथ ले उस गड्ढे के पास गए। 'अलख' कह कर उन्होंने आवाज दी जिसे सुनते ही 'आदेश' कह कर बारह वर्ष का एक तेजपुज बालक वहा से बाहर निकला और मत्स्येन्द्रनाथ के चरणों पर अपना मस्तक रखा। यह देख कर उस ब्राह्मण स्त्री को बडा पश्चात्ताप हुआ कि ऐसे सिद्ध पुरुष के प्रसाद की मैंने ऐसी अवमानना की। दैव ने दिया पर कर्म ने छीन लिया। पुत्र मिला पर मैंने खो दिया। यह सोचकर वह अत्यन्त दु खी हुई। मत्स्येन्द्रनाथ उस बालक को अपने साथ ले गए। यही बालक हमारे गोरखनाथ हैं। मत्स्येन्द्रनाथ ने अपनी सारी विद्या अपने इस श्रद्धालु और विरक्त शिष्य को देकर कृतार्थ किया। गोरखनाथ योग विद्या में पूर्ण हुए। स्वानुभव से उन्होंने योग-साधना का और भी उत्कर्ष किया। योग-साधना और वैराग्य में गोरखनाथ गुरु से भी बढकर हुए।

इन्हीं के कहने से मत्स्येन्द्रनाथ ने उस ब्राह्मण दम्पत्ति पर पुन दया की और उनके पुत्र हुआ जिसका नाम गोरखनाथ ने 'नाथ वरद' रखा"।

यही श्री गुरु गोरखनाथ वि० स० १५५१ आश्विन शुक्ला सप्तमी[1] को श्री जसनाथजी के परम गुरु हुए। सिद्धेश्वर श्री जसनाथजी ने अपनी रचनाओं में स्थान-स्थान पर गुरु गोरखनाथजी का महत्व प्रकट किया है। 'जलमभूलरों' के निर्माताओं की निम्न पक्तियों से स्पष्ट सिद्ध है कि श्री जसनाथजी के परम गुरु श्री गोरखनाथजी थे,

---

सम्वत् पनरै इकावनै, आसोजी सुद पाय।
वा दिन गोरखनाथ मू, जसवन्त जोग पठाय।

(यशोनाथ पुराण, पृ० ,३३)

वियोगी सोलंखा—'भागथळीगुरु गोरख मिळिया, जिण जोगी परमाया'।
लालनाथजी— 'गुरु चेला आमोप रचायो, दोनूं आया धर्म मंझार'।
चोलनाथजी— 'जूना जोगी परगट्या, भागथळी भोतार'।
सवाईदासजी— 'घाना कुकस गळ'ण कम्या, गोरख का मतथपै'।
लिख कर उपर्युक्त बात का समर्थन किया है।

सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी की आयु का आज ११ वर्ष १० महीना २१वां दिन पूरा हुआ था। उस दिन बालक जसवन्त ने कतरियासर से चार कोस उत्तरस्थ भागथळी नाम के जंगल में प्रवेश किया और यहीं योगाचार्य श्री गुरु गोरखनाथजी ने पधार कर बालक जसवन्त को योग दीक्षा दी। कथा इस प्रकार है—

महाभाग्यशाली हमीरजी का जीवन धन्य है कि जिनके घर में युक्तयोगी बालक जसवन्त ने विविध बाल क्रियाओं एवं बालजन्य आमोद-प्रमाद सहित ऊपर लिखे समय तक पुत्र-रूप में निवास किया, जैसा वियोगी सोलंखा ने लिखा है—

मा'ना सूं हर मोटा हुआ, बरस बा'रै बाम्यया।

यह पहले बताया जा चुका है कि हमीरजी का घर धनधान्य से परिपूर्ण था। उनके अनेकों टोळे (ऊँट ऊँटनियों के झुंड) तथा गायों के अनेकों वाग (गोधन) थे।

सुदूर जंगलों में हमीरजी के टोळे स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करते रहते थे। विधिवशात् हमीरजी का एक मुख्य टोळा विचरण करता हुआ जंगल में बहुत दूर निकल गया जो प्रयत्नशील राईकों (ऊँटों के चरवाहों) के भी जाग से खोजने पर भी नहीं मिला। अच्छी नस्ल के टोळे के रूप में अतुलित सम्पत्ति खो जाने से हमीरजी को दुःख क्षोभ होना स्वाभाविक ही था। आभा कुल पिता की मनोदशा देख कर बालक जसवन्त ने कहा— "पिताजी! आप इतने चिन्तित क्यों हैं? यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं टोळे को ढूंढने भागथळी की ओर जाऊँ।"

हमीरजी अपने प्राणप्रिय पुत्र जसवन्त को निर्जन अरण्य में जाने की

आज्ञा कैसे दे सकते थे। पर बालक जसवन्त ने आग्रहवश अपने पिता से टोळा खोजने को वन में जाने की आज्ञा प्राप्त करली। जियोजी साखला ने इस सम्बन्ध में ऐसा उल्लेख किया है—

'चूर चूरमों फडकै बान्ध्यो, हितकर माय जिमाया।
रिण विजण में हेड चरन्ती, सोधण नै मुकळाया'।

सवाईदासजी ने लिखा है— 'पाच सात दोवा दसा में साड्याँ सोधण जावै'। माता रूपादे ने कुमार जसवन्त को प्रेम से भोजन करवाया तथा रास्ते के लिए उनके पल्ले मिष्टान्न बान्ध दिया और सा'डों (ऊँटनियों) के समूह को ढूढने जगल में भेज दिया। बालक जब उत्तर दिशा की ओर टोळे को ढूंढता हुआ जगल में काफी दूर चला गया तब हमीरजी को अपना खोया हुआ टोळा दक्षिण की ओर से आता हुआ दिखाई दिया। सा डों का टोळा जब स्वत ही दक्षिण दिशा की ओर से घर आगया, तब हमीरजी ने बालक जसवन्त को वापिस बुलाने के लिए उनके पीछे आदमी भेजा, तब तक कुमार जसवन्त 'भागथळी' तक पहुँच चुके थे। कुमार जसवन्त के इस जागृत एव पुण्यभूमि में पदार्पण करते ही शिवावतार योगाचार्य श्री गुरु गोरखनाथ ने जसवन्त को सम्बोधित किया, जैसा सवाईदासजी ने लिखा है—

'काना कुण्डळ गळ'ज कन्था, गोरख आ वतळावै'

बाल स्वभाव से, अलौकिक दिव्य देह गुरु गोरखनाथ को देखकर जसवन्त कुछ सशकित हुए— 'स्वामी देख'र सको आण्यो, गुरु धीरज बन्धाया' अर्थात् शिष्टाचार से बालक जसवन्त ने लज्जित नेत्रों से गुरु के चरण कमलों की ओर ही देखा। गुरु गोरखनाथ ने बालक जसवन्त को धैर्य बन्धाते हुए उनके सिर पर वरदहस्त रख कर 'सत्य शब्द' का[1] उपदेश दिया, जैसा जियोजी

---

(१) होया दरसण अतर मिळिया, वचन सिघारा सार सुफळिया।
पडिया चरणो में चरणोदक लिया, गुरु भूजा तो सिर ऊपर दिया।
गोरखनाथजी गुरु मन भाया, किरपा गुरा री सबद सुणाया।
दीवि परकमा सीस निवाया, लीवि परसादी भोजन पाया।
दीवि आसीसाँ ज्ञान सुणाया, आप सत गुरुजी भला हि आया।
भगवें बाने रा दरसण पाया, सेली सीगी मुख नाद बजाया।

है— 'चमा फूँक सीस पर पंजो 'सत' रो 'सबद' सुणाया'। बालक जसवन्त ने गुरु चरणोदक लेकर बड़ा युक्त विनीत भाव से श्री गुरु गोरख-नाथजी को करबद्ध 'ॐ नमो आदेश' किया तथा विविध प्रकार से गुरु की मन-वचन से स्तुति की[1]।

जियोजी सांखला के 'जसमभूसण' में लिखा है—

> 'चेलै रै पहलै भोजन होवो, गुरु चेलै रस पाया।
> गुरु री झीणी पाखी होज्यो चेलो कर हर पाया'।

गुरु द्वारा उपदिष्ट जसवन्त ने जो उनके पल्ले भोजन बन्धा हुआ था वह

> बिना हुकम सो बचन पठाया जलनाथ ही मौन दिराया।
> भूरी जटा पर सिर पर बालों पधे खड़ाऊ चरणन मोर्गों।
> निरमळ ध्यान सो दियो छै कानों सबद सिद्धां रा सही कर मानों।
> गुरु चेलो मिल कठरिमाखर आया चौरै कठरिमाखर रै पाँव धराया।
> गुरु चेलैरै हरख सवाया परम सनातन गोरख फरमाया।
> भगवी टोपी ज काळो की माथा तठै गुरु वेस रै पावे की कालो।
> साधू संतां री बाहि सैनाणी आदि अनुपाव जोगी निरवाणी।
> सिव पारवती नभपत में ध्याया सुरनर देवता सुरनी सै आया।
>
> आदेस करै गुरुदेवहूं तीर्थ नित परनाम।
> सतगुरु के सरणापठे सदा परम निज धाम।
>
> गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वर।
> गुरुरेव परंब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।
> अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया।
> चक्षुरुन्मीलितंयेन तस्मै श्री गुरवे नमः।
> ध्यानमूलं गुरोर्मूर्ति पूजामूलं गुरो पद।
> मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरो कृपा।

(१) 'सबद का अभिप्राय वेद' से ही है तथापि वेदों का रहस्य जो शास्त्र पुराण और सन्त-वचन बतलाते हैं उनका भी समावेश इस 'सबद' में हो जाता है। अर्थात् 'सबद' से वेद शास्त्र पुराण सन्त-वचन सब अन्य मोक्षक सब साहित्य मात्र ग्रहण करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि सबद का आश्रय लिये बिना जीव को स्वहित का मार्ग मिलना दुर्घट है। इस पवित्र सबद साहित्य से जीव को प्रवृत्ति निवृत्ति विधि निषेध बन्ध मोक्ष का यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है और उसमें गुरु का पता लगता है।

गुरु-समर्पण कर दिया तत्पश्चात् प्रसाद-रूप से गुरु-शिष्य ने मिल कर भोजन किया। गुरु गोरखनाथजी के कमण्डलु में जो पानी था वह गुरु गोरखनाथ ने जसवन्त को शिष्य बनाकर पिलाया।

समस्त सामर्थ्य से युक्त गुरु गोरखनाथ ने बालक जसवन्त का योगपट (नाम) जसनाथ रखा। जैसा सवाईदासजी ने अपने 'जलमझूलरा' मे उल्लेख किया है—

'गिरै त्याग गिरवर नै चाल्या, जसवन्त 'नाथ' कहावै'।

किम्वदन्ति है कि गुरु गोरखनाथ ने जसवन्त के कानों पर करद (छुरी) भी चलाई थी, कहते हैं जसवन्त के कानों में रक्त न बहकर दूध की धारा निकली तथा जसवन्त के कानों पर छुरी का कोई असर नहीं हुआ। गुरु गोरखनाथ ने इस चमत्कृति को देख कर बालक जसवन्त को और भी अनेकानेक सिद्धि-युक्त होने का वरदान दिया।

गुरु गोरखनाथ तथा शिष्य जसनाथ ने भागथळी में बैठकर आध्यात्मिक एव धर्म के विषय में चर्चा की। जसनाथजी ने गुरु गोरखनाथजी से प्रार्थना की— 'महाराज! मरुस्थल भूमि को पवित्र करने के हित ही आपका शुभागमन हुआ है, अत कृपा कर कतरियासर पधारिये।' शिष्य की सादर विनय सुन कर गुरु गोरखनाथजी जसनाथजी के साथ कतरियासर ग्राम की ओर अग्रसर हुए तथा वर्त्तमान में जो श्री जसनाथजी की वाड़ी एव गोरखमाळिये का स्थान है, वहा तक आए। जैसा जियोजी सारवला ने कहा है—

'गुरु अर चेला रळमळ चाल्या, नगर नेड़ै रै आया'।

अर्थात् गुरु और शिष्य दोनों मिल कर साथ साथ कतरियासर के पास जो धोरा हैं, वहा तक आगे।

गोरखमाळिये की स्थापना—

श्री जसनाथजी ने पूज्यपाद गुरु गोरखनाथजी की आज्ञा एव आशीर्वाद पाकर, वहाँ अपना अडिग आसन जमा लिया। सिद्धेश्वर श्री जसनाथजी के हाथ में जो जाळ वृक्ष की टहनी (छड़ी) थी, उसको जमीन मे गाड़ कर पल्लवित की, जो आज लता वृक्ष की भाँति फैल कर वाड़ी के अनेकों

मयूरादि पक्षियों को अपने शीतल सुखद वक्षस्थल में स्थान दे रही है तथा बीते युग का पाँचसौ वर्ष पुराना इतिहास बता रही है। गया के 'बोधि वृक्ष' की भाँति कतरियासर के गोरखमाळिये की यह 'जाळ' (पीलू) समस्त जसनाथी समाज के लिए परम पवित्र दर्शनीय वृक्ष है।

गोरखमाळिया श्री गुरु गोरखनाथजी के चरण-चिह्नों का स्मृति-स्थान है। भागवती से गुरु गोरखनाथजी जसनाथजी के विशेषानुग्रह से यहाँ तक पधारने की कृपा की थी तथा जसनाथजी को अपने ब्रह्मप्राप्ति एवं तप साधना के लिए इस स्थान को उपयोगी बताया था। इसीलिए 'जसनाथी-साहित्य' में अनेकों जगह 'धरा-धाम' कहकर इसकी प्रशंसा की गई है—

"धिन बाड़ी धिन देवरा, धिन आसण धिन जाळ।
धिन'स धियाड़ो धरहरी बैठा जाँई किरतार।"

पुण्यभूमि गोरखमाळिये की महत्ता अनिवर्चनीय है। पाँचसौ वर्ष पश्चात् आज भी उस 'स्थान' के दर्शनार्थ वर्ष भर में तीन बार लाखों लोगों का आगमन प्रत्यागमन होता रहता है। कतरियासर कळकम्मो रम्यो'ज कवस्यो कान। आज बगीची देवरा, छेवर किया धाम'। अर्थात् कतरियासर में तो स्वयं श्रीकृष्ण निष्कलंक भगवान् जसनाथजी के रूप में लीला कर गए हैं, इसी के परिणामस्वरूप कहा है— 'गुरु दुवारो सेवैंतों आवै गंगा को न्हांण' फिर इस गुरु-द्वार से बढ़कर दूसरा पवित्र तीर्थ और कौन हो सकता है?

'मार पलाथी तपस्या बैठा सूरज सूँ लिव लाया' सियाजी के 'जलम झूलरा' की इस पंक्ति से भी यही आशय निकलता है तथा यही आशय लालनाथजी के 'जलमझूलरा' की इस पंक्ति से है—

'मार पलाथी तपस्या बैठा, जाप जप्यो ओंकार'।

श्री जसनाथजी ने इसी स्थान पर बैठ कर ॐ का अनादि जाप जपना प्रारंभ कर दिया।

सद्गुरु श्री गोरखनाथ ने श्री जसनाथजी को संसार हित के लिए अनेकों निर्देश दिये। यशोनाथ पुराण में लिखा है— कि गुरु गोरखनाथ ने

श्री जसनाथजी को भगवान् शकर की भक्ति[1] करने का विशेप रूप से आदेश दिया था। श्री जसनाथजी ने अपने गुरु की समस्त आज्ञाओं को शिरोधार्य किया एव उसी स्थान पर पद्मासन लगा कर बैठ गये।

हमीरजी ने जिन व्यक्तियों को श्री जसनाथजी को वापिस लौटाने के लिए भागथळी की ओर भेजा था, वापिस लौटते समय उन व्यक्तियों को श्री जसनाथजी इस टीवे पर बैठे हुए दिखाई दिये। उन्होंने देखा कि श्री जसनाथजी ध्यानावस्थित यौगिक निगूढ मुद्रा में बैठे हैं। उन्हें अपार आश्चर्य हुआ। उन्होंने गाँव में आकर हमीर जी को यह सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

लालनाथजी ने अपने "जलमभूलरा" में कहा है—

"मात पिता कळपै दु ख पावै, सोच करै सारो परिवार।
थे तो वाळक भोजन जीमो, लाडू, पेड़ा, खीर, खसार।"

यशोनाथ पुराण मे उल्लेख है—

"खवर परत हमीर सु आया, जसवन्त जोग की सविद पाया।
कौन योगी तुमको भरमाया, घर सब त्याग वनवास पठाया।
माखन जिमायो प्रेम सूँ, वाळपणै के माय।
अब वनवासी हो गये, माता पिता विसराय॥"

---

(१) शिव भक्ति विन कोय न तारे, व्रत तीरथ नर फिर फिर हारे।
जहँ तक शिवजी कृपा न कराई, तहँ तक नरक वास भुगताई॥
शिव कृपा अधम तिर जावें, शिव शिव करत परम पद पावे।
गर्भवास पुनि कोई न आवें, सायुज्य मोक्ष सोहि नर पावें॥
शकर पूजन राम कराई, थाप रामेश्वर सेतु वधाई।
रावण मार विभीपण थाई, शिव प्रताप सीता घर आई॥
शिव कल्याण रूप नित भाई, सरणागति सुख देत सहाई।
यति, सति, सिद्ध, साधक गाई, ताके चरण पूज शुभदाई॥
शिव मत भक्ति सु गोरख गावै, गुरु परताप परमपद पावै।
श्री गुरु गोरखनाथ सुणावें, श्री जसनाथ सदा गुण गावें॥
वाणी श्री गुरुनाथ की, मानलई जसनाथ।
श्री गुरु गोरखनाथजी, धरचा शीस पै हाथ॥
(यशोनाथपुराण, पृ० ३१)

हमीरजी के एकमात्र पुत्र के विरक्त हो जाने के कारण उनके हृदय पर बड़ा आघात हुआ। वे अधीर और व्याकुल मानस से जसनाथजी के पास आये तथा उनसे घर चलने का अनुरोध किया।

इस पर श्री जसनाथजी ने संसार की असारता को दर्शाते हुए कहा—

'मिल्या गुरु मम ज्ञान बतलाया, जगत तणा सुख दाय न आया।
भज सदासुख रूप सुहाया वे सत बायक नाथ सुनाया॥
जगत् विषय सुख भोगवै, खर, सूकर, अरु स्वान।
भगति करो भगवान की, वृथा जाय मति प्रान॥"

परन्तु मोह-ममत्व में लिप्त सांसारिक प्राणी पर, भक्ति-भाव से परिपूर्ण उक्त कथन का क्या प्रभाव पड़ सकता था?

"कहत हमीर बहुत दुःख दीना वृद्ध पिता सुत योग सु कीना।
सुत घर त्याग गया वन जोई, चूक रया भगति मम कोई॥"
कहत हमीर सुन लीजिये, वृद्ध पिता मत छोड़।
वचन पिता का मानिये सतगुरु को कर जोड़॥"

इसी प्रकार माता पिता तथा स्वजनों ने श्री जसनाथजी को अनेक प्रकार से घर चलने के लिए विनम्र विनय की पर उनको जिनके अंतस् में वैराग्य और भक्ति-भाव हिलोरें ले रहा था– यह गार्हस्थ्य-जीवन कब पसंद था? वे तो धरा के भार को हटाने के लिए ही इस नाशमान जगत में प्रादुर्भूत हुए थे। परम पिता परमात्मा ने उन्हें सांसारिकता के चंगुल में बद्ध प्राणियों की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करने के लिए ही भेजा था। फिर वे इस दुःख मूलक और क्षणिक भोग-सुख में अपने उच्च जीवन को कैसे भरमाते? उनकी दृष्टि अपने लक्ष्य पर टिकी थी। उस लक्ष्य तक कौनसी राह से पहुँच होगी? इसका उन्हें पूर्ण ज्ञान था। वे आगे बढ़े। सफलता उनके सम्मुख नत होकर आई।

श्री जसनाथजी ने पिता से कहा—

'मुरग लोक सुख मात दिखाई, गजदंत मुख में फेर न जाई।
दूध पलट दही होय जावै दही को दूध फेर नहीं पावै॥"

सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी की आध्यात्मिक शक्तियों के सामने हमीरजी की एक न चली।

लालनाथजी ने अपने "जलमझूलरा" में कहा है—

"लेय विसन्नर होमण बैठा, घिरत मगायो देव दुवार।
विरमा जाप जप्या जुग जूना, सुरग मडल में गई महकार।
सुर तेतीसू हुया सुवाया, सुरपत इन्दर मेघ मलार।
पाच'स पाण्डु दस दिगपाळा सिध चोरासी दस ओतार।
धरती धवळ शेस रिख वासक, साथ सती को अन्त न पार।
नव नाथाँ गुरु गोरख आया, नाद बजायो ओंकार॥"

श्री जसनाथजी ने गुरु-पद-चिह्नों पर सस्थापित गोरखमाळिये पर यज्ञ आरभ कर दिया। उस यज्ञ की मोहक सुरभि से, स्वर्गस्थ समस्त देवतागण सतुष्ठ हुए।

ग्रामाधिपति हमीरजी के अलौकिक शक्ति से युक्त पुत्र के वैराग्य धारण करने का समाचार मरुधर की चारों दिशाओं में फैल गया। अनेकानेक ज्ञान-पिपासु जन सिद्धाचार्य के दर्शनार्थ एव उनकी अमृतमयी वाणी का रसास्वादन करने के लिए गोरखमाळिये पर आने लगे।

चोखनाथजी ने अपने 'जलमझूलरा" में लिखा है—

"बैठा 'गोरखमाळियै' भळकन्ते दीदार,
तिलक चन्दरमा भळहळै शीस मुकट गगधार।
सदा हजूरी देवरी पाडु पोळ दुवार।"

सवाईदासजी ने लिखा है—

"सो जुग आवै, सीस निवावै, पूजा देव चढावै।"

हारोजी का आगमन—

जियोजी ने अपने "जलमझूलरा" में लिखा है—

"वमलू सू सिद्ध हरमल बुआ, सेव गुराँ री आया।
हरमल हर री सेवा कीनी, पार गुराँ रा पाया।"

चोखनाथजी ने ऐसा प्रकट किया है—

"हरमल कंठ मरेवँताँ, बीती पोहन्न च्यार।"

व्यथित हुए। पर उन्हें एकाएक अपने पुत्र की बातों पर विश्वास न हुआ। स्वयं ने गुप्त रूप से इस विषय में छानबीन की तो गवाहों की एकसी बात सत्य थी। अब उसके मन में विचार उठा— "हरमल को रेवड़ चराने के कार्य से हटा लेने में ही भला है। संभव है उसके भोले मन में हमीरजी के लड़के के संसर्ग से घर छोड़ने की धुन न समा जाये। क्योंकि हरमल बाल-बच्चेदार है।"

उदोजी ने यथाशीघ्र हारोजी को रेवड़ से हटा कर गृहकार्य में लगा दिया, तथा खुद उस पर कड़ी निगरानी रखने लगे। हारोजी को यह बंधन बड़ा अखरता था। पर करते भी क्या? उनकी बड़े भाइयों व पूजनीय पिता के सम्मुख एक भी न चलती थी। चूंकि उनके भाइयों व पिताजी को जैसा कि पहले भी वर्णन हो चुका है— जसनाथजी से तनिक भी संपर्क रखना खटकता था। विवश होकर हारोजी को अपने मन में भक्ति और वैराग्य की अनुरक्ति के उमड़ते भावों को अवरुद्ध करना पड़ा। संसार के विषानल बांधने वे तोड़ने को आकुल थे पर अज्ञात शक्ति ने कुछ समय के लिए यह कार्य रोक दिया। सिद्धाचार्य में हारोजी की श्रद्धा-भक्ति से परिचित अमरा ग्राम तो था ही कतरियासर के निवासी भी पूर्ण परिचित थे।

एक दिन हारोजी की बारी अपने ग्राम का कुआ जोतने की आई। रात भर कुआ जोत कर पानी निकालने में लगे थे। हारोजी कीली[१] निकालने का काम कर रहे थे।

हारोजी लाव" को जोत कर सारण में आ रहे थे। जब वे सारण के ठीक मध्य में पहुँचे उसी वक्त बैयार कतरियासर की ओर से आने वाले कतारियों ने ऊँची व्यंग्यात्मक आवाज में पुकार कर कहा— 'हरमल! तुम्हें नाथजी ने इसी समय कतरियासर के गोरखमालिये पर बुलाया है।"

कतारियों की इस व्यंग्यमय उक्ति के द्वारा अज्ञात शक्ति ने हारोजी की मनोकामना पूर्ण करने की ठानी। उन्होंने आव देखा न ताव, बीच में ही 'कीली' निकाल कर कतरियासर की ओर द्रुतगति से दौड़े। इधर बीच में

(१) लाव को बैलों के जुए से संबन्ध करने के लिए लकड़ी की चिकनी नोकदार कील।

ही जब हारोजी ने कीली निकाल दी, तो जल से भरा हुआ चडस कूए में जा गिरा। चडस के इस तरह कूए में अकस्मात् गिरते ही बहुत जोर से धमाके की ध्वनि हुई। जिसे सुन कर गाँव के तमाम लोग कूए पर एकत्रित हो गये।

जसनाथी सिद्धों में यही कथा निम्नाङ्कित रूप से भी प्रचलित है—"हारोजी श्री जसनाथजी के निर्देशानुसार एक दिन 'रेवड' के "कार" (सीमा-रेखा) लगाना भूल गये और आप सिद्धाचार्य के पास सत्सग-लाभ के लिए बैठे रहे। कुछ समय बाद जब उनको रेवड का स्मरण हुआ, 'कार' न लगाने की बात याद आई, तो वे सिद्धाचार्य के सत्सग से बीच ही में चिंतित मुद्रा से उठ कर रेवड की ओर चल पडे। रेवड उन्हें अपने स्थान पर न मिला। तब रेवड के पद-चिह्नों के आधार पर गाँव की ओर गया देख, वे भी उस ओर दौडे। किन्तु तब तक रेवड बमलू ग्राम के कूए पर पहुँच चुका था। हारोजी के पिता उदोजी को इस प्रकार रेवड को सूना देख कर बडा क्षोभ हुआ। कुछ देर बाद जब हारोजी वहाँ क्लान्त मन से दौडते हुए पहुँचे, तो उदोजी ने क्रोध से उनके सिर पर दो बोबे (अजलि) धूल डाली तथा 'लाव' के तने (पोछडी) से उनकी पीठ में भला-बुरा कहते हुए जोर से मारी। इस तरह हारोजी अपने पिता द्वारा तिरस्कृत व दण्डित होने पर बडे लज्जित हुए और बिना कुछ बोले वे कतरियासर की ओर भाग चले।"

हारोजी को कतरियासर की ओर इस प्रकार दौडते देख कर उदोजी को अपने पुत्र के प्रति श्री जसनाथजी की ओर खिंचाव की बातों पर विश्वास हो आया और वे एक साथ उन दोनो (हारोजी व श्री जसनाथजी) पर क्रुद्ध हुए और बोले—

"हरमल के परिवर्तन का मूलकारण वह कतरियासर के हमीरजी का बेटा है। जिसे हमीरजी ने बड़े लाड-चाव से पाला, पोपा, बडा किया था। वह अब अपने जादू के करिश्मों से सबको वश मे किये हुए है। बेचारे हमीरजी की सारी मधुर आशाओं पर पानी फेर रहा है और अब हरमल को भी अपने ही रग में रगकर मेरे घर को डुबाना चाहता है। किन्तु नहीं। मैं ऐसा नहीं होने दूगा मैं अभी इसी समय इसका उपाय करता हूँ।" इतना कह कर

"जसमसूनरों" तथा 'सबदों" (पदों) में हारोजी का नामोल्लेख अनेकों स्थलों में हुआ है। निश्चयात्मक रूप से यह तो नहीं कहा जा सकता कि सर्व प्रथम हारोजी ने ही सिद्धाचार्य की सेवामें उपस्थित होकर शिष्यत्व ग्रहण किया हो। किन्तु सिद्धाचार्य के अन्य शिष्यों का "सबदों, में नाम नहीं आता, अतः ऐसी मान्यता रखना उचित ही है कि हारोजी सिद्धाचार्य के प्रथम शिष्य थे।

हरमल कंठ सरेवैंतों, बीती पोह न च्यार, अर्थात् हारोजी को गले लगाने में चार पहर का समय भी न लगा। यदि इस पंक्ति का यही उचित आशय है तब तो हारोजी ही सिद्धाचार्य के प्रथम शिष्य सिद्ध होते हैं।

हारोजी का जन्म वि० स० १५२३ को बमलु ग्राम में बलोजी कूकणा (जाट) के घर हुआ था। हारोजी अपने भाइयों में सबसे छोटे थे। प्रकृति-स्वभाव से नितांत सरल होने के कारण घर वालों ने हारोजी को 'रेवड़' चराने का काम सौंपा। गाँवों में प्रायः देखा जाता है कि जो लड़का भोलापन लिए हुए होता है उसे अधिकतर पशु, ढोर या रेवड़ चराने का कार्य सौंपा जाता है।

सिद्धाचार्य की पुण्यभूमि कतरियासर से हारोजी की जन्म भूमि बमलु केवल चार कोस ही है। हारोजी प्रायः कतरियासर की तरफ ही अपने रेवड़ को चराने ले जाते थे। यदा कदा वे गोरखमालिये के समीप भी आ जाते तो श्री जसनाथजी के पुण्य-दर्शन कर लेते। तपस्या में लीन देख उन्हें विस्मय होता। उनके मन पर अजीब-सी हरकत होती। वे अपने रेवड़ चराने के विचार से दूर हो कर, सिद्धाचार्य के पास बैठ जाते। एक अपूर्व शान्ति और सुख की अनुभूति उन्हें होती। धीरे धीरे हारोजी का विस्मय तपस्वी श्री जसनाथजी के प्रभाव से श्रद्धा में परिणित हो गया। सिद्धाचार्य भी हारोजी को उपदेश का सुयोग्य अधिकारी जानकर, कल्याणप्राप्ति का उपदेश देने लगे। समय के आगे बढ़ने वाले हर कदम के साथ दोनों में गुरु-शिष्य पावन नाता सुदृढ़ होने लगा। शान्ति और सुख के इस वातावरण में फिर भी हारोजी के मुख पर चिंता की एक मलीन रेखा खिंची रहती थी। सिद्धाचार्य ने एक दिन हारोजी से इस अकुलाहट का कारण पूछ ही तो लिया।

हारोजी ने पूर्ण-भक्ति भाव से नम्र होकर कहा—"महाराज ! मैं आपके उपदेशामृत को सुनने के लिए बडा लालायित रहता हूँ। मैं आपसे भिन्न हो कर सुखी नहीं हो पाता। क्या करूं ! मुझे रेवड़ की चिन्ता हर वक्त डसे रहती है। बिना रखवाली के रेवड़ को हिंसक जानवरों के मार कर खा जाने का भय रहता है। रेवड भी चरता-चरता बड़ी दूर में फैल जाता है, जिससे बाद में मुझे उसे एकत्रित करने में काफी कठिनाई उठानी पड़ती है।"

हारोजी की परेशानी को सिद्धाचार्य भली भाँति समझ गए। उन्होंने हारोजी से कहा— "हरमल ! 'गुरु' का नाम लेकर, जितनी दूरी में चाहो रेवड के चारों ओर 'कार' लगा दिया करो। फिर रेवड़ उस परिधि को लाघकर कहीं भी न जा सकेगा, और न कोई हिंसक पशु ही उसमें प्रवेश कर रेवड़ की हानी कर पायेगा।"

महाराज की इस युक्ति ने हारोजी की बाछे खिलादी। अधे को क्या चाहिए ? दो आखें ! यह चिन्ता उनकी दिनचर्या की एक अग बन गई। वे 'कार' लगाकर रेवड को जंगल में सूना छोड देते, एवं स्वय सिद्धाचार्य के उपदेश-श्रवण के साथ ही उनकी सेवामें रत रहने लगे। उनका यह क्रम एक लम्बे अर्से तक चला। उनके पवित्र मानस-पटल पर वैराग्य और भक्ति-भाव की लकीरें उज्ज्वल होकर उभार पाने लगी।

प्रकृति की बनावट कुछ ऐसी है कि जब कोई पवित्र कार्य का समारभ होता है तो वह उसमें उसकी परीक्षार्थ बाधाए डालने का श्री गणेश करती है। अपनी चिर-परिचित यह आदत उस ने हारोजी के साथ भी बरती।

हारोजी के साथ कुछ अन्य गवाले भी रहते थे। उन्हें इस बात से बडा आश्चर्य हुआ कि हारोजी रोज रोज ही रेवड को जगल में सूना छोड़ किधर सरक जाता है ? यदि कभी रेवड को कोई जगली जानवर खा गया तो उदोजी का बडा नुकसान होगा ! इस में हारोजी का क्या विगड़ेगा ? वड़ा बुद्धु है। यह विचार कर सभी ने एक दिन चुपचाप वह कहा जाता ? क्या करता है ? सब जान लिया। ये सब समाचार उदोजी से जाकर कह सुनाए।

हारोजी के पिता उदोजी ने हरमल की सब गतिविधि जान कर बड़े

व्यथित हुए। पर उन्हें एकाएक अपने पुत्र की बातों पर विश्वास न हुआ। स्वयं ने गुप्त रूप से इस विषय में छानबीन की तो गवालों की एक-एक बात सत्य थी। अब उनके मन में विचार उठा— "हरमल को रेवड़ चराने के कार्य से हटा लेने में ही भला है। संभव है उसके भोले मन में हमीरजी के लड़के के संसर्ग से घर छोड़ने की धुन न समा जाये। क्योंकि हरमल बाल–बच्चेदार है।"

उदोजी ने यथाशीघ्र हारोजी को रेवड़ से हटा कर गृहकार्य में लगा दिया, तथा खुद उस पर कड़ी निगरानी रखने लगे। हारोजी को यह बंधन बड़ा अखरता था। पर करते भी क्या? उनकी बड़े भाइयों व पूजनीय पिता के सम्मुख एक भी न चलती थी। चूंकि उनके भाइयों व पिताजी को जैसा कि पहले भी वर्णन हो चुका है — जसनाथजी से अधिक भी संपर्क रखना खटकता था। विवश होकर हारोजी को अपने मन में भक्ति और वैराग्य की अनुरक्ति के उमड़ते भावों को अवरुद्ध करना पड़ा। संसार के विषाक्त बाधकों व छोड़ने को आकुल थे पर अज्ञात शक्ति ने कुछ समय के लिए यह कार्य रोक दिया। सिद्धाचार्य में हारोजी की श्रद्धा-भक्ति से परिचित समस्त ग्राम तो था ही कतरियासर के निवासी भी पूर्ण परिचित थे।

एक दिन हारोजी की बारी अपने ग्राम का कूआ जोतने की आई। रात भर कूआ जोत कर पानी निकालने में लगे थे। हारोजी कीली[1] निकालने का कार्य कर रहे थे।

हारोजी 'लाव' को जोत कर सारण में ला रहे थे। जब वे सारण के ठीक मध्य में पहुँचे उसी वक्त दैवात् कतरियासर की ओर से आने वाले कतारियों ने ऊँची व्यंगयात्मक आवाज में पुकार कर कहा— 'हरमल! तुम्हें नाथजी ने इसी समय कतरियासर के गोरखमाळिये पर बुलाया है।"

कतारियों की इस व्यंगमय उक्ति के द्वारा अज्ञात शक्ति ने हारोजी की मनोकामना पूर्ण करने की ठानी। उन्होंने आव देखा न ताव बीच में ही 'कीली' निकाल कर कतरियासर की ओर द्रुतगति से दौड़े। इधर बीच में

(१) लाव को बैलों के जुए से संबद्ध करने के लिए लकड़ी की बिल्ली नोकदार कील।

ही जब हारोजी ने कीली निकाल दी, तो जल से भरा हुआ चड़स कूए में जा गिरा। चडस के इस तरह कूए मे अकस्मात् गिरते ही वहुत जोर से धमाके की ध्वनि हुई। जिसे सुन कर गॉव के तमाम लोग कूए पर एकत्रित हो गये।

जसेनाथी सिद्धों में यही कथा निम्नाङ्कित रूप से भी प्रचलित है- "हारोजी श्री जसनाथजी के निर्देशानुसार एक दिन 'रेवड' के "कार" (सीमा-रेखा) लगाना भूल गये और आप सिद्धाचार्य के पास सत्सग-लाभ के लिए वैठे रहे। कुछ समय वाद जब उनको रेवड का स्मरण हुआ, 'कार' न लगाने की वात याद आई, तो वे सिद्धाचार्य के सत्सग से वाच ही मे चिंतित मुद्रा से उठ कर रेवड की ओर चल पडे। रेवड उन्हें अपने स्थान पर न मिला। तव रेवड के पद-चिह्नों के आधार पर गॉव की ओर गया देख, वे भी उस ओर दौडे। किन्तु तब तक रेवड वमलू ग्राम के कूए पर पहुँच चुका था। हारोजी के पिता उदोजी को इस प्रकार रेवड को सूना देख कर वडा क्षोभ हुआ। कुछ देर बाद जब हारोजी वहाँ क्लान्त मन स दौडते हुए पहुँचे, तो उदोजी ने क्रोध से उनके सिर पर दो धोवे (अजलि) धूल डाली तथा 'लाव' के तने (पोछडी) से उनकी पीठ में भला-बुरा कहते हुए जोर से मारी। इस तरह हारोजी अपने पिता द्वारा तिरस्कृत व दण्डित होने पर वडे लज्जित हुए और विना कुछ वोले वे कतरियासर की ओर भाग चले।"

हारोजी को कतरियासर की ओर इस प्रकार दौड़ते देख कर उदोजी को अपने पुत्र के प्रति श्री जसनाथजी की ओर खिंचाव की वातों पर विश्वास हो आया और वे एक साथ उन दोनों (हारोजी व श्री जसनाथजी) पर क्रुद्ध हुए और वोले—

"हरमल के परिवर्तन का मूलकारण वह कतरियासर के हमीरजी का वेटा है। जिसे हमीरजी ने वडे लाड-चाव से पाला, पोपा, वडा किया था। वह अव अपने जादू के करिश्मों से सवको वश में किये हुए है। वेचारे हमीरजी की सारी मधुर आशाओं पर पानी फेर रहा है और अव हरमल को भी अपने ही रग में रगकर मेरे घर को डुवाना चाहता है। किन्तु नहीं। मैं ऐसा नहीं होने दूगा मैं अभी इसी समय इसका उपाय करता हूँ।" इतना कह कर

हरोजी उसी समय आवेश में एक बड़ा सा लट्ठ लेकर अपने कुछ ग्राम वासियों के साथ कतरियासर की ओर रवाना हो गये। कतरियासर समस् से चार कोस की दूरी पर होने से उन्हें वहाँ पहुँचने में अधिक समय नहीं लगा होगा?

हारोजी ने गोरखमालिये पर पहुँचते ही महाराज को 'ओ३म् नमो आदेश' कह कर अभिवादन किया। सिद्धेश्वर ने हारोजी को निर्भयात्मक आशीर्वाद दिया।

हारोजी आज उल्लास के अथाह सागर में तैर रहे थे। उनकी मनोकामनायें पूर्णसिद्धि पाने को उतावली हो रही थीं। उनका जीवन सार्थकता की ओर क्रमशः अग्रसर होने लगा था। उनकी वृत्तियाँ संसार से उदास हो गईं। हारोजी स्वेच्छा से अनायास एक अज्ञात आकर्षण की तरह सिद्धेश्वर के चरणकमलों में आ गिरे। उनकी आँखों में कुछ था तो केवल श्री जसनाथजी की कमनीय मुस्कराती प्रतिमा! अनिष्ट को विस्मृति के गह्वरान्धकार में डाल कर वे इष्ट की पावन प्राप्ति चाहते थे।

हारोजी के वहाँ पहुँचने के कुछ ही समय बाद कोलाहल के साथ कुछ व्यक्ति गोरखमालिये की ओर आ रहे थे। वे 'हलाम्ब' (उवार) में होने के कारण स्पष्ट दृष्टिगोचर नहीं हो रहे थे। लोगों की गुनगुनाहट को सुन कर सिद्धाचार्य ने कहा— "कौन है?"

हरोजी ने कहा— "मैं हूँ हरा।"

सिद्धेश्वर ने कहा— "हरा! हो जा सीधा।"

ऐसा कहने के साथ ही हरोजी जो वृद्धावस्था के कारण कमर से झुक गये थे, सीधे हो गये। एवं हारोजी के ऊपर क्रोध आने के कारण उनके मन में जो क्रोधोन्माद व्याप्त हो रहा था वह सिद्धाचार्य के इस चमत्कार से बिल्कुल शान्त हो गया। अब वे तन मन दोनों से बिल्कुल सीधे हो गये। पूर्ण प्रभावित होकर वे अपने आप श्री जसनाथजी की ओर झुक गये और बोले—"महाराज! मैंने आपके प्रति दुर्भावना रखकर देर

उदोजी की ये बातें सुन कर सिद्धेश्वर बोले ' उदोजी, आपने जो कुछ किया, मैं उसको भुगत चुका हूँ।' ऐसो कहकर उन्होंने अपने सिर के केश दिखाये "जिनमें धूल पडी थी।" पीठ दिखाई ' जिसपर चोट के निशान थे।" देखकर उदोजी अचभित हुए और हारोजी तथा श्री जसनाथजी की एकात्मता पर उन्हें महान् आश्चर्य हुआ और उनके मन मे एक प्रकार की पीड़ा होने लगी। वे आँखों में आँसू भर कर बोले—

"मैं आज तक आपकी इस अतुलनीय सिद्धि और महिमा का आभास न पा सका था। अन्यथा मैं मेरे मन को दूपित न होने देता। यह पुत्र मैं अपनी ओर से भी आपकी सेवोमें समर्पण करता हूँ।"

सिद्धाचार्य ने कहा— "उदोजी ! आप व्यथित न हों। यह हरमल तो राम सेवक हनुमान की तरह सदैव मेरे साथ रहने वाला मेरा सेवक— शिष्य है। अच्छे पुण्य-प्रताप से इसने आपके घर में जन्म लिया है।"

उदोजी मन में अभिमान की कलङ्कित भावना लेकर कतरियासर गये थे। पुण्य–भूमि गोरख-माळिये के निकट पहुँचते पहुँचते उनके मन पर पावनता अङ्कित होने लगी। यह है एक विलक्षण योगी का प्रभाव ! पारस के स्पर्शमात्र से नगण्य धातु लोह अपने कुरूप को छोड कर बहुमूल्य स्वर्ण बन जाता है। उसी तरह सिद्ध-पुरुषों के प्रभाव मात्र मे ही कुटिल जीव सत्-प्राणी होकर अपने जीवन–लक्ष्य की प्राप्ति करले तो क्या आश्चर्य ?

सब दोषों को भूल कर उदोजी ने महाराज की शरण में अपने पुत्र को समर्पित कर, स्वय भी सदैव के लिए सिद्धेश्वर के सेवक बन गये।

हारोजी को सिद्धेश्वर ने नियमानुसार योग-दीक्षा दी। "सत्य शब्द" को सुनकर, अब हारोजी ' कीट" से "भ्रमर" बन गये। एक परिवार की परिधि में सीमित न रहकर सारे ससार के हो गये।

उदोजी की कमर का कुबडापन दूर हो गया, यह बमलू ग्राम के सभी व्यक्तियों ने देखा। वे बड़े प्रभावित हुए। बमलू ग्राम का सब परिवार एक ही दादा की सतान होने के कारण 'जसनाथी' बन गया।

जियोजी को तत्त्वज्ञान—

जियोजी ब्राह्मण की चर्चा 'जसनाथी-साहित्य-सबदों" (पद्यों) में कई बार आती है। इन सबदों के अध्ययन से विदित होता है कि स्वयं भी जसनाथजी ने इस विद्वान ब्राह्मण को सबदों द्वारा जगत् पिता परमेश्वर की प्राप्ति का आध्यात्मिक मार्ग बताया था।

जियोजी के विषय में सिद्धाचार्य के प्रथम-दर्शन की कथा 'जसनाथ-सम्प्रदाय" में इस प्रकार प्रचलित है—

'एक बार जियोजी अपने ग्राम लालमदेसर[1] से किसी वैवाहिक कार्य के लिये काम् ग्राम जा रहे थे। कतरियासर रास्ते में पड़ता था। चलते २ जब वे कतरियासर आये तो उन्हें प्यास लगी। उन्होंने पानी के लिए किसी से कहा— लोगों ने उन्हें ग्राम से उत्तर दिशा की ओर स्थित आसण (आश्रम) में जाने की सलाह दी और कहा— महाराज ! आपको वहीं उपादेय पवित्र जल मिल सकेगा।"

जियोजी उस 'आसण" की ओर चले। आसण परिधि में प्रवेश करते ही उनकी मानसिकवृत्तियों पर विस्मयकारी प्रभाव होने लगा। जिसे उन्होंने अपने जीवन में प्रथम बार अनुभव किया। लोक-जीवन में रमी हुई अभिलाषाओं के मध्य आध्यात्मिक भावनाओं का उदय होते देख उनका मायानिष्ठ विश्वास विचलित होने लगा। वे गोरखमालिये की ओर बढ़ ही रहे थे कि उनकी दृष्टि सहसा ऊपर उठी और उन्होंने ठीक सामने एक दिव्य आभा से परिपूर्ण मुख-मण्डल वाले ऋषिरूप बालक को पद्मासन से आसीन देखा।

विद्वान् जियोजी को यह निश्चय करते हुए अधिक समय न लगा कि यह दर्शनीय महान् विभूति अवश्य ही ईश्वर द्वारा लोक-कल्याणार्थ प्रेरित

---

(१) यह ग्राम बीकानेर से दक्षिण पश्चिम में है। इसको ममरेवाला लालमदेसर भी कहते हैं। इस ग्राम में जसनाथजी की बाड़ी भी है।

एव प्रेषित है। इनका किन शब्दों द्वारा अभिवादन करना चाहिए? इन्हीं विचारों में उलझे जियोजी श्री जसनाथजी के समीप पहुँच गये। स्वत ही जिग्रोजी के मुख से अभिवादनार्थ "आदेश" शब्द निकल पडा।

सिद्धाचार्य ने प्रत्युत्तर में कहा—"आदेश! आदेश!!"

जियोजी आनन्द विभोर मुद्रा में विनीत भाव से सिद्धेश्वर के निकट जाकर बैठ गये। वे मन ही मन कहने लगे—"मेरे मुख से तो स्वत ही स्वाभाविकरूप से "आदेश" शब्द निकल गया था, परन्तु सिद्धेश्वर ने "आदेश! आदेश!!" दो बार क्यों कहा? मैं तो गृहस्थी हूँ, मुझे प्रत्युत्तर में 'आदेश' कहने की आवश्यकता तो न थी।"

जियोजी की इस मौन शका को श्री जसनाथजी ने समझ लिया और कहा—

"हे जिया। आत्मदृष्टि से सभी ब्रह्म हैं। ब्रह्म-भाव से गुरु और शिष्य में कोई भेद नहीं। शिष्य ब्रह्म-रूप से ही गुरु को "आदेश" कह कर उसके ब्रह्मत्व को स्वीकार करता है, इसी प्रकार शिष्य भी ब्रह्म-स्वरूप है, तो फिर गुरु भी शिष्य को ब्रह्म मानने में क्यों हिचकिचाये? यही "आदेश"[1] का अर्थ है।"

---

(१) आत्मेति परमात्मोति जीवात्मेति विचारत—
त्रयाणामेक सभूति रादेश परिकीर्तित ॥
(सिद्ध-सिद्धान्त पद्धति)

जोगी हुवै सो जुग से न्यारा, पाँचू इन्द्री घट में मारा।
रूप रग विगसे नही जोगी, जिसका नाम कहिये जोगी ॥
ब्रह्म तत्व के रूप नही रेख, बोलण हारा आप अलेख।
आओ माता पारवती, आदेश, आदेश ॥

गोरख— स्वामी आदेस का कौन उपदेस, सुनि का कथ वास।
सवद का कौन गुरु, पूछत गोरखनाथ ॥

मच्छिन्द्र— अवधू आदेस का अनुपम उपदेस, सुनि का निरतर वास।
सवद का परचा गुरु, कथत मछिन्द्रनाथ ॥
(डा० पीताम्बरदत्त वडथ्वाल, गोरख वानी, पृ० १८७)

जियोजी गद्गद् होकर, मनही-मन सिद्धेश्वर का प्रशोगान करने लगे—

'मेरे मुँह से जो शब्द बिना विचारे स्वत ही अभिवादन स्वरूप निकला, तथा जिसका अर्थ समझने में शंका उठी। मेरे मन की शंका का आभास सिद्धेश्वर को स्वत ही होगया, एवं बिना पूछे ही मेरे नामसे संबोधन कर दिया। करते क्यों नहीं ? ये त्रिकालज्ञ महर्षि हैं। मेरे धन्य-भाग्य हैं। मैं इनके दर्शन पाकर कृतकृत्य होगया। बिना पूर्व जन्म के शुभ संस्कारों के अभाव ही ऐसे "युक्त-योगी" महात्मा के दर्शन दुर्लभ हैं।"

सच्ची आत्मानुभूति-पूरित ज्ञान-चर्चा से जियोजी का दैहिक तथा मानसिक सन्ताप तो शांत होगया। परंतु अभी आध्यात्मिक चाह की पूर्ति शेष थी।

सिद्धाचार्य ने जियोजी के साथ स्नेह-सिंचित वार्तालाप किया। प्रसंगवश जियोजी ने इधर आने एवं आबू ग्राम की यात्रा का कारण भी कह सुनाया।

सिद्धाचार्य ने कहा—"जियोजी ! आप जिसके विवाह का लग्न ले जारहे हैं वह लग्न अच्छी तरह से पढ़ादेख करके तो निकाला गया है न ? उसमें कोई दोष तो नहीं ?

जियोजी ने "मेरी दृष्टि में तो कोई दोष नहीं है" कहकर उत्तर दिया। तत्पश्चात् जियोजी महाराज से आज्ञा लेकर, आबू ग्राम के लिए चल पड़े। चलते समय जियोजी से श्री जसनाथजी ने कहा— 'इस लग्न में गड़बड़ है आबू से लौटते समय इधर होकर ही जाना ?

सिद्धेश्वर की चेतावनी से जियोजी का मन यद्यपि अज्ञात आशंका से काँप उठा, किंतु उन्हें उस लग्न में कोई भूल नहीं दीख रही थी। पूर्ण विश्वास

(१) लग्न के दस दोष- १ लात, २ पात ३- युति ४ वेध ५ यामित्र ६ बुद्धपंचक ७ एकार्गल ८ उपग्रह, ९ क्रान्ति-साम्य, १० दग्धा तिथि।

(२) संभव है इस लग्न में वेध दोष था।

के साथ उन्होंने सिद्धेश्वर की चेतावनी को अपने मन से निकालने की चेष्टा की, फिर भी उनके मन में असमंजसता ने घर कर लिया और वे उसी उधेड़बुन में काळू ग्राम की ओर चल दिये।

जियोजी जब कळू ग्राम से एक कोस इधर ही थे, तब उन्होंने गाँव के ग्वालों से गाँव का कुशल-मंगल पूछा। उत्तर में गाँव वालों ने कहा—

'महाराज! और तो सब कुशल-मंगल है, किन्तु रूपाराम चौधरी के लड़के का, जिसका विवाह होने वाला था, देहान्त होगया।"

यह सुनते ही जियोजी मानो आकाश से धरती पर आ गिरे। सिद्धाचार्य की चेतावनी उन्हें बारम्बार स्मरण होने लगी। यजमान-पुत्र की मृत्यु से उन्हें बड़ा शोक हुआ। शोक-सागर में डुबकियां लेते हुए जियोजी शाम तक गोरखमाळिये वापिस पहुँचे। वे कालूग्राम न जा सके।

शोक-संतप्त खिन्न-मना जियोजी को जब सिद्धाचार्य ने देखा तो कहा— "जियोजी! यह नाशमान जगत् अपने प्रारब्ध संस्कारों से बनता एवं बिगड़ता है। जरा इस बात को गहराई में जाकर सोचो, समझो।" लेकिन जियोजी के अन्त स्थल में यजमान-पुत्र की मृत्यु के कारण हुई आघात की पीड़ा मिट न सकी। उनकी हालत पूर्ववत ही रही।

श्री जसनाथजी ने जियाजी को इस गम्भीर हालत से उबारने के लिए "सबद[१]" में उपदेश दिया—

धरती इन्द सिरो जुड़ावो, नित लग नेह सनेहा।
अमी मंडळ में बाजा बाजैं बरस सवाया मेहा।
इन्दर बरसै धरती सौंसे, ऊँडा बेसै तेहा।
धरती माता सरब सन्तोखै, रूप छतीसों ऐहा।

सदैव स्नेह में रहने वाले धरती और इन्द्र का ही श्रेष्ठ जोड़ा है। (क्योंकि अन्य जोड़े तो खण्डित होते रहते हैं) इन्द्र के रूप में बादल गर्जना करते हैं, सबको सुख देनेवाली वर्षा करते हैं। इन्द्र बरसता है, धरती सोखती है। जल गहरी तह में बैठ जाता है (जिससे बड़ी वनस्पतियों को पोषण मिलता है।) माता पृथ्वी सबको संतुष्ट करके प्राकृतिक छत्तीसों रूपों को वरण करती है।"

(१) यह "सबद" श्री जसनाथजी द्वारा विरचित "सबद-साहित्य" में प्रथम रचना मानी जाती है।

कांई रे पिराणी, खोज नै खोजै, खाख हुवै सुख खेहा।
काची काया गळ-गळ जासी, फूँ फूँ करणी देहा।
हाडाँ ऊपर पून झुळैली, घण हर बरसै मेहा।
माटी में माटी मिल जासी, भसम उड़ै हुय खेहा।
हुय भूतळा खाख उड़ावै, करणी रा फळ ऐहा।
घड़ी घड़ी घड़ियाळा बाजै, रह्या न रहसी छेहा।
गावाँ गादर सै'राँ सुअर, खाड खिमै हुय सेहा।
किये फिरत नै जोय पिराणी, दोस न दीज्यो देवा।

जिनकों ही की खोजी हुई खाक को (जिसका कि वे कुछ भी पता न लगा सके) हे प्राणी! तू उसी खाक को क्या खोज रहा है? तेरा क्षय होगा तू जलेगा और जलकर राख हो जायेगा इसमें किंचित भी संदेह नहीं। तेरी कांच के समान सुन्दर काया जो कि कच्ची है जिसका कुकुम बना है। वह कराल-काल की आग में तपने पर जल जायेगी और गल जायगी। तेरी चिता के जल जाने पर अग्नि के द्वारा जो धुआँ निकलेगा, वह पवन के द्वारा कहीं से भी पानी का सोत कर तेरे हाडों के ऊपर मेह बरसाने का कारण बन जायेगा। मिट्टी में मिट्टी तो मिल ही जायगी। इसमें तो कुछ भी संदेह नहीं है, क्योंकि यह मिट्टी है। रही भस्मी की बात, वह हवा में मंडराती फिरेगी।

तुझे निश्चित ही करणी का फल भोगना पड़ेगा। तेरे किये हुए पाप कर्म भंगुले का रूप धारण कर लेंगे और तेरी धूल को न जाने कहाँ से उठाकर कहाँ फेंक देंगे। तू फिर भी भूला हुआ है। देख! घड़ी, घड़ी पर जीवन की झंझावात तुझे सचेत कर रही है। तेरा यह घर (शरीर) जिसको तू अपना समझ रहा है नाशवान् है। नहीं रहेगा! नहीं रहेगा!! नहीं रहेगा!!!

एक बात याद रख! तू भूल कर भी उस परम-पिता परमात्मा को दोष मत देना। क्योंकि तेरे किये हुए कर्म ही तो तेरे आगे आयेंगे, जिनके द्वारा तू कभी गाँव में भेड़ बनेगा शहर में शूकर बनेगा और कभी सेह (एक जानवर विशेष) बनकर गड्ढे खोदेगा।

करणी हीणा नित पिछतावैं, लाधै न गुरु रा भेवा।
जुगाँ छतीसाँ निरँजण बैठा, जिण गुरु री कीज्यो सेवा।
पूरै गुरु नै जोय पिराणी, आवैं पापाँ रा छेहा।
गुरु परसादे गोरख वचने, (श्रीदेव) जसनाथ (जी)।
दीन्हा ज्ञान धरम रा भेवा।

जो कर्म करने से हीन हैं अर्थात् जिन्होंने हीन कर्म ही किये हैं। शुभ कर्म कभी नहीं किये, वे पश्चात्ताप करते हैं और उनको कभी भी अपने सद्-गुरू के द्वारा बतलाए हुए तत्त्व-ज्ञान का भेद नहीं मिल सकता। निराकार निरजन महाप्रभु गुरुदेव की सेवा में अपना मन लगा, युगों युगों से वह तेरी सब बातों को देख रहा है। तू जग से छत्तीस के अक की तरह विमुख हो जा। ऐसे ज्ञान से परिपूर्ण गुरुदेव की वाणी का मनन कर, जिससे तुम्हारे पापों का अन्त हो जाय।

श्री जसनाथजी ने गुरु गोरखनाथजी की कृपा से ज्ञान तथा धर्म के भेद का उपदेश दिया।

सिद्धाचार्य के उक्त वचनामृत से जियोजी का मायिक मोहावरण दूर हो गया। बाद में जियोजी ने सदैव के लिए अपना जीवन धर्माचरण करते हुए तपस्या में लीन रहकर व्यतीत किया।

बकर कसाई को अहिंसा का उपदेश—

श्री जसनाथजी की करामात ने शाह देहली पर इस कदर असर किया कि उनको कुछ जमीन मालासर के पास बख्शी गई¹।"

उक्त कथन में जो "श्री जसनाथजी की करामात" वाक्यांश है, इसका सम्बन्ध निम्नलिखित कथा से है जो कि श्री जसनाथी सिद्धों में प्रचलित है—

उस समय सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी की पुण्य-भूमि कतरियासर के समीपवर्ती गाँवों से सामूहिक रूप से अनेक मुस्लिम व्यापारियों ने हाँसी, हिसार की वध-शालाओं के लिए बड़ी संख्या में बकरे मींढे (भेड़) आदि पशुओं को खरीदा। व्यापारियों ने रेवड़ को इकट्ठा कर प्रथम विश्राम कतरियासर में "गोरखमालिये" के निकट ही किया।

एक रात भर विश्राम करने के उपरांत जब वे चलने को उद्यत हुए, तब सिद्धाचार्य ने उनसे प्रश्न किया—

क्यों भाई ये एक मात्र नर-पशु हो इतनी बड़ी संख्या में किस अभिप्राय से लेजा रहे हो?'

हिंसा-पूरित व्यापारियों ने व्यंग्यात्मक स्वर में कहा—

महाराज! आप आश्चर्य क्यों करते हैं। इन सबको बहिश्त में भेजा जायगा।"

श्री जसनाथजी ने गम्भीरता से कहा 'इन जीवों को बहिश्त में भेजना तुम जैसों के हाथ की बात नहीं। खुदावन्द की इच्छा से ही यह सारा संसार गतिमान है। बिना उसकी इच्छा के एक तिनका भी नहीं हिल सकता। उसकी इच्छा मात्र से पत्थर का तैरना भी असंभव नहीं। अतः मुझे स्पष्ट दीखता है कि इन जीवों की अवधि अभी बहिश्त या जहन्नुम में

(१) मुन्शी सोहनलाल साहिब तवारीख राज श्री बीकानेर पृ० ४९।
कतरियासर आदि ग्रामों की भूमि तब से अब तक सिद्धों के अधिकार में है। सिद्धों में ऐसा कोई विवरण नहीं मिलता कि स्वयं श्री जसनाथजी ने भूमि ग्रहण की हो।

जाने की नहीं आई है और न अब यह बात तुम्हारे अधिकार में ही रही कि तुम इनको यहाँ से ले जा सको।"

निरतर इस क्षेत्र में घूमते रहने के कारण इन मुस्लिम व्यापारियों से यह बात छिपी नहीं थी कि सिद्धाचार्य में क्या सामर्थ्य है। अत. अधिक वाद्-विवाद में लाभ न देखकर उन्होंने अपने रेवड़ को टोर (हाक) कर चलने की शीघ्रता की।

श्री जसनाथजी ने जब उनके चलने की तत्परता देखी तो अविलम्ब यह कहा—"यदि ये जीव वास्तव में तुम्हारे ही हैं तो इन्हें टोर कर तुम ले जाओ, अन्यथा ये सब बिना किसी सकेत के मेरे पीछे चलेंगे।"

मुस्लिम व्यापारियों ने बडी सावधानी से रेवड को हाँका, ललकारा, पुचकारा तथा पानी पीने के सकेतों का भी बड़े आकर्षक ढग से प्रयोग किया, पर सब निष्फल। एक भी पशु अपनी जगह से नहीं हिला।

सिद्धाचार्य ने पुन व्यापारियों से कहा—"तुम्हें और प्रयत्न करना हो तो करलो। कोई उपाय बाकी न छोड़ना। यह निश्चित है कि ये सब पशु बिना किसी प्रयत्न के मेरा अनुसरण करेंगे।"

व्यापारियों ने भरपूर कोशिश की कि रेवड को लेकर वे अपने गन्तव्य-स्थल की ओर प्रस्थान करें। पर अन्त तक वे विफल ही रहे। आखिर में सभी ने मिलकर कुढते हुए मन से सिद्धाचार्य से कहा— "देखें, आप कैसे इन पशुओं को अपने पीछे चलायेंगे?"

जब सिद्धाचार्य ने अपने श्रीचरण-कमल 'गोरख माल्यिे" की ओर बढाये, सारा रेवड़ उनके पीछे चल पड़ा।

श्री-जसनाथजी के इस महान चमत्कार का प्रत्यक्ष-में अनुभव कर सभी व्यापारी व साथ के अन्य काजी, मुल्ला दग रह गये।

विधर्मियों ने इस अभूतपूर्व शक्ति का अनुभव पाकर भी कुछ शिक्षा ग्रहण न की। उन्होंने रेवड को ले जाने की हठधर्मी दिखाई, पर सफलीभूत न हो सके। अपने धर्म और हजरत मुहम्मद की दुहाई देते हुए

उन सभी ने कहा –

"महाराज! कुरान एवं हजरत मुहम्मद की आज्ञा के अनुसार इन पशुओं को हलाल करने में कोई पाप नहीं। यदि पाप है तो व्यर्थ हत्या करने में।"

श्री जसनाथजी ने कुबुद्धि-युक्त उन व्यापारियों को निम्नलिखित 'सबद" से उपदेशामृत पिलाकर समझाया

कोटक घना सरबै ऊजड़, देस कुबुद्धि राई।
गाँव रो ठाकर सरबै ऊजड़, लोभ पड़यो लुटाई।
घर रो मांझी सरबै ऊजड़, पूत कुलछनी माई।
धन्दाँ हाळी सरबै ऊजड़, ढुमगर खड़ियो ताई।
पुरख'र करळो सरबै ऊजड़, तीखी धार'र धाई।
खेतां राठी सरबै ऊजड़, पर चीनो हरियाई।
गाय न गोखी खीसो सुमर, न चीनो हरियाई।
वै बिगुणा बिमुख हांडै, कण बिन कूगस गा'ई।

उस देश के सभी दुर्ग उजड़े हुए हैं जिस देश का शासक कुबुद्धि हो और उस ग्राम के ठाकुर को भी सब प्रकार से उजड़ा हुआ ही समझो यदि वह लोभ के वशीभूत होकर प्रजा को लूटता हो।

वह गृह-संचालक भी सब प्रकार से उजड़ा हुआ है यदि उसकी माँ कुलक्षणों में में प्रवृत्त हो और बैलों को जोतने वाले उस किसान को भी सब प्रकार से उजड़ा हुआ ही समझो यदि वह लोभ के वशीभूत होकर बैलों से अधिक परिश्रम लेता हो।

वह पुरुष भी उजड़ा हुआ ही है यदि अपने ऊँट को बहुत तेज चलाता है, और उस खेत के मालिक को भी उजड़ा हुआ ही समझो यदि वह दूसरों के खेतों की हरियाली को देखकर जलता हो।

जिसने हरि को नहीं पहचाना वह गाय गोहरा खरगोश व शूकर की तरह पशु ही है। वे संज्ञाहीन पुरुष—जो विपरीत मार्ग पर भटकते हैं बिना अन्न के फूफस की तरह निःसत्व व थोथे हैं।

रण में पंछी तिस्यो मरियो, ओसर चूको डाई।
साँभळ मुल्ला, साँभळ काजी, साँभळ बकर कसाई।
किण फरमाई बकरी बिरदो, किण फरमाई गाई।
गाय गोरख नैं इसी पियारी, पूत पियारो माई।
फिर चरि आवै, सांझ दुहावै, राख लेवै सरणाई।
थे मत जाणो रुळी फिरै है, चान्दो सूरज गिवाळी।
दस दरवाजा लोह जड़िया, ऊपर ताक जड़ाई।
गुरु परसादे गोरख वचने, (श्रीदेव) जसनाथ (जी) सुणाई।

जो समय पर अवसर चूक जाता है, वह जगल के उस पत्ती की तरह है जो विना जल के ही अपने प्राणों को दे देता है। इसलिये हे मुल्ला, हे काजी और हे वकर कसाई। तुम सॅभलो।

तुम किसकी आज्ञा से बकरी और गाय का वध करने की ओर प्रवृत्त हुए हो। गाय तो गोरखनाथ को ऐसी प्यारी है, जैसे माता को अपना पुत्र प्यारा होता है।

गाय घूम-फिरकर-चरकर शाम को घर आती है और दूध देकर हम सब का पालन करती है। अपनी शरण में रखती है। तुम यह मत समझो कि इन गायों का कोई रक्षक नहीं है। चन्द्रमा और सूरज इनके रखवाले हैं।

ऐसा पाप-कर्म करने वालों को लोहे के फाटकों से युक्त दस द्वारों के भीतर वन्द कर दिया जायगा तथा ऊपर से भी कोई ऐसा मार्ग नहीं होगा जहाँ से वे निकलने की चेष्टा कर सकें। गुरु श्रीगोरखनाथजी के प्रसाद से श्री देव जसनाथजी ने यह उपदेश दिया।

इसके पश्चात् भी जब उन व्यापारियों द्वारा वारम्बार हजरत मुहम्मद का नाम लिया गया, तब सिद्धाचार्य ने पुन दूसरे "सवद" द्वारा कटु सत्य का प्रवचन किया —

मैंमद, मैंमद, मतकर काजी, मैंमद विखम विचारी ।[1]
मैंमद पीर हलाली होता, तुम काजी मुरदारी ।
मैंमद हाथ करोती होती, लोह घड़ी ना सारी ।
(मैंमद पीर किम्या करे खाई, कर सरजीत बहुळे घराई ।)
मैंमद पीर निवाज गुदारी, अलख तणी दरबारी ।
मैंमद पीर पैगम्बर सीधा, इक लख अस्सी हजारी ।[2]

हे काजी ! तुम मुहम्मद मुहम्मद मत करो मुहम्मद के विचार बड़े गहरे थे। उनको तुम नहीं समझ सकते। पैगम्बर मुहम्मद तो दूसरे के बुरे विचारों को मार कर हलाली बने किन्तु तुम तो—काजी मुर्दा हो।

मुहम्मद के हाथ में जो करोत थी वह लोहे की नहीं थी न ही धारदार थी। मुहम्मद ने यदि कभी कोई भक्षण भी किया तो उसने पुन उस प्राणी को जीवित कर दिया। वह सामर्थ्य तुम में कहां ?

उसने अलख के दरबार से अपनी आराधना का सम्बन्ध जोड़ा। उसी आराध्य के सामर्थ्य के बल पर एक लाख अस्सी हजार जीवों का उद्धार किया।

---

(1) यही पाठ रूपान्तर मत से गोरखबाणी में इस प्रकार अंकित है—

'महंमद महंमद न करि काजी, महंमद का विषम विचारं।
महंमद हाथि करद जे होती लोहै घड़ी न सारं ॥

हे काजी ! "मुहम्मद मुहम्मद" न करो। (क्योंकि तुम मुहम्मद को जानते नहीं हो। तुम समझते हो कि जीव हत्या करते हुए हमें मुहम्मद के मार्ग का अनुसरण कर रहे है) परन्तु मुहम्मद का विचार बहुत गम्भीर और कठिन है। मुहम्मद के हाथ में जो छुरी थी वह न लोहे की गढ़ी हुई थी न इस्पात की, जिससे जीव हत्या होती है।

पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल गोरखबाणी पृ ४

(२) महंमद महंमद न करि काजी महंमद का बोहोत विचार।
महंमद साथी पैगम्बर सीधा ये लष असी हजारं ॥

वेळू भींत पौन का थम्भा, नीर भरयो जळ झारी ।
पारी फूटी नीर अळूटै, ओ धन खाम खमारी ।
नव दाणू आगै निरदळिया, अब काळंग री वारी ।
काळंग मारा कुळ वरतावाँ, निकळंग नांव नेजारी ।
गुरु परसादे गोरख वचने, (श्रीदेव) जसनाथ (जी) विचारी ।

यह जो शरीर है, एक प्रकार से वालू की दीवाल है, जो पवन रूपी स्तम्भ के आधार पर टिकी हुई है। जैसे झारी में जल भरा रहता है। हाण्डी फूटने पर जैसे उसका पानी बिखर जाता है, उसी प्रकार तुम्हारे उस धन की गति होगी । पूर्वकाल में होने वाले अवतारों ने जैसे नौ आततायी राक्षसों का नाश किया था, उसी प्रकार भविष्य में होने वाले "काळंग" राक्षसों का नाश होगा ।

"काळग" राक्षस को मार कर कलियुग को समाप्त करने से ही हमारा निष्कलक नाम सार्थक होगा । गुरु गोरखनाथजी के प्रसाद से श्री देव जसनाथजी ने यह उपदेश दिया ।

सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के मुख से इन उपदेशों को सुनकर उन व्यापारियों को कुछ बोध हुआ । "मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना" के अनुसार उनमें से एक ने कहा—

"महाराज ! जब आप दातुन तोड कर करते हैं तो क्या आपको ईश्वर के आगे हिसाब नहीं देना पड़ेगा ?"

प्रत्युत्तर में सिद्धेश्वर ने कहा—

"दांतुण को साई लेखो मॉगै, गळ काट्याँ किम छाडेगी ?"

सीधा = साधना के लिए यत्न किये, पच मरे । हजारों लाखो अथवा एक लाख अस्सी हजार । निरजन पुराण में भी एक लाख अस्सी हजार पीर पैगम्बरो का उल्लेख हुआ है ।

पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, गोरखवाणी, पृ० ७२

सभव है ये पद्य इस प्रसग से सबधित होने के कारण ही इसे 'जसनाथ-सम्प्रदाय' के अनुयायियो ने ग्रहण किया हो ।

अब आगे प्रतिवाद करने का साहस किसी में नहीं हुआ। सभी उस शक्तिशाली महात्मा में व्याप्त सत्ता के समक्ष नतमस्तक थे। सबने श्रद्धा के साथ विदा मांगी।

सिद्धेश्वर ने मुस्कराती मुद्रा में आशीष देते हुए कहा—

'बक्कर कसाई काजी मुल्ला सभी का मंगल हो।"

सिद्धाचार्य के द्वारा हिंसक से अहिंसक बनाये गये मुस्लिम व्यापारियों के इस काफिले ने शाह दिल्ली[1] को भी इस महान् आत्मा की महिमा दिल्ली पहुँचने पर आ सुनाई। सुनाने का क्या प्रभाव हुआ? इसका उल्लेख इस प्रकरण के आरंभ में ही किया जा चुका है।

(१) उस समय दिल्ली के सिंहासन पर 'लोदी वंश' का अधिकार था देखिये— अध्याय ३

लोहापांगळ का मानमर्दन—

राजस्थान में लोहापागळ नाम का एक पाखण्डी, तान्त्रिक और वाम-मार्गी साधु होगया है। वह अपने १२० शिष्यों के साथ रहता था। इन्द्रियोंको वश में रखने के अभिप्राय से वह एक ताला वन्द लोहे का लंगोट लगाये रहता था। इसलिये उसका नाम लोहापागळ पडा। तत्कालीन किसी- राजा से उसने 'परवाना' प्राप्त कर लिया था कि वह जिस गॉव में भी जाय, उस गॉव के निवासी उसे भौमिया भैरव की भेट के लिये वकरा मेढा आदि दे।

लोहापागल घूमते-घूमते एक वार सिद्धेश्वर श्री जसनाथजी की पुण्य-भूमि कतरियासर में आ पहुँचा और उसने वहाँ अपनी मण्डली सहित तम्बू तान दिये[1]। प्रत्येक साधु अपने कमण्डलु सहित धूनी लगाकर वैठ गया।

कतरियासर वाले श्री जसनाथजी के उपदेशानुसार, वध करने के लिये वकरा मेढा देने को सहमत नहीं हुए। फल-स्वरूप विरोध खडा होगया।

इतनी वडी जमात की वात एक छोटे से गॉव के साधारण लोग निर्भयता के साथ अस्वीकार कर दें ? यह लोहापागळ के लिये सह्य नहीं था। क्योंकि उनके जमात के आगमन की वात सुनते ही गॉव का अधिपति चौधरियों (ग्राम के मुखिया) सहित स्वागत-समारोह मे जुटकर उसकी सेवा करने में अपना अहो-भाग्य समझता था। अन्यथा उस गॉव के मालिक की खाल नोचली जाती। उसका घर वार तान्त्रिक-विद्या के वल पर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया जाता। नागा-जमात की अवहेलना करना उस समय साक्षात् काल को निमत्रण देने के वरावर था[2]।

---

(१) कतरियासर में जिस स्थान पर लोहापांगळ ने तम्बू ताने थे, उसके पास वाली जाळ को अव तक 'भूतिया जाळ' कहते हैं।

(२) प्राचीन समय में ऐसी अनेकों जमातें घूमती थी और उनका आतक उस समय के जन-मानस पर भयकर रूप से अकित था। इस वात की पुष्टि लोक गीतों से भी होती है—

"सात वीराँ री सोनळवाई जोगीडा भरमाई रै।
जोगिड़ा भरमाई ॥

सात भाइयो की सोन जैसी वहिन को साधुओं ने भरमा लिया है।

लोहापांगल कतरियासर वालों के इस व्यवहार पर बड़ा क्षुब्ध हुआ और अपने शिष्यों से बोला –

'मुझे देखना है कि इस गाँव के लोग मेरी शरण आने में कितना विलम्ब करते हैं ? एक साधारण 'नव दीक्षित' छोटे से बालक के उपदेश से गाँव के लोग इतने इतरा गये। हाँ ! कैसा है यह सिद्ध ? जिसने हमारी भिक्षा-प्राप्ति में बाधा उपस्थित की है।

गांव वालों को लोहापांगल के क्रोध का ज्ञान हुआ वे भय से व्याकुल होकर संगठित रूपसे बाल-योगी सिद्धाचार्य के सम्मुख नम्र-निवेदन करने गये और बोले-

"प्रभो ! गाँव के टाडे (कूए के पास का मैदान) में जमाती लोहा-पांगल ने तम्बू तानकर हमारे लिए संकट उपस्थित कर दिया है। यह हमें हिंसा के भागी बना, धर्मच्युत करने पर उतारू है।"

श्री जसनाथजी यह सुन केवल मुस्करा कर रह गये। दूसरे दिन वे लोग पुनः सिद्धाचार्य की सेवामें उपस्थित हुए और कहा—

'प्रभो ! ग्राम की "थाट" (पशुशाला) में से आज प्रातःकाल जमातियों ने दो बकरों की गर्दन तोड़दी और कहा है कि यदि तुम्हारे गुरु में कोई सिद्धि है तो इन्हें जीवित करले जायें। इस प्रकार प्रतिदिन बकरों की गर्दन तोड़ तोड़ कर तो ये जमाती खा जायेंगे।"

परमदयालु सिद्धेश्वर ने अपने शिष्य हारोजी को जाकर बकरों को संजीवित करने की आज्ञा दी। आज्ञानुसार हारोजी ने थाट के बकरों को गुरु कृपा से जीवित कर दिया एवं पुनः थाट के ग्वालों के सुपुर्द कर दिया। परन्तु गाँव वालों को शान्ति कहाँ ? वे फिर विनीत भाव से निवेदन करने लगे –

'सिद्धेश्वर ! यह जब तक योग-बल-सिद्धि से चमत्कृत न होगा, तब तक अपनी हठ धर्मी से बाज नहीं आयगा। कुछ भाल भाइ समझ रौद्र नेत्रों में अपने को समाप्त हुआ समझ रहे हैं। हे देव ! गाँव का जन-जीवन आपसे त्राण की कामना करता है।"

गॉव वालों के निवेदन पर श्री जसनाथजी ने हारोजी को जमातियों के पास भेजा। हारोजी वहाँ गये और उन्होंने मास-मदिरा में मस्त लोहा-पागल को देखा। श्री हारोजी ने जाकर "आदेश"[1] कहा जिस पर कोई कुछ नहीं बोला, क्योंकि लोहापागळ 'आदेश' का उत्तर न देने के लिए अपने शिष्य-मण्डल को सूचित कर चुका था। हारोजी जमातियों का निष्ठुर व्यवहार देखकर लौट आये तथा श्रीदेव के सामने सारी स्थिति का स्पष्टीकरण कर दिया। सिद्धाचार्य ने कहा—

"हरसल। (हारोजी) एक बार पुन जाकर जमातियों को आदेश करो, यदि इस पर भी कोई कुछ न बोले तो धूणा-पानी को आदेश देना, तुम्हारे स्वागत के लिए सब धूनी व कमण्डलुओं में से आदेश की ध्वनि निकलेगी।"

गुरु-आज्ञानुसार हारोजी ने जाकर जमातियों को पुन आदेश दिया पर वे क्यों बोलने लगे। उन्होंने तो समझ रखा था कि बस दो बकरों को जीवित करने तक ही इनकी सिद्धि सीमित है।

इस पर श्री हारोजी ने धूनी-पानी को आदेश दिया। कहते हैं कि सिद्धाचार्य की महिमा के कारण धूनी एव कमण्डलुओं में से आश्चर्यकारी ध्वनि उठी "सिद्धाचार्य को आदेश" "आपको आदेश" विलक्षण आवाज सुन कर लोहापागळ घबराया और उठकर चलने की तैयारी करने लगा। किन्तु 'गोरखमाळिये' पर स्थित सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी अपनी अन्तर्दृष्टि से देख रहे थे कि, लोहापागळ घबरा गया है और अब उठ कर जाने की सोच रहा है। तब उन्होंने वहीं से एक मन्त्र पढकर कहा—'अपने किये का प्रसाद तो लेता जा' और अभिमन्त्रित भभूति (विभूति) उठाकर लोहापागळ के लगोट को लक्ष्य करके फैंकी, जिससे लोहापागळ का लोहे का लगोट तपने लगा। प्रखर ताप से सन्तप्त होकर लोहापागळ लगोट के ताले को खोलने का उपक्रम करने लगा, परन्तु वह उसमें भी सफल न हो सका और चाबी पिघल गई।

---

(१) गोरखपंथी (नाथ-सम्प्रदाय) के साधु जब मिलते हैं तो 'आदेश' कहकर परस्पर अभिवादन करते है।

यह सब चमत्कार हारोजी खड़े खड़े देख रहे थे। संतप्त होकर लोहापांगल हारोजी के पैरों में आ गिरा। किन्तु हारोजी के पास इसका क्या उपाय था? अन्त में लोहापांगल को गोरखमालिये पर आकर प्रार्थना करनी पड़ी। उस समय श्री जसनाथजी ने मन्त्र-सम्पुटों से युक्त १०० कड़ियाँ (छंद) कहीं[1]। जिससे लंगोट का पानी होकर पीठ की ओर से सिर के ऊपर से नीचे आकर गिरने लगा। इस चमत्कारिक क्रिया से लोहापांगल की आत्म शुद्धि होती गई और साथ साथ उपदेश भी मिलता रहा।

सिद्धाचार्य के प्रत्यक्ष चमत्कारों को देख कर यद्यपि लोहापांगल अत्यधिक प्रभावित हुआ, पर सहज ही अंतःकरण की पवित्रता प्राप्त करना सरल नहीं था। श्रवण मनन और निदिध्यासन की दृढ़निष्ठा से ही हृदय के मल, विक्षेप तथा आवरण की निवृत्ति होती है[2]। हृदय शुद्ध एवं सरल होने में भले ही समय लग जाय किन्तु सरल हृदय में दैवी-सम्पदा के गुणों का प्रवेश अविलम्ब होता है।

लोहापांगल के अहङ्कारी मस्तिष्क में यह सोचने को कहाँ स्थान व समय था कि यह दम्भ उलटा मेरे ही गले में आ पड़ेगा। वह तो अपने स्वयं के चमत्कारों से सिद्धाचार्य को प्रभावित कर अपनी मण्डली में शिष्य रूप में सम्मिलित करने की भावना रखता था परन्तु हुआ इसके विपरीत।

---

(१) पूर्व अनुमान से इन 'कड़ियों' की उपलब्धि में सन्देह था किन्तु अब यह निश्चय हो चुका है कि "पांचला सिद्धों का" गांव (मारवाड़) के आसन (श्री जसनाथजी का मंदिर) में ये मिल सकेंगी। कामदारी आंखों (अक्षरों) में तो कतरियासर के ठाकर मंदिर के पुजारी श्री रामचंद्रजी शायमा के पास इस लेखक ने अपनी आंखों से देखी हैं किन्तु समयाभाव के कारण वह उन्हें नहीं लिख सका। इन 'कड़ियों' को अब भी चोट आदि रोगों पर मंत्रोपचार के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

(२) काल पुर्व अर्थ् सुरत पई। अर्थात सुमर्न ही वे सूक्ष्म सुरति—स्मृति होती है तभी तो वेद को स्मृति कहा है। सुरत भरत पद भी अन्य वाणी में अनेकों जगह आते हैं।

यह श्री जसनाथजी के उपदेशों व चमत्कारों से प्रभावित होकर पश्चा-त्ताप के स्वर में कहने लगा—

"प्रभो ! मुझे अभयदान दीजिये। मैंने आपको सामान्य व्यक्ति समझ कर आपका अपमान करने की कुचेष्टा की, जिस का दुष्परिणाम भोग चुका हूँ। श्री नाथजी महाराज ! आप तो सिद्धेश्वर, पूर्ण महात्मा हैं। मैं आपके चरणों की शरण में पडा अतुलनीय कृपा की भिक्षा माँगता हूँ।

यह सुनकर श्री जसनाथजी ने कहा— "हे लोहापागळ ! यह तेरी मूर्खता है, जो एक लिङ्गेन्द्रिय को तो लोहे का ताला लगा कर बन्द कर रखा है और अन्त करणादि तेरह इन्द्रिया विषयों में लिप्त हो रही हैं[1]। मूढमति ! पाखण्डा-चारी !! तू व्यर्थ ही योगी का मिथ्या वेश बनाकर पृथ्वी पर भार-स्वरूप बना घूमता है। वेद विरुद्ध विद्याविहीन छद्मी ! तुम यहाँ कैसे, क्यों और कहाँ से आये हो ? तुम हो कौन ?"

लोहापागळ ने उत्तर में कहा— "महाराज ! मैं पूर्व दिशा से आया हूँ, और गोरखपंथी योगी हूँ।"

सिद्धाचार्य को लोहापागळ का गोरखपंथी योगी बनना बहुत अखरा। उन्होंने ऐसे आकारधारी दम्भी योगियों की भर्त्सना करते हुए सच्चे योगियों के लक्षणों का इस 'सबद' से प्रतिपादन किया—

जत सत रै'णा कूड़ न कै'णा, जोग तणी सहनाणी।
मनकर लेखण तनकर पोथी, हर गुण लिखो पिराणी।
अमी चवै मुख इमरत बोलो, हालो गुरु फरमाणी।

सत्य और सयम से रहना तथा मिथ्या भाषण नहीं करना ही योग का लक्षण है। हे प्राणी ! मन रूपी लेखनी से शरीर रुपी पुस्तक पर भगवान् के गुण लिखो। मुख से ऐसे मधुर शब्द बोलो, मानो अमृत चू रहा है और गुरु के आदेशानुसार चलो।

---

(१) कर्मेन्द्रियाणि सयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचार स उच्यते ॥

गाय'र गाडर भैंस'र छाळी, दुध दुध पिवो पिराणी ।
सिरज्या देव अमीरा कूंपा, गळवी काट न खाणी ।
जे गळ काट्याँ होत भलेरो, अपरो काट पिराणी ।
कांटो भागाँ थरहर काँपे, पर जिवको यूं आणी ।
कुंडा धोवे करद पलारे, रगत करे महमाणी ।
से नर जाणे सुरगे जास्याँ, कोरा रह्या अयाणी ।
झूठाँ ने जमदूत पर्येला, भाद घवे ज्यूं धाणी ।
मळ बाकळ भैरू री पूजा, गोरख मना न माणी ।
साचा ने इन्द लोके बासो, देव तणी देवाणी ।
साधु हिंयर हिंडोळै हींडा, पुंछा सुरग विवाणी ।
भूखाँ ने गुरु भोजन मळै, तिसियाँ पावे पाणी ।
लोहापांगळ भरमे भूल्यो, जोग-जुगत ना जाणी ।
गुरुपरसादे गोरख वचने (श्रीदेव) जसनाथ (जी)
असली ज्ञान बखाणी ।

हे प्राणी! गाय, भैंस और बकरी का तो दूध ही पीना चाहिए। परमात्मा ने इन पशुओं को अमृत का भण्डार बनाया है। इन्हें गला काटकर नहीं खाना चाहिए। हे प्राणी! यदि गला काटना अच्छा है तो अपना ही गला क्यों नहीं काटते? अपने पैरों में जरा-सा काँटा चुभते ही तुम थर थर काँपने लगते हो। पर पीड़ा को भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

तुम कुण्डा धोते हो छुरी को धार देते हो और रक्त की महिमा बखानते हो। ऐसा कर्म करने वाले भी यदि यह सोचें कि हम स्वर्ग जायेंगे तो वे निरे अज्ञानी ही रहे। मिथ्याचारियों को यमदूत इस प्रकार सतायेंगे जिस प्रकार भाड़ धान को भूनता है। मांस-मदिरा से भैरव की पूजा करना भी गोरखनाथ को अच्छा नहीं लगता था।

सच्चे साधुओं को इन्द्र लोक में निवास तथा देवताओं का संसर्ग मिलेगा। साधु लोग हाथी घोड़ों के हिंडोलों पर झूलेंगे और विमान में बैठकर स्वर्ग पहुँचेंगे। भूखों को गुरु भोजन भेजता है और प्यासों को पानी पिलाता है। हे लोहापांगळ! तुम भ्रम में भूलते हो योग की युक्ति नहीं जानते। गुरु की कृपा से गोरखनाथजी के उपदेशानुसार श्री जसनाथजी ने यह कहा।

सार रूप से जैसे साधुओं को अपना जीवन यापन करना चाहिये, सिद्धाचार्य ने बता दिया और लोहापागळ भी यह भली भाँति समझ गया कि इस अक्षय भण्डार में किसी भी वस्तु की कमी नहीं है।

मधुर वाणी में प्रदत्त यह हृदय-स्पर्शी सदुपदेश लोहपागळ के लिए आदर्श एव भव-बधन-मोचन के लिए सबल अवलम्बन था।

फिर भी, धर्म की अनभिज्ञता के कारण सिद्धेश्वर से लोहापागळ ने पूछा —

'महाराज। आप कौन हैं, और क्या विचार रखते हैं। मेरा गोरख पथी होना आपको बुरा क्यों लग रहा है?'

सिद्धाचार्य ने अब पुन दूसरे 'सबद' से योगी और योग के आदर्श उसको समझाये।

हम दरवेश निरंजन जोगी, जुग जुग रा अगवाणी।
जाँ सूँ जैसा ताँ सूँ तैसा, और न बोला वाणी।
फिर फिर भाव दुनी रो देखाँ, कुण बोलै के वाणी।
सरवा सरवी यूँ रळ चालाँ, ज्यूँ रळ चालै पाणी।
बिरमा बिस्न महेसर जोगी, जोगी पोन'र पाणी।

हम तो दरवेश हैं। निरञ्जन योगी (सात्विक एव सत्त्वमय) हैं। प्रत्येक युग के आध्यात्मिक क्षेत्र में नेतृत्त्व कर, समय समय पर उपस्थित समस्याओं का समाधान अगुआ होकर किया है। जिन प्राणियों की जैसी जैसी प्रकृति होती है, तत् तत् प्रकृति के अनुसार हम उन्हें अपनाकर वाणी द्वारा सदुपदेश देकर सन्मार्ग का पथिक बनाते हैं, उस वाणी में असत्य व आडम्बर का लेशमात्र भी स्थान नहीं रहता।

दृष्टि विस्तार से ससार के भाव को देखते हैं कि कौन कैसी वाणी में बोलता है। सीधे सादे ढग से सब के साथ मिलकर चलते हैं, जैसे पानी सबके साथ मिलकर चलता है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर योगी हैं, और पवन तथा जल भी योगी हैं।

आयनाथ गुरु गोरख जोगी, आप हुया पैलाणी।
भूखा मरदा कान फड़ावैं, सेवैं मड़ा मसाणी।
कांधे पाछैं मेखळ घालैं, फोरा रह्या, अयाणी।
हिवड़े भूल्या घर घर हांडै, घोले अट पट वाणी।
देवळ सूना मठ पिण सूना, सूनी बुध'र वाणी।
पाँच पियाले गोपियाले, दूसवैं पीड़ां घाणी।

आदि गुरु श्री गोरखनाथजी योगी हैं। वे सबसे पहले योगी हुए हैं। (योग का प्रतिपादन प्रचार व प्रसरण श्री गोरखनाथजी द्वारा ही हुआ है) अकर्मण्य होकर भिक्षावृत्ति से ही सुखमय जीवन यापन करने के लिए ही तुमने कर्ण-छेदन किया है अर्थात् मुद्रा पहन लिए हैं। मुर्दे व श्मशान का सेवन करते हो, फिर कंधे में मेखला डाल लिया। योगी का वेश करने पर भी निरे अज्ञानी ही रहे।

हृदय से भूले हुए (आत्म ज्ञान से हीन) ऊट-पटांग (ऊल जुलूल) वाणी बोलते हुए कामना रत होकर घर घर घूमते हो। तुम्हारी मूर्ति भी जड़ है, तुम्हारा मठ भी जड़ है तुम्हारी बुद्धि भी जड़ है और तुम्हारी वाणी भी जड़ है[1]। अर्थात तुम भावना, ज्ञान विवेक और विचार से हीन हो।

पांच पियाले मारग मझे मझ माणी। शब्द स्पर्श रूप रस और गंध इन पंच तत्त्वरूपी विषयों को पीकर सन्तोषी बनो। काम क्रोध लोभ मोह तथा मद इन सब इन्द्रियों को वश में करो नहीं तो इन दसों के वशीभूत हुआ प्राणी कोल्हू में तिलों की तरह पिस जायगा। अर्थात् बारबार काल चक्र पर चढ़ता ही रहेगा।

---

(१) देवल जात्रा धुनि जात्रा तीरथ जात्रा पाणी,
अतीत जात्रा सुफल जात्रा जासे अमृत वाणी।

देवालय की यात्रा धूम है उससे कोई फल नहीं मिलता। तीर्थ की यात्रा (निस्सार यात्रा) तो पानी मात्र की यात्रा है। अतीत की यात्रा सुफल है साधु सन्तों के दर्शन के लिये की जानेवाली यात्रा अमृत के समान है क्योंकि उनके सत्संग और उपदेश-श्रवण से जो लाभ होता है वह किसी दूसरी प्रकार की यात्रा से सम्भव नहीं।

पाँच मळ मळ पनरा पूरा, कँवर गोरख रा जाणी ।
आधै आधै आखर राखां, माण मळ मळ माणी ।
अपणै घट री निरत न जाणै, क्यूँ चढसी निरवाणी ।
पै'लैं आसण दिढक रहैला, से पूरा परवाणी ।
थळ वाकळ भैरूँ री पूजा, गोरख मना न भाणी ।
या करणी सूँ नरकाँ जास्यो, हुवो प्रेत पिराणी ।
काळँग माराँ कुळ पळटावाँ, जद पूजै सहनाणी ।
गुरु परसादे गोरख वचने, (श्रीदेव) जसनाथ (जी) वखाणी ।

जो पाँचों विषयों का मर्दन करेगा वही पूर्ण है । उसी को गोरख-पुत्र समझना चाहिये । अभिमानी का मान मर्दन होने में विलम्ब नहीं होता, अत. अभिमान करना अच्छा नहीं ।

जो अपने घर के नृत्य (गतिविधि) को नहीं समझ सकता वह निर्वाण पद को कैसे प्राप्त करेगा । पूरा प्रमाणित तो वह है जो पहले अपने आसन पर दृढ रहेगा ।[1] मास-मदिरा से भैरव की पूजा करना श्री गोरखनाथ को अच्छा नहीं लगता था । हे प्राणी ! ऐसा करने से नर्क में जावोगे और प्रेत बनोगे ।

राक्षसों को मार कर कलियुग समाप्त करें, तब सहनाणी मिलेगी[2] । गुरु के प्रसाद से श्री गोरखनाथजी के उपदेशानुसार श्री सिद्ध जसनाथजी ने यह कहा ।

---

(१) आहार दृढ निद्रा दृढ, आसन दृढ होय ।
नाथ कहे रे वालका, मरै न बूढा होय ।

अष्टांग योग मे भी आसन को तीसरा साधन माना है ।

आसन प्रत्याहार, प्राणायाम यम नियम हि ।
ध्यान धारणा धार, अष्टम योग समाधि यह ।

(२) जब हम कलियुग के (हिंसा, असत्य, छल, छिद्रादि) भाव को मारेंगे, तथा अपने परम्परागत नियमो (परोपकार, अहिंसा, सदाचारादि) का पूर्ण-रूपेण पालन करने से ही हमारा वास्तविक परिचय जन-जन के अन्तस्तल पर अंकित होजायगा ।

सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के ओजपूर्ण सत्य ज्ञानोपदेश से लोहा पांगळ के कर्मों की सिकुड़ियाँ खुल गई। लोहापांगळ के हृदय में कुछ सरलता को अङ्कुरित देख कर कटु किन्तु सामयिक उपदेश सिद्धाचार्य ने और दिया—

हे लोहापांगळ! तुम तो साधु (योगी) का वेश बनाये हुए हो। तुम्हें तो मानवता के धर्म को अपना कर आध्यात्मिक बनना चाहिये था। पर तुम तो अभागे भौतिक वादी ही रहे। साधु को तो आध्यात्मिक शक्ति की महान् विभूति बनना चाहिए पवित्रता की महान् आत्मा बनना चाहिए (तुम तो योग धारण कर लेने पर भी इन्द्रिय-सुख की परछांई के पीछे दौड़ते हो। यह तुम्हारे लिये उचित नहीं। यह मेदिनी तुम्हारे प्रत्येक दुर्वचन और कुविचार से उद्विग्न हो उठी है। मानसिक क्रियाकलापम और चारित्रिक विकृति से सुयोगी जन तुम्हारी ओर थूकते भी नहीं। तुम किस सामर्थ्य के बल पर इस पृथ्वी पर कदाचार का प्रसार कर रहे हो। जिस चीज को तुम सत्य मानकर चल रहे हो वह तुम्हें विनाश के गर्त में धकेल रही है। जीवन का उद्देश्य मरण न होकर कुछ उत्तर लक्ष्य है। जीवन का अन्त मृत्यु न होकर सत् और महान् की प्राप्ति है। तुम्हें तो जीवन में विनाश के कार्यों को रोकने का उपाय जान उस पर चलना चाहिए। मन की शान्ति और वास्तविक सुख पाने का भी साधन जानना आवश्यक है।

मन को पवित्र करने के अनेक साधनों को तुम्हें अपनाना पड़ेगा। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर प्रचुर शक्ति और ओज है उसका उपयोग जानना तुम्हारे लिए नितान्त आवश्यक है।

हे लोहापांगळ! मदिरा और मांस-भक्षण में कोई काम नहीं है। ये तो तुम्हारे विनाश के निमित्त कारण हैं। साधु को तो मादक द्रव्य से

(१) जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन।
जैसा पीवे पानी वैसी बोले वाणी। (लोकोक्ति)
युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नाव बोधस्य योगो भवति दुःखहा। गीता अ. ६ श्लोक १७

रहित सात्विक आहार करना ही श्रेष्ठ है । तभी वह बलवान एव शक्तिशाली बन सकता है।

हे लोहापांगळ ! साधारण परन्तु सर्व प्रथम इन्हीं बातों पर अधिक ध्यान देने से तुम्हारा मन शान्त होगा और तुम्हें आनन्द की प्राप्ति होगी। मन में कुपथ पर जाने की स्वय कुटेव होती है। अभ्यास और वैराग्य-साधन से तुम मन पर नियन्त्रण पा सकोगे। मुँह से हरिनाम स्मरण कर हृदय से प्रभु-परायण हो जाओ।

हे लोहापागळ ! तुमने क्यों इन नये नये योगियों को पकड़ कर जमात बना रखी है । क्या ज्ञान हीन आत्म-शून्य होकर भी तुमने इनके कल्याण का ठेका ले रक्खा है ? गीता उपनिषद् आदि धार्मिक ग्रन्थों में स्पष्ट उल्लिखित उपदेशों के अनुसार चलकर अपने जीवन-स्तर को ऊँचा उठाओ। 'इन्हीं उपायों से तुम्हारा मन ऊर्ध्वोन्मुख होगा। तब मन में कोई विक्षोभ नहीं उठेगा। मन शान्त होने पर तुम्हें सब प्रतीति होने लगेगी।

सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी ने लोहापागळ के प्रति सुधार-साधन के अनेक उपदेश दिये। जिनके सुनने से लोहापागळ के लोहे की लगोट की कडियाँ जो कमर में ही रह गई थीं, झडने लगीं। लोहा पागळ भी सिद्धा-चार्य से विनम्र होकर बार बार प्रार्थना करने लगा—

"सिद्धराज ! भविष्य में मैं कोई पाप कर्म नहीं करू गा। आप मेरे गुरु व मैं आपका दास हूँ, सेवक हूँ। प्रभु ! मेरा पाप निवारण कीजिये।"

तब श्री सिद्धाचार्य ने स्नेहपूर्ण वाणी में कहा— "हे लोहापागळ ! इन पापकीटों को समूल नष्ट करने के लिए सत्सग की बड़ी आवश्यकता है। अत बार बार सत्सग करने से तेरे सब पाप झड़ जायेंगे। देख ! तेरे इस शरीर पर ये जितनी लोहे की कड़ियाँ हैं, इनमें से प्रतिदिन एक कडी झड जाया करेगी और इसी प्रकार प्रतिदिन सत्संग करने से तेरा समस्त पाप झड़ (नष्ट) हो जायेंगे। यहाँ दक्षिण में एक 'समरास्थल' नाम का धोरा (टीबा, रेत का टीला) है। वहाँ हमारे गुरु-भाई 'जाम्भोजी' महात्मा

रहते हैं। तुम वहाँ चले जाओ। सरल चित्त से उनके सान्निध्य में रहकर तुम सब कुछ प्राप्त कर सकोगे।

लोहापाँगळ श्री जसनाथजी को 'आदेश' अभिवादन कर एवं आज्ञा लेकर जांभोजी के पास समराथळ की ओर चला गया। साथ के अन्य साधु सिद्धेश्वर की आज्ञानुसार यथा स्थान चले गये।'

लोहापांगळ पर निम्नोक्त लेख प्रकाशित हुये हैं —

(१) श्री कन्हैयालाल सहल तथा श्री पतराम गौड़, 'सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी तथा लोहापांगळ' राजस्थान साहित्य वर्ष १ अंक १ पृष्ठ २४।

लोहापिंगर प्रकरणम्, यशोनाथ पुराण, पृ ७१

उपरोक्त घटना के सम्बन्ध में कोई निश्चित संवत् या व तिथि का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। किन्तु नाथ-सम्प्रदाय' के मानने वालों की किंवदन्तियों के आधार पर यह कहा जासकता है कि यह घटना बकरकसाई की घटना के बाद घटी है।

पंगु का कष्ट निवारण व सारण चौधरी को धर्मोपदेश—

गोरखमाळिये की सुषमा-श्री को देख कर किस का चित्त आकर्षित नहीं होगा! लाखों पक्षियों को यहाँ चुग्गा प्राप्त होता है। कसाइयों द्वारा वध किये जानेवाले लाखों मींढो, बकरों की रक्षा की जाती है। ध्यानानन्तर सिद्धाचार्य की दिनचर्या इस प्रकार थी— मोरों, कबूतरों, कमेड़ियों और अन्यान्य लघु पक्षियों को दुलार के साथ चुग्गा देना। उनके कोमल, सुन्दर पखों पर दुलार भरे हाथ फेर कर सुखी करना।

इस भूभाग मे दुर्लभता से प्राप्त जल की बहुलता उन पक्षियों व हरिणादिक पशुओं के लिए रखना। अपाहिज, अबोध पशु-पक्षियों की सहृदयतापूर्वक सेवा, सुश्रुषा करना। इस प्रकार सकल सृष्टि के चराचर प्राणियों से स्नेह-स्निग्ध प्रेम करना, भ्रातृत्व का प्रसार, यज्ञादि कृत्यों का प्रचार और शुभ कर्मानुष्ठान करना ही सिद्ध के जीवन का मुख्य ध्येय था।

जिसके हृदय में प्राणिमात्र के लिये सम्मान हो, कष्ट निवारण की भावना हो, दयार्द्रभाव से जो सकल विश्व को सुखी देखना चाहता हो। जिसका प्रत्येक प्रयत्न लोक-कल्याण के लिए होता हो, और जिसके समग्र साधन एतद्-विषयक होते हों, उस पुनीत महात्मा को सभी लोग अपना सगा-सम्बन्धी समझने लगते हैं। परिणाम-स्वरूप सभी प्राणी प्रेम की विह्वलता से यही दृढ अनुमान करते हैं कि, ये मुझे ही सबसे अधिक प्यार करते हैं।

सन्त, दुष्टनिकन्दन, भक्त-भयहारी होते हैं। फिर भला वे कैसे किसी के साथ सम-विषमता का व्यवहार बरत सकते हैं?

एक दिन पुण्य-भूमि कतरियासर के उत्तर में स्थित 'मोलाणिये' का जाट थका-थकाया क्लान्तमना बाडी में प्रविष्ट हुआ, और बैठकर अपनी पिपासा-शांति के लिये पानी की याचना की। सिद्धेश्वर के किसी अनुचर ने जल पिलाया। उसे शाँति मिली। वह कुछ सुस्ताया और फिर श्री सिद्धेश्वर के सन्मुख करबद्ध होकर प्रार्थना करने लगा—

"महाराज! कई दिनों से मेरा टोव्हा खो गया है। कई जगह खोज

चुका हूँ, किन्तु अभी तक कोई पता नहीं लगा। आप सर्वज्ञ हैं, किस दिशा में मेरा टोल्य मिलेगा कृपया बता कर कृतार्थ कीजिये।"

सुन कर सिद्धाचार्य ने स्वाभाविक से कहा—"अमुक ग्राम के दक्षिण में एक तालाब है, वहाँ तुम्हारा टोल्य चर रहा है। जाकर ले आओ।"

वह स्थान कतरियासर से लगभग ५ कोस की दूरी पर है। मोलासिये का चौधरी वहाँ गया और अपना टोल्य पाकर प्रसन्न हुआ। उसकी सारी क्लान्ति मिट गई।

सन्निकट क्षेत्रों में सिद्धाचार्य के चमत्कारों की चर्चा सदैव ही से सुनी जाती थी परन्तु आज प्रत्यक्ष में परचा (परिचय) पाकर चौधरी बड़ा प्रसन्न था। मोलासिये भर में श्रीनाथजी के परचे (परिचय) की चर्चा बराबर होती रही।

कुछ दिनों बाद वह चौधरी अपने सगे-संबन्धियों के यहाँ लालमदेसर गया। वहाँ उसने देखा कि उसके सम्बन्धी के लड़के की बहुत ही बुरी दशा थी। उस लड़के के पैर सूख कर लकड़ी जैसे होगये थे। वह कभी कभी इतने जोश में आ जाता था कि बीसों आदमी भी उसे सम्भाल नहीं सकते थे। इसीलिये उसे रात दिन मजबूत शृंखला से बाँधे रखना पड़ता था। फिर भी लोगों को भय था कि कहीं यह शृंखला को तोड़ कर गाँव भर को नष्ट न करदे। उसके उत्पातों से सभी लोग सशंकित रहते थे।

लालमदेसर का सारण चौधरी गाँव का प्रमुख व्यक्ति था। धन धान्यादि से परिपूर्ण होने पर भी वह रात-दिन संत्रस्त रहता था। उसने दूर-दूर के गैंडा, झाड़ा करनेवालों को बुला कर उपचार करने की व्यवस्था की। पर उसके इकलौते पुत्र के स्वस्थ होने की दशा में कोई सफलता नहीं मिली। ज्यों ज्यों उपचार किये गये त्यों त्यों रोग अधिक बढ़ता गया। सभी चिकित्सकों ने एक स्वर से उसमें भयंकर दैत्य का प्रवेश बताया था। जब कभी पंगु कुछ स्वस्थ दिखाई पड़ता था, तो ग्राम में अग्निकांड पत्थर वर्षा आदि से उस दैत्य द्वारा बराबर अशांति फैलाई जाती थी।

सारण चौधरी ने अपने पुत्र के स्वास्थ्य-लाभ के लिये कोई और

कसर वाकी नहीं रक्खी। किंतु उसे अपने चारों ओर निराशा के सघन अन्धकार के अतिरिक्त प्रकाश की कोई किरण नहीं दिखाई दी। घर-भर में चिंता और दैत्य के नग्न-नृत्य ने सब की नींद हराम कर रक्खी थी।

आगन्तुक मोलाणिये के चौधरी ने अपने अभिन्न-हृदय सम्बन्धी और उसके पुत्र की ऐसी विचित्र दशा देखी, तो सारण चौधरी से वल देकर कहा—

"आप यदि गोरखमालिये के सकल जन-कल्याण हितेषु करुणार्णव परम तपस्वी सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी की शरण में इस पगु को लेजाँय तो निश्चय ही इसका कष्ट निवारण होगा।"

कई देर चुप रहने के पश्चात् सारण चौधरी ने मोलाणिये के चौधरी से कहा—"हाँ! कुछ दिन पहले हमारे कुल-गुरु जियारामजी ने भी मुझे ऐसी ही सम्मति दी थी, परन्तु चिंताग्रस्त होने के कारण उनका सुझाव मेरी स्मृति से लुप्त होचुका था, पर अब आपकी साक्षी ने उनकी शरण में जाने के लिये हृदय में अटल विश्वास जमा दिया है।"

दूसरे दिन प्रात काल ही सारण चौधरी एक वलिष्ठ वैलों की गाड़ी में पगु को भली-भाँति वान्ध कर, तथा पाँच सात समझदार व्यक्तियों को अपने साथ लेकर कतरियासर की ओर चल पडा। वहाँ से कतरियासर कोई २० कोस के अन्तर पर है। लालमदेसर से कतरियासर वीकानेर होकर जाना पड़ता है। जब ये लोग वीकानेर के नव-निर्मित गढ (जुनागढ़) के सामने से होकर जारहे थे, उस समय सयोगवश लालमदेशर के चौधरी की राव लूणकरणजी से भेंट होगई। रावजी के पूछने पर चौधरी ने अपने पंगु लडके में दैत्य-प्रवेश का सारा इतिहास व उसकी चिकित्सा की सारी कहानी ज्यों की त्यों कह सुनाई।

लूणकरणजी के पास उस समय उनके भाई अड़सीजी[1] वैठे थे।

(१) वीकानेर के प्रकाशित इतिहास में अडसीजी का कहीं कोई नाम नहीं आया है। हो सकता है यह वीकाजी के दस पुत्रों में से किसी एक का उपनाम हो या कोई सामन्त हो। सरदारशहर तहसील में अडसी के नाम से एक ग्राम अड़सीसर बसा हुआ है, पास ही घडसी के नाम पर घडसीसर भी है सिद्धों में इनका नाम दूसरी कथाओं में भी प्रचलित है।

वे राज्यमद व शारीरिक बल से उन्मत्त थे। उन्हें सारण चौधरी की बातों में विश्वास नहीं हुआ। वे चौधरी से बोले—

'तुम्हारे एकमात्र रक्षक हमी हैं, फिर व्यर्थ ही क्यों किसी स्वामी, साधु के पास भटकते हो। हमारे, भाई पड़सीजी इतने पराक्रमी व बलिष्ठ पुरुष हैं कि भूत, दैत्यादि तो उनको देखते ही भग जाते हैं।"

पड़सीजी उस समय घुड़सवारी करने बाहर गये हुए थे। थोड़ी देर बाद जब वे आये तब उन्होंने पंगु में दैत्य-प्रवेश व श्री जसनाथजी के पास जाकर ठीक कराने की बात सुनी। उन्हें बड़ा कौतूहल हुआ। वे मस्त हाथी की तरह उस गाड़ी के पास गये, और लालमदेसर के सारण चौधरी से सगर्व कहा—

"इसीमें है क्या वह दैत्य? जिसको निकलवाने के लिये कतरियासर जसनाथजी की मनौती के लिये लेजाया जारहा है। इसको तो मैं अभी पल भर में ठीक किये देता हूँ।"

पड़सीजी ने कठिन रस्सों और मजबूत शृंखला से उस गाड़ी में बँधे हुये पंगु पर अपने समस्तबल से 'ताजना' (चाबुक) फटकारा। पंगु ने एक हाथ से उस ताजने को पकड़ लिया किन्तु प्रबल योद्धा पड़सीजी अपनी सारी शक्ति लगा कर भी उस लूपतनु पंगु से ताजने को नहीं छुड़ा सके। तब उन्होंने अपनी लज्जा को छिपाने के लिये खूब-जोर से अपने सांग (शैल) को जमीन में गाड़ दिया और कहा—

"यदि यह पंगु इस सांग (शैल) को उखाड़ ले तो मैं मान सकता हूँ कि इसमें राक्षस का प्रवेश है अन्यथा मर समझ इसकी शक्ति का कोई मूल्य नहीं।'

परम-युद्ध कुशल और महाबली योद्धा पड़सीजी के विषय में सुना जाता है कि वे रुपये को अपनी चुटकी स पीस कर महीन पत्ती-सी बना देते थे। उन्होंने बड़े बड़े युद्धों में विजय पाई थी। उनकी इन बहादुरी भरे कार्यों के लिए बीकानेर का इतिहास साक्षी है किन्तु उन्हें क्या पता था कि आज पंगु द्वारा उनके समस्त बल कौशल का अपमान होना है।

गाडी में जकड कर मजबूती से बँधे हुये उस पशु ने अपने दूसरे हाथ से उस साग को उखाड लिया और अपने साथ कतरियासर लेगया। घडसीजी देखते के देखते रह गये।

जब ये लोग कतरियासर में प्रवेश करने लगे तो उस दैत्य ने बैलों को गाँव की सीमा-परिधि से कुछ इधर ही रोक लिया। क्योंकि वह दैत्य कतरियासर की ओरण (जंगल) में नहीं जा सकता था और न उस पशु को ही छोडना चाहता था। ओरण में प्रथम प्रवेश के साथ ही, चाहे वह प्रीति या अप्रीति के किसी भी भाव के साथ आया हो, उसे परचा (परिचय) मिला था, फिर दैत्य की क्या सामर्थ्य कि वह सिद्धाचार्य की क्रीडा-स्थली में बिना वचन या अनुमति के प्रवेश कर सके। बैलगाड़ी बडी देर तक ओरण (जंगल) के इधर ही खड़ी रही।

सर्वज्ञ संत सिद्धाचार्य अपनी दिव्य-दृष्टि से उस सुदूर दृश्य को गोरखमालिये पर बैठे देख रहे थे। 'सर्वभूतहितेरता' के अनुसार सिद्धेश्वर ने हारोजी से कहा—

"तुम वहाँ सीमा पर जाकर हमारे सेवक को यहाँ लिवा लाओ। प्रच्छन्नरूप से उसको दैत्य यहाँ आने से रोक रहा है। अतएव दैत्य को भी मन्त्र-पाश में आबद्ध करके यहाँ ले आना।"

हारोजी ने सीमा पर सिद्धेश्वर की आज्ञानुसार ही कार्य किया। इस कार्य के लिये सारण चौधरी ने सिद्धेश्वर का बडा भारी आभार प्रदर्शित किया और उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया कि अब मेरे सम्पूर्ण कष्टों के निवारण का समय अति समीप आगया है।

सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के सम्मुख आते ही पशु के द्वारा दैत्य बोला – "महाराज। मेरा कल्याण कीजिये, मैं आपके सेवक का पिंड छोड़ दूँगा।" सिद्धेश्वर ने दैत्य को आज्ञा दी – "तुम दूर देशस्थ चले जाओ। कालान्तर में हमारे किसी सेवक द्वारा तुम्हारा कल्याण होगा[1]।

(१) कहते हैं दैत्य ने चार पीढी तक 'उदयपुर राजघराने' के पुरुषों में निवास किया फिर "पाँचला सिद्धो का" के प्रसिद्ध सिद्ध दूदोजी ने उसका उद्धार किया जिसका वृत्तान्त विस्तृत रूप से आगे अंकित है।

पंगु के शरीर से दैत्य का निष्कासन होते ही पंगु मर मुर्दे की तरह हो गया, क्योंकि पंगु वर्षों तक दैत्य द्वारा पीड़ित रहने के कारण बहुत दुर्बल हो चुका था। पैर तो उसके पहिले ही सूख कर लकड़ी हो गये थे। वह पराये जोर से ही इतना उन्मत्त हो रहा था। किन्तु अब उसमें पराई शक्ति नहीं रही थी और अब वह गुब्बारे से गैस के निकलते ही जैसे गुब्बारा प्राण-हीन हो जाता है वैसे प्राणहीन-सा पंगु केवल हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गया था।

पंगु की यह विचित्र दशा देखकर सारंग चौधरी बहुत घबराया, उसने समझा कि अब पंगु की जीवन-लीला समाप्त हो चुकी है भोले ग्राम-वासी को अभी क्या पता कि सिद्धाचार्य की अनिच्छा से स्वयं यमराज का भी यहाँ आना कठिन है।

सिद्धेश्वर ने सारंग चौधरी को पूर्ण आश्वासन देते हुए कहा— "अब तुम्हें किसी भारी संकट की आशंका नहीं करनी चाहिए, यदि तुम्हें विपत्ति ही भोगनी होती तो यहाँ आने का संकल्प ही तुम्हारे चित्त में नहीं उठता। गुरु के भरोसे पर तुम्हें यहाँ पूर्ण निर्भय हो जाना चाहिए। महाराज सिद्धाचार्य की मर्म-स्पर्शी मधुर वाणी सुन कर सारंग चौधरी गद्‌गद्‌ हो गया।

फिर तरस तारण सिद्धेश्वर ने कहा— 'पंगु को यहाँ मेरे समीप लाओ" साथ के व्यक्तियों ने पंगु को उठाकर महाराज के श्री चरणों में डाल दिया। शरणागतवत्सल सिद्धेश्वर ने पंगु के निष्प्राण शरीर पर सहसा सहसा कर,हाथ फेरना शुरू किया। ज्यों ज्यों महाराज उस पंगु के शरीर पर हाथ फेरते जाते थे त्यों त्यों उसमें अमृत-सिंचित लता की तरह प्राण संचरित होने लगे। कुछ ही समय बाद उसके समस्त अवयव यथारीति स्वस्थ हो गए। यह तो मानव था महाराज तो नित्य ही व्यापारिक पशु-पक्षियों तक की सार-संभाल रखते थे। पर दुःख निवारणार्थ ही तो ऐसे अलौकिक एवं विशिष्ठ सन्त इस अवनितल पर अवतरित होते हैं।

परमार्थ परम्परा के नूतन प्रेरक सिद्धाचार्य ने पंगु के समस्त संकटों को हरण कर लिया। पंगु यह अनुभव करने लगा कि उसके पैरों में इतना अधिक

बल आ गया है कि यदि उसे दौड-स्पर्धा में भी भाग लेना पडे तो वह किसी द्रुतगतिमान युवक से पीछे नहीं रहेगा।

सारण चौधरी और पगु के पास ऐसी कोई वाणी की साधना नहीं थी कि जिसके द्वारा वह सिद्धाचार्य की कृतज्ञता का गुण गान कर सके।

दैत्य-मुक्ति के साथ ही पैरों के ठीक हो जाने से पगु ने बड़े ही विनीत भाव से महाराज की प्रदक्षिणा की। पंगु को सिद्धाचार्य की परिक्रमा करते देख कर सभी हर्षोन्मत्त हो कर 'जय जय कार' करने लगे। सारण चौधरी और पगु के भाग्य की सराहना करते हुए साथ के व्यक्तियों ने भी सिद्धाचार्य के दर्शन-लाभ से अपने को भाग्यशाली समझा। मन में कहने लगे— "पूर्व जन्म के पुण्य-प्रताप से ही ऐसे अलौकिक सिद्ध-पुरुषों के दर्शन होते हैं।"

सारण चौधरी ने अपना मनवाञ्छित लाभ करके सिद्धेश्वर श्री जस-नाथजी से अपने गाँव जाने की आज्ञा मांगी। सिद्धाचार्य ने इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। सारण चौधरी इस मौन को समझ गए और वे "होम-सात्यूं"[१] के सुन्दर अधिवेशन से लाभ उठाने के लिये रुके रह गये। यह उत्सव हर मास की शुक्ला सप्तमी को मनाया जाता था और अब भी मनाया जाता है। जिसमें 'गोरखमाळिये' पर सन्निकट क्षेत्रों से प्रचुर लोगों का जमाव होता था एव अब भी होता है।

सप्तमी के दिन एकत्रित जनसमुदाय बड़े ही एकाग्र चित्त एव पूर्ण निष्ठा के साथ सिद्धाचार्य का धार्मिक प्रवचन सुनते थे तथा महाराज के समक्ष आत्म-निरीक्षण करते, नैतिक उत्थान के भावी-जीवन के लिए प्रतिज्ञायें करते और किसी ज्ञात अज्ञात अपराध के लिए "पॉचोळा" विधि से 'चळू'[१] (पचगव्य) लेकर प्रायश्चित भी करते थे।

---

(१) 'होम सात्यू' का अथ है— 'हवन सप्तमी' इस दिन यहाँ (कतरियासर गोरखमा'ळिये पर) यज्ञ-कर्म सम्पूर्णतया सम्पादित होता था और अब भी होता है।

आगन्तुक श्रद्धालु—भक्तजनों की ऐसी आत्मोन्नति की उच्च क्रियाओं एवं धारणाओं को देखकर सारण चौधरी के हृदय में एक बड़ा ही उच्च विचार उत्पन्न हुआ। उसने देखा मानव-जीवन की सच्ची सार्थकता तो ऐसे कृत्यों में है। मैं तो गिंवार (मूर्ख, असभ्य) और उजड्ड रहकर व्यर्थ ही देव-दुर्लभ मानव-जीवन को पतित बना रहा हूँ। चौधरी ने क्षण भर में अपने जीवन का सिंहावलोकन कर लिया। उसके जीवन का प्रवाह मुड़ गया उसको अपने पिछले जीवन पर बड़ा ही पश्चात्ताप हो रहा था। अब वह संसृति के कुचक्र से अपनी आत्म-रक्षा करना चाहता था। अब उसे महान् सद्गुरु की प्राप्ति हो गई है। अब वह कर्तव्य-च्युत होकर जीवन नहीं बिता सकता। अब तो उसे कर्तव्याकर्तव्य का बोध करना ही है।[1]

सारण चौधरी ने विशाल-जन उपस्थिति के सामने ही निःसंकोच भाव से सिद्धराज से विनय की – आप द्वारा मेरे सब कष्टों की निवृत्ति हो गई, मैंने यहाँ पर आने वाले लोगों को देखा है जिस तरह इन लोगों को आपके द्वारा पवित्रतम सात्त्विक दिनचर्या बिताने का सौभाग्य मिला है। प्रभु! ऐसे ही सत्संकल्प मैं अपने जीवन में अपने ग्राम और परिवार में मूर्त-रूप से चिरस्थायी देखना चाहता हूँ। अब आप मुझे ऐसा सुपथ बताइये जिस पर चलने से मेरा मेरे परिवार का और ग्राम का कल्याण हो।

सिद्ध-पुरुषों का सहवास यदि किसी का स्वच्छ परिवर्तन न कर तो जगत का कल्याण कैसे हो? सिद्धाचार्य ने पंगु के पिता सारण चौधरी को उपदेश दिया। इससे पूर्व सारण चौधरी ने भी 'पोपोसा' में सम्मिलित हो कर "धम्" सखी थी इसलिए भी यह स्वभावतः उपदेश श्रवण करने का अधिकार प्राप्त कर चुका था। सिद्धाचार्य की जननाभओं में सारण चौधरी

(१) श्रुति में कहा है—जो मनुष्य अपने कर्तव्य का पालन न करके मनुष्य जीवन को व्यर्थ खो रहे हैं। अथवा अधःपतन कर रहे हैं उनको वहाँ "आत्म हत्यारा" कहा गया है।

(कल्याण वर्ष १८ अंक १ पृ ११८०)

को प्रथम उपदेश निम्नलिखित "सवद" से दिया—

जिण गुरु नै सिंवर हो पिराणी, जिण आ सिस्ट उपाई।
ओंकारे आप ऊपना, जळ सूँ जोत सवाई।
मार पलाथी तपस्या बैठ्या, जुगाँ छतीसाँ ताई।
कायम राजा फेरी मनो'री, कळ री माँड रचाई।
पै'लाँ पून पाणी परगास्या, चाँद सूरज दो भाई।
विरमा, विस्न महेसर सिरज्या, आद भवानी माई।
इतरा तो गुरु पै'लाँ सिरज्या, पच्छैं सिस्ट उपाई।
नौ ओतार किया नरायण, (ॐ) परता पून रमाई।
मारै, तारै, दैत सिंघारै, स्यामी वडो सरा'ई।
कोप्या कायम, फैरी मनो'री, मार खळो कर गा'ई।
कळ वीते काळँग' नै मारै, करसी जुझ लड़ाई।
अड़सठ जोगण चाले वावैं, गैवी चकर चलाई।

हे प्राणी! उस गुरु (ईश्वर) का स्मरण करो, जिसने इस ससार को उत्पन्न किया। निराकार ओंकार से ईश्वर साकार हुए, तत्पश्चात् ईश्वर ने छत्तीस युगों तक तप-साधन किया। ईश्वर ने इच्छा की और सृष्टि की अवतारणा हुई। पहले पवन आदि पचतत्त्वों को प्रकट किया, तत्पश्चात चद्रमा, सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और आद्यशक्ति का सृजन किया।

इनको तो ईश्वर ने पहले उत्पन्न किया, तदुपरान्त सकल ससृति को। ससार-हित-साधन के लिए ईश्वर ने नव अवतार धारण किए और इच्छित कार्य को पूरा कर अन्तर्ध्यान हो गए।

स्वामी बडा सराहने योग्य है। वही मारने वाला है, वही इस भव-सागर से पार लगाने वाला है। और वही दैत्यों का सहार करने वाला है।

सात समुद्र की खाई वाला लका रावण का गढ़ था। रावण पर ईश्वर ने प्रकोप किया। उसको खलिहान की भाँति ध्वस्त डाला। भविष्य में भी कलियुग में होनेवाले "काळग" राक्षस को मारने के लिए ईश्वर जुझेंगे! उस समय अड़सठ योगिनियों के आकस्मिक चक्र चलेंगे।

आगन्तुक श्रद्धालु—भक्तजनों की ऐसी आत्मोन्नति की उच्च क्रियाओं एवं धारणाओं को देखकर सारण चौधरी के हृदय में एक बड़ा ही उच्च विचार उत्पन्न हुआ। उसने देखा मानव-जीवन की सच्ची सार्थकता तो ऐसे कृत्यों में है। मैं तो गिंवार (मूर्ख, असभ्य) और उजड्ड रहकर व्यर्थ ही देव-दुर्लभ मानव-जीवन को पतित बना रहा हूँ। चौधरी ने क्षण भर में अपने जीवन का सिंहावलोकन कर लिया। उसके जीवन का प्रवाह मुड़ गया उसको अपने पिछले जीवन पर बड़ा ही पश्चाताप हो रहा था। अब वह संसृति के कुचक्र से अपनी आत्म-रक्षा करना चाहता था। अब उसे महान् सद्गुरु की प्राप्ति हो गई है। अब वह कर्तव्य-च्युत होकर जीवन नहीं बिता सकता। अब तो उसे कर्तव्याकर्तव्य का बोध करना ही है।'

सारण चौधरी ने विशाल-जन उपस्थिति के सामने ही निःसंकोच भाव से सिद्धराज से विनय की – 'आप द्वारा मेरे सब कष्टों की निवृत्ति हो गई, मैंने यहाँ पर आने वाले लोगों को देखा है, जिस तरह इन लोगों को आपके द्वारा पवित्रतम सात्विक दिनचर्या बिताने का सौभाग्य मिला है। प्रभु! ऐसा ही सत्संकल्प मैं अपने जीवन में अपने ग्राम और परिवार में मूर्त-रूप से चिरस्थायी देखना चाहता हूँ। अब आप मुझे ऐसा सुपथ बताइये जिस पर चलने से मेरा मेरे परिवार का और ग्राम का कल्याण हो।

सिद्ध-पुरुषों का सहवास यदि किसी का स्वभाव परिवर्तन न करे तो जगत का कल्याण कैसे हो? सिद्धाचार्य ने पंगु के पिता सारण चौधरी को उपदेश दिया। इससे पूर्व सारण चौधरी ने भी 'पाँवोला' में सम्मिलित हो कर पशु बेची थी इसलिए भी वह स्वभावतः उपदेश-श्रवण करने का अधिकार प्राप्त कर चुका था। सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी ने सारण चौधरी

(१) श्रुति में कहा है—जो मनुष्य अपने कर्तव्य का पालन न करके मनुष्य जीवन को व्यर्थ खो रहे हैं। अपना अधःपतन कर रहे हैं उनको यहाँ 'आत्म हत्यारा' कहा गया है।

(कल्याण वर्ष २८ अंक ९ पृ १२८०)

सप्तमी-सम्मेलन के अवसर पर एकत्रित हुए, सभी श्रद्धालु-भक्तों ने इन उपरोक्त छत्तीस धर्म-नियमों को सहर्ष स्वीकार किया। सिद्धाचार्य ने कहा— "जो इन धर्म-नियमों का पालन करेगा, उसे किसी प्रकार की सांघातिक क्षति नहीं उठानी पड़ेगी। वह सब प्रकार की सांसारिक पीडाओं से मुक्त रहेगा। जो प्राणी "पाचोव्या" यज्ञवेदी के सामने बैठकर ' चळू" ले लेगा, वह सदा के लिए इस धर्म में दीक्षित हुआ समझा जायेगा। जो मनुष्य "चळू लेकर" उपरोक्त नियमों के विपरीत आचरण करेगा वह अनेकानेक विपत्तियों से ग्रसित होकर समूल नष्ट हो जायेगा। उस आचरण-भ्रष्ट मनुष्य के बचने के लिए एक ही उपाय है, जैसा कहा है— "दोस हुवै इण जीव नै कीजे पाचोव्यो, परभु, पडदो दूर कर, अन्तर पट खोलो।" कुल गुरु की मध्यस्थता से प्रायश्चित के लिए यज्ञ करके, धार्मिक-दण्ड स्वीकार करे।

होम जाप अग्नि सुर पूजा, अन्य देव मत मानो दूजा।
ऐठे मुख पर फूंक न दीजो, निकम्मी बात काल मत कीजो।
मुख से राम नाम गुण लीजो, शिव शंकर को ध्यान धरीजो।
कन्या दाम कदे नहीं लीजो, व्याज वसेवो दूर करीजो।
गुरु की आशा विसवँत बाँटो, काया लगे नहीं अग्नि काँटो।
होको तमाखू पीजे नाई, लसन अरि भाग दूर हटाई।
साटिये सोदा वर्जित ताई, बेल वढ़ावन पावे नाई।
मिरगा वन में रखत कराई, घेटा बकरा थाट सवाई।
दया धर्म सदा हि मन भाई, घर आयाँ सतकार सदाई।
निंदा कूड कपट नहीं कीजे, चोरी जारी पर हर दीजे।
रजस्वला नारी दूर करीजे, हाथ उसीका जल नहीं लीजे।
काला पानी पीजे नाहीं दश दिन सूतक पालो भाई।
कुल की काट करीजे नाई श्री जसनाथ गुरु फरमाई।

नेम छत्तीस हि धर्म के, कहे गुरु जसनाथ।
या विध धर्म सु धारसी, भव सागर तिरजात॥

(वही, यशोनाथ प्रकरण, पृ० ५३ से ५५ तक)

लेय विसमर होम करेसी, फिरसी आण दुहाई।
गुरु परसादे गोरख बचने, (श्रीदेव) जसनाथ (जी) चौंच सुणाई।

तदुपरांत अग्नि पूजा के साथ हवन होगा और निष्कलंक भगवान की आन (मर्यादा) की दुहाई फिर जायगी। गुरु की कृपा से गोरखनाथजी के वचनानुसार श्री देव जसनाथजी ने सारण चौधरी को ऐसा उपदेश दिया।

जसनाथी सिद्धों में ऐसी धारणा है कि सिद्धाचार्य द्वारा प्रतिपादित छत्तीस धर्म-नियमों का उपदेश सर्वप्रथम सारण चौधरी को ही दिया था।

संवत् १८०५ के हस्तलिखित "गुटके" (प्रति) में ऐसा पाठ अंकित किन्तु धर्म के छत्तीसों नियमों का उल्लेख इस 'गुटके" के पाठ में नहीं पाया जाता। पाठान्तर भेद से यही नियम "यशोनाथ-पुराण" में प्रकाशित हुए हैं।[1] "गुटके" का पाठ ऐसा है—

जो कोई आत हुवै जसनाथी, उत्तम करणी हालो आछी।
राह चल अपना धर्म रख, भूख मर जीव न मख।
उत्तम केस रखाओ अच्छा, पै'ले नीर अणारै पिछै।
सवक शील सबूरी करत, सो मानो भगवानी मूरत।
दाओ देव नहीं कोई दूजो, जोतसरूपी परगट पूजो।
अतरा काम सब ही कीजो, ओठ विसमर फूंक न दीजो।
जळ-पाणी सो छाण्यो पीजो, देही मोम समाधी लीजो।
मोख-मुक्त रा मारग जोजो, किन्या द्रव्य न ब्याज विसाजो।
बिच सारो ही बिसवैंत बाँटो, काया लगे नहीं कीड़ो काँटो।
अतरा ले हर दरगे मानी, पैंच बतावै जसनाथ (जी) वाणी।
मूरख हुँवा पिंवत कीया, इस करणी गत लादै भूया।
अवया निंशा न आर्यों नेड़ी, (गुरु प्रसादे गोरख बचने
श्री देव जसनाथी जी कहै) इण पैंच चालो अगम री पैड़ी।

---

(१) जो जसनाथी धरम धरासो उत्तम करणी रासो आसो।
जीव रखा कर मुख न खाइये दूध नीर नित न छाण रखाइये।
शील स्नान साबरी सुरत जोत पाठ परमेस्वर मूरत।

राव लूणकरणजी को वरदान व घड़सीजी का पराभव—

सारण चौधरी के पंगु लड़के ने बीकानेर राव बीकाजी के पुत्र घडसीजी का 'ताजना' व साग (शैल) जो अपने वल पराक्रम से उनसे छीन कर कतरियासर ले आया था, वह सिद्धाचार्य द्वारा ठीक किये जाने पर पगु ने लौटते समय उन्हें वापिस किया। लूणकरणजी तथा घडसीजी ने कतरियासर जाते समय सारण चौधरी के पगु लड़के की स्थिति को अच्छी तरह से देखा था। "ताजना" वह सांग लौटाते समय वह पूर्ण स्वस्थ अवस्था में दृष्टिगत हुआ। इस चमत्कृति से लूणकरणजी के हृदय में सिद्धाचार्य के प्रति श्रद्धा के भाव जागृत हुए। विपरीत घडसीजी के हृदय में सिद्धाचार्य के प्रति ईर्ष्या जागृत हुई। वहुधा देखा जाता है कि सिद्ध पुरुषों के आश्चर्य जनक कार्यों को देखकर लोगों के हृदय में उनके प्रति श्रद्धा होती है, किन्तु घड़सीजी के हृदय में तो सिद्धाचार्य के प्रति अधिकाधिक ईर्ष्या के भाव ही उत्पन्न हुए। इस वृत्त को सुनकर परस्पर एक दिन कतरियासर चलने का विचार प्रकट किया गया और निश्चयानुसार विक्रम स० १५६१ श्रावण कृष्णा अष्टमी[1] को लूणकरणजी, घडसीजी, अडसीजी और उनके कामदार अश्वारोही होकर अपने गतव्य स्थल की ओर चल पडे।

जब इन अश्वारूढ लोगों ने कतरियासर की परिधि में प्रवेश करना चाहा तो इनके घोड़े वहीं रुक गये, आगे नहीं बढ़ सके[2]। इन्होंने वड़ा प्रयत्न किया, पर घोड़े टस से मस न हुए। निदान इनको घोड़ों से नीचे उतर कर ही, गोरखमाळिये की ओर पैदल चलना पडा।

---

(१) यह सवत् "सिद्धचरित्र" के अन्वेषण काल में, सिद्धो के एक गांव में प्राप्त प्राचीन पत्र में अंकित है, जो हमारे सग्रह में है।

(२) अडसी घडसी जब चाल दये, जसनाथ मिलाप सु जायरये।
कतरासर के डिग आय लये, मन में कपटी कपटाय गये।
निज "ओरण" में हय ठेर गये, पग पैदल से नर चाल दये।
जसनाथ समीप सु देख रये, मन में कुछ दम्भ दिखाय गये।

भविष्य में विपरीत आचरण न करने की प्रतिज्ञा करें और पुनः 'पम्' लेकर दीक्षित होवे।"

सिद्धाचार्य ने पुनः सारण चौधरी को संबोधित करते हुए कहा— "हे सारण! देवों का प्रिय काम करो। (हवन, पूजन यजन) ऐसा करने से देव तुम्हारे पर कृपा करेंगे। देव-कृपा से-दैहिक दैविक और भौतिक तापों का नाश हो जायगा। देवों का उचित भाग देने वाला मनुष्य सुखी और स्वस्थ रहता है। उसके शरीर से सब दोष दूर हो जाते हैं।"

सारण चौधरी ने सिद्धाचार्य के प्रत्येक शब्द को अंगीकार किया। अब वह भली भांति समझ गया कि मेरे पूर्व काल में होने वाले कष्टों का यही कारण था कि मैं एकमात्र धन-संचय में ही अपने जीवन का उत्कर्ष समझता रहा। मैंने यदि इन बातों को पहिले समझा होता तो आयु के ये अमूल्य दिन कष्ट और प्रमाद में व्यतीत नहीं होते।

सप्तमी-सम्मेलन के अवसर पर सारण चौधरी ने अपने जीवन का अभूतपूर्व परिवर्तन देखा। वह सिद्ध-धर्म" में ज्ञान-दीक्षित होकर अथवा सत्य तपादि का उपदेश लेकर सिद्धाचार्य का कृपा-पात्र शिष्य बन गया। उसने अब भावी-जीवन के लिए दृढ़ निश्चय कर लिया कि वह सिद्धाचार्य के प्रत्येक आदर्श-उपदेशों को अपने जीवन में आत्मसात् करेगा।

सप्तमी-सम्मेलन के संपन्न होने पर, सारण चौधरी ने ओंमनो आदेश" अभिवादन करके गुरु से विदा ली और अपने भवन की ओर प्रस्थान किया।

कतरियासर से बीकानेर पहुँच ने पर सारण चौधरी ने पड़सीजी को वह 'रौला' और 'रागमा' वापिस लौटाया जिसको पंगु छीन कर कतरियासर लेगया था। राव पड़सी आदि के पूछने पर सारण चौधरी ने कतरियासर की समस्त स्थितियों से उन्हें परिचित किया एवं अपने गाँव शेखसर चला गया।

---

(1) यह घटना वि. सं. १५६१ की है। उस समय बीकानेर पर राव बीकाजी के ज्येष्ठ पुत्र राव नरोजी राज्य करते थे बीकाजी के अन्य पुत्र लूणकरण पड़सी आदि राज्य के संरक्षक सामन्त थे और राज्य की प्रत्येक गतिविधि पर सतर्कतापूर्ण दृष्टि रखते थे।

राव लूणकरणजी को वरदान व घड़सीजी का पराभव—

सारण चौधरी के पगु लड़के ने बीकानेर राव बीकाजी के पुत्र घडसीजी का 'ताजना' व साग (शैल) जो अपने बल पराक्रम से उनसे छीन कर कतरियासर ले आया था, वह सिद्धाचार्य्य द्वारा ठीक किये जाने पर पगु ने लौटते समय उन्हें वापिस किया। लूणकरणजी तथा घडसीजी ने कतरियासर जाते समय सारण चौधरी के पगु लडके की स्थिति को अच्छी तरह से देखा था। "ताजना" वह साग लौटाते समय वह पूर्ण स्वस्थ अवस्था में दृष्टिगत हुआ। इस चमत्कृति से लूणकरणजी के हृदय मे सिद्धाचार्य के प्रति श्रद्धा के भाव जागृत हुए। विपरीत घडसीजी के हृदय में सिद्धाचार्य के प्रति ईर्ष्या जागृत हुई। बहुधा देखा जाता है कि सिद्ध पुरुषों के आश्चर्य जनक कार्यों को देखकर लोगों के हृदय में उनके प्रति श्रद्धा होती है, किन्तु घडसीजी के हृदय में तो सिद्धाचार्य के प्रति अधिकाधिक ईर्ष्या के भाव ही उत्पन्न हुए। इस वृत्त को सुनकर परस्पर एक दिन कतरियासर चलने का विचार प्रकट किया गया और निश्चयानुसार विक्रम स० १५६१ श्रावण कृष्णा अष्टमी[1] को लूणकरणजी, घडसीजी, अडसीजी और उनके कामदार अश्वारोही होकर अपने गतव्य स्थल की ओर चल पड़े।

जब इन अश्वारूढ लोगों ने कतरियासर की परिधि में प्रवेश करना चाहा तो इनके घोडे वहीं रुक गये, आगे नहीं बढ सके[2]। इन्होंने बडा प्रयत्न किया, पर घोडे टस से मस न हुए। निदान इनको घोडों से नीचे उतर कर ही, गोरखमाळिये की ओर पैदल चलना पडा।

---

(१) यह सवत् "सिद्धचरित्र" के अन्वेषण काल में, सिद्धो के एक गाँव में प्राप्त प्राचीन पत्र में अंकित है, जो हमारे सग्रह में है।

(२) अडसी घडसी जब चाल दये, जसनाथ मिलाप सु जायरये।
कतरासर के ढिग आय लये, मन में कपटी कपटाय गये।
निज "ओरण" में हय ठेर गये, पग पैदल से नर चाल दये।
जसनाथ समीप सु देख रये, मन में कुछ दम्भ दिखाय गये।

लूणकरणजी सिद्धाचार्य की 'बाड़ी" के बाहर ही अपनी कमर के शस्त्र-शस्त्र खोल कर विनीत-भाव से सिद्धराज के पास गये, श्रद्धा नतमस्तक से "ॐ नमो आदेश" अभिवादन किया एवं पत्र-पुष्प भेंट कर उनके समीप बैठ गये।

देहाभिमानी पड़सी ने कपटपूर्ण मनोवृत्ति से उनकी सिद्धाई की परीक्षा करनी चाही। पड़सीजी ने पहले से ही चातुर्यपूर्ण ढंग से आधे रुपये खोटे और आधे रुपये सच्चे, एक थैली में भर लिए और यह थैली श्री जसनाथजी को समर्पित की। तब सिद्धाचार्य ने अपने प्रिय शिष्य का सम्बोधित करते हुए कहा—

'हरा रे हरा आधा खोटा आधा खरा।
खोट खोटेड़ों पड़सी राज बीको लूणकरण करसी'।

अर्थात् 'हरा ! अरे हरा !! आधे रुपये खोटे हैं और आधे सच्चे हैं। यह कपट, कपट करने वालों पर पड़ेगा तथा बीकानेर का राज्य बीकाजी का पुत्र लूणकरण करेगा।'

यह सुनकर पड़सी ने आवेश से कहा— 'करसी धूड़ और भाटो।" सिद्धाचार्य ने कहा — 'धूड़' (धूल रेत) में धरती और भाटे (पत्थर) में गढ़'। सिद्धाचार्य ने लूणकरणजी को राज्य-प्राप्ति का वरदान देते हुए धरती एवं गढ के लाभ का वरदान दिया।

---

(१) पड़सीजी सुन लीजिये तुम से सरे न काज।
सार वचन जसनाथ के लूणकरण को राज॥
(जसनाथ पुराण पृ ४६)

पड़सी पड़सी थो राजेश्वर आया अगर छाया ने मन में कपटाया।
जोगी छाया तो थाप फरमाई। राजगादी थम किम दिन आवे।
श्री जसनाथजी एहा फरमाया करसी काटे पे बाधो रे भाया॥
पड़सी पड़सी खाटाई पड़सी राज बीकाणे लूणोजी करसी॥
(सिद्धजी रो सिरलोको)

(२) राजस्थानी में धूड़ रेत को कहते हैं एवं भाटा पत्थर को कहा जाता है यहाँ लक्षणा से धूड़ धरती और भाटो गढ का वाचक है।

घडसीजी को इस वरदान से आश्चर्य होना स्वाभाविक था। क्योंकि उस समय बीकानेर राज्य पर बीकाजी के ज्येष्ठ पुत्र राव नरोजी सिंहासनारूढ थे। किन्तु कुछ ही समय बाद नरोजी का देहान्त होगया और सिद्धाचार्य के वचनानुसार लूणकरणजी को बीकानेर राज्य की प्राप्ति हुई।

राव लूणकरणजी ने सिद्धाचार्य से प्रश्न किया – "महाराज ! हमारा राज्य कितने समय तक हमारे हस्तगत रहेगा ?" सिद्धाचार्य ने उत्तर देते हुए कहा—"आपका राज्य साढे तीनसौ वर्ष तक पूर्णरूप से आपके अधिकार मे रहेगा। तत्पश्चात यहाँ विदेशियों का शासन होगा। उनके सामने समस्त राजपूत जाति नतमस्तक होकर रहेगी।" राव लूणकरण द्वारा विदेशियों के लक्षण एव कार्यकलाप पूछे जाने पर सिद्धाचार्य ने निम्नांकित "सवद" कथन किया—

काळा बखतर पुरख पचाधा, पूरब दिसां सूं आवैला।
उत्तर दीखण पूरब पछिम, चक च्यारूं निरतावैला।
देस देस रा माल दिखावै, पई पई खरचावैला।
जळ मै तार प्रजाळ, (पाणी) ऐको तार लगावैला।
कोटां ऊपर कोट चिणावै, अपरा हुकम चलावैला।
रजपूता री रज घट जासी, न कोई कान हलावैला।
साध घटैला मेछ वधैला, एको वाइन्दो वा'वैला।
थे मत जाणो मील गुमावै, सुर नुर लेखै लावैला।
थळ माथै सिध साधक होसीं, ज्हाॅ मिलण गुरु आवैला।
भगवां टोप गळै जप माळा, थळ सर जोत जगावैला।
पच्छै साध वधैला मेछ घटैला, गोरख जोगी आवैला।
काळंग मारै कुळ बरतावैं, निकळंग आण फिरावैला।
गुरु परसादे गोरख वचने, (श्रीदेव) जसनाथ(जी)
आगूं वचन सुणावैला।

इस 'सबद' में श्वेताङ्ग अंग्रेजों का विवरण दिया है। उपरोक्त विवरण के अनुसार भारत पर अंग्रेजों का शासन हुआ और समस्त राजपूत जाति उनके सामने नतमस्तक होकर पराधीन रूप में रही। प्रश्नोत्तर क्रम में राव लूणकरणजी ने सिद्धाचार्य से भविष्य में होनेवाली अनेकों घटनाओं के विषय में पूछा[१], तथा सामाजिक स्थिति के बारे में भी जिज्ञासा की जैसा 'यशोनाथ-पुराण' में अंकित है[२]।

---

(१) इस विषय में "निकलंक परवाण" एक स्वतन्त्र रचना है। जिसमें निकलंक भगवान् द्वारा कालिंग के वध की कथा है।

(२) निमक हराम करे नर सोई कूड़ा कपट बिन शब्द न होई।
सब नर गुरू स्वरूप दिखावें ऊँच नीच की एक जमावें ॥ १ ॥
धर्म अधर्म सरूप न जाने अधर्म को ही धर्म कर माने।
ताको फल दु:ख पाप कहावे गुरु चेला सब नरक पठावे ॥ २ ॥
जति सती सत्य रूप न दीसे मारी दांत पती पर पीसे।
मात पिता को दुर्जन जाने दुर्जन को निज मित पिछाने ॥ ३ ॥
निंदक वेद विरुद्ध बखानी, ताको सब जन पूज करानी।
क्लेस अनंत दु:ख सब नर पावे पर तंतर सब पाप करावे ॥ ४ ॥
परत्री नार'र पुरुष कु धारा सो पर भंजित कर दि विहारा।
वेद विद्या पढे नर नांही सब नर पशु समान दिखाहीं ॥ ५ ॥
सुहागण विधवा एक सरूपा विधवा सिणगार करत अनूपा।
रंडी को रंडी गुरु होवे ज्ञान प्रयोजन कोय न जोवे ॥ ६ ॥
अन्धे को अन्धा मिल जावे, सो नर बाट किसी बिध पावे।
ज्ञानी गुरु बिन ज्ञान न आवे ज्ञान बिना मुक्ति नहीं पावे ॥ ७ ॥
करत सकाम सदा सब कोइ ताको पुण्य फल मुक्त न होई।
व्यापत कलियुग रोल मचाई सब नर नीचि कोटि मिलजाई ॥ ८ ॥
धर्म विषय पर दूर भगावे, पाप विषय पर हाजर आवे।
कोइ पुरुष में एक सु ज्ञानी जा मन भेद जगत नहिं जानी ॥ ९ ॥
पाप कर्म मन लोभ अज्ञानी हृदय कमल मल दोष न जानी।
सिध जसनाथ की जो सुन वाणी या युगसे रहिसे निरवानी ॥ १० ॥

लूणकरणजी ने महाराज से फिर प्रश्न किया—"महाराज! मुझे "राज्य गद्दी" कैसे प्राप्त होगी, मैं तो छोटा हूँ, तब सिद्धेश्वर ने फरमाया—

"वीकपुरॉ सूँ आई वाचा, सीलॉ सवदॉ रहज्यो साचा।
वर्वे अटारी वर्वे अटारा, लूणकरण सब चाकर थारा।
कुवदा निन्दरा आणो ना काई, आँख्यॉ अच्छर देखो भाई[1]।"

कहते हैं घडसीजी इस वार्तालाप से पहिले ही गोरखमाळिये से उठ कर 'बाडी' से बाहर आगये थे। कुछ समय बाद लूणकरणजी भी वहाँ आये तब घडसीजी ने लूणकरणजी से पूछा—"तुम्हारे सिद्धेश्वर महात्मा ने और क्या वरदान दे डाला"? लूणकरणजी ने कहा—मेरे पूछने पर सिद्धेश्वर ने कहा—"तुम्हारा राज्य साढे तीनसौ वर्ष रहेगा।" तब घड़सीजी ने कहा—"आपको पूछना चाहिए था कि उसके बाद क्या होगा और ऐसा क्या उपाय किया जाय जिससे राज्य हमारे अधिकार में ही रहे। चलिए उन्हें पुन पूछ लेते हैं।" ऐसा कहकर घड़सीजी लूणकरणजी सहित सबको साथ लेकर महाराज के पास गोरखमाळिये पर गए, तब तक सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी ध्यान-समाधि लगा चुके थे। महाराज को इतनी जल्दी ही ध्यान-मुद्रा में देख कर घडसीजी को रोष चढ आया, वे सिद्धाचार्य पर आग-बबूला हो उठे और अकारण ही सिद्धेश्वर को नीचा दिखाने की युक्ति सोचने लगे। आवेश में आकर घडसीजी ने कहा—'अब यह पाखण्डी ऐसे नहीं बोलेगा।" कह कर पास में ही रखी हुई 'हवन-वेदी' को सिद्धाचार्य से सटाकर तथा उसमें लकड़ियें डाल कर अग्नि जलादी' तब सिद्धेश्वर ने इनको ऐसे विभत्स कार्य में रत देखकर समाधि को तोडते हुए कहा—"जळता बळता सौ बरस और रै'सी"[2] अर्थात् पराधीन रूप मे सौ वर्ष राज्य और रहेगा, उसके बाद

---

(१) वीकाँ निर्दा कान्धळा, मूख मामळ न रै'सी लाज,
अडाणू अदलै मे जामी ऊपर फिर ज्यासी व्याज।
राजपूत नोकरी करसी, परदेशी करसी राज।

(२) ऐसी किंवदन्ति भी है कि सिद्धेश्वर ने लूणकरणजी को कहा था कि तुम्हरा राज्य जाळों (पिलु) में रहेगा। तब से राज्य के अ य प्रतीको (जैसे छत्र, त्रिशूल)

तुम्हारी सन्तान पर बैठ जायेगी। सिद्धेश्वर की यह बात पड़सी तथा उनके अमरावों (मन्त्रियों) को बुरी लगी अमरावों ने व्यंग्यात्मक स्वर में पूछा—'महाराज! आप इतने बड़े सिद्ध-पुरुष हैं तो बतलाइये हम पूर्व जन्म में कौन थे।" सिद्धेश्वर ने कहा— 'तुम पूर्व जन्म में चमार थे और जूता बनाने का काम करते थे विश्वास के लिए जाकर देखलो अमुक स्थान पर तुम्हारे जूता बनाने के औजार जमीन में गड़े हैं।" कहते हैं खोद कर देखा तो बात यथावत् निकली। इस बात से दुष्टात्मा पड़सी और भी चिढ़ गया और राज्याभिमान में बोला— 'इस धरती के तो हम ही मालिक हैं अतएव बिना हमारी आज्ञा के तुम्हें यहाँ रहने का कोई अधिकार नहीं है।" तब सिद्धाचार्य ने रूम्मी पड़सी को संबोधित कर यह 'सबद' कहा—

> इण घर राजा इन्द्र मणीजे, सो महाराज कहाणू।
> राणा रावण आगल हुआ, जहाँ हँकार'च न आणू।
> इण घर परछे चकवा हुआ, जाँ कोई गरब न आणू।
> गरब कियो उण चकवै-चकवी, रैण बिछोड़ो पाणू।

इस धरती का राजा तो इन्द्र कहलाता है वस्तुतः महाराजा कहलाने के अधिकारी भी वही हैं क्योंकि इन्द्र के द्वारा वर्षा करने से ही तो यह धरती उर्वरा होती है। राजा महाराजा तो इस पृथ्वी पर पहिले भी हुए हैं पर क्या उन्होंने कभी अभिमान किया था?

इस पृथ्वी पर पूर्वकाल में बड़े चक्रवर्ती सम्राट हो चुके हैं परन्तु उन्होंने किसी प्रकार का कोई अभिमान नहीं किया। गर्व किया था उस 'चकवे' और 'चकवी ने जिससे इस पक्षिदम्पति को रात्रि वियोग का दुष्परिणाम भोगना पड़ता है।

की तरह श्री बख्तावरजी के स्मरण में झाड़ वृक्ष को भी अपना राज्य प्रतीक माना। 'बीकानेरी सिक्के' में तथा 'गंगाशाही' रुपये में झाड़ वृक्ष अंकित है। महाराजा श्री गंगासिंहजी ने एक बार फरमान निकाला था कि समस्त सरकारी कार्यालय के मैदानों में झाड़ वृक्ष लगाया जाय और इसी वजह से लालगढ़ का राजमहल झाड़ वृक्षों से घिरे हुए मैदान में बनवाया था।

गरब कियो लंकापत रावण, तोड़्यो सबळ ठिकाणू।
मंदोदर री कह्यो न मान्यो, जम्भि राज गमाणू।
रावण जाय सताया तपसी, काया अशं'ज ताणू।
पांच किरोड़ पहलादो सीधो, जाँ सिव संकर जाणू।
सात क़िरोड़ाँ राव हरिचंद, जाँ सतशील वखाणू।
नवां किरोड़ाँ राव जहुठळ, जाँ भगवान पिछाणू।
भगवाँ वानो हितकर मानो, जुग जुग जसवन्त जाणू।
भगवँ सूँ चोळ करी दूरजोजन, जांतै को नांव न जाणू।
गरब करै ना गै'ला घड़मल! ओ थारो राज न जाणू।
राज दियो म्हे लूणकरण नै, गुरु गोरख परवाणू।

लंकापति रावण ने गर्व किया जिसको श्रीरामचन्द्रजी ने मार कर उसके सवल एव दुर्जेय गढ लका को नष्ट कर दिया। महारानी मदोदरी ने रावण को वहुत समझाया पर उसने रानी की बात की कोई परवाह नहीं की, इसीलिए रावण को अपने राज्य से ही नहीं वलिक अपनी देह से भी हाथ धोना पड़ा। रावण ने वनवासी तपस्वी-ऋषिमुनियों को सताया था और उसने उनके शरीर से रक्त निकाल लिया था, इसी रक्ताश के द्वारा उसका सर्वनाश हुआ।

भक्त प्रह्लाद ने राक्षस कुल में जन्म लेने पर भी कल्याण-स्वरूप भगवान् शकर को पहिचाना, इसीलिए वह पाँच करोड प्राणियों को अपने साथ लेकर मोक्ष-धाम को पहुँचा। जिसने अपने जीवन में सदा सर्वदा सत्य भाषण और शील-व्रत का ही अनुसरण किया वे महाराजा हरिश्चन्द्र सात कोटि प्राणियों को साथ लेकर स्वर्ग पहुँचे और भगवान् को प्रत्यक्ष पहचान ने वाले महाराजा युधिष्ठिर ने अपने सत्य-ज्ञान और भक्ति के वल पर नव करोड़ प्राणियों को मोक्ष का अधिकारी वनाया।

प्रत्येक युग में यशस्वी वनने वाले को 'भगवों वानों' अर्थात् वीतराग पुरुष को अपना हितैषी समझना चाहिए। हे पागल घड़सी। अभिमान मत कर यह राज्य तुम अपना मत समझ। गुरु गोरखनाथजी के 'प्रमाण' से यह राज्य हमने लूणकरण को दे दिया है।

तुम्हारी सन्तान पर बैठ जायेगी। सिद्धेश्वर की यह बात पड़सी तथा उसके कामदारों (मन्त्रियों) को बुरी लगी कामदारों ने व्यंग्यात्मक स्वर में पूछा— 'महाराज! आप इतने बड़े सिद्ध-पुरुष हैं तो बतलाइये हम पूर्व जन्म में कौन थे।" सिद्धेश्वर ने कहा— 'तुम पूर्व जन्म में चमार थे और जूता बनाने का काम करते थे विश्वास के लिए जाकर देखलो अमुक स्थान पर तुम्हारे जूता बनाने के औजार जमीन में गड़े हैं।" कहते हैं खोद कर देखा तो बात यथावत् निकली। इस बात से दुष्टात्मा पड़सी और भी चिढ़ गया और राज्याभिमान में बोला— "इस धरती के तो हम ही मालिक हैं अतएव बिना हमारी आज्ञा के तुम्हें यहाँ रहने का कोई अधिकार नहीं है।' तब सिद्धाचार्य ने दम्भी पड़सी को संबोधित कर यह 'सबद' कहा—

> इण धर राजा इन्द मणीजै, सो म्हाराज कुहाणू।
> राणा रावण आगळ हुआ, ज्याँ हँकार'उ न आणू।
> इण धर पर छै चकवा हुआ, ज्याँ कोई गरब न आणू।
> गरब कियो उण चकवै-चकवी, रैण विछोहो पाणू।

इस धरती का राजा तो इन्द्र कहलाता है वस्तुतः महाराजा कहलाने के अधिकारी भी वही हैं क्योंकि इन्द्र के द्वारा वर्षा करने से ही तो यह धरती उर्वरा होती है। राजा महाराजा तो इस पृथ्वी पर पहिले भी हुए हैं पर क्या उन्होंने कभी अभिमान किया था?

इस पृथ्वी पर पूर्वकाल में छै चक्रवर्ती सम्राट हो चुके हैं परन्तु उन्होंने किसी प्रकार का कोई अभिमान नहीं किया। गर्व किया था बस 'चकवे' और 'चकवी ने जिससे उस पक्षि-दम्पति को रात्रि वियोग का दुष्परिणाम भोगना पड़ता है।

की तरह ही बतलाया था। के इतिहास में खाळ वृक्ष का भी अपना राज्य प्रतीक माना। 'बीकानेरी राज्य' में तथा 'गंगाशाही' रुपए में खाळ वृक्ष अंकित है। महाराजा श्री गंगासिंहजी ने एक बार फरमान निकाला था कि समस्त सरकारी कार्यालय के सेवाओं में खाळ वृक्ष लगाया जाय और इसी उद्देश्य से लालगढ़ का राजमहल खाळ वृक्षों से घिरे हुए मैदान में बनवाया था।

जोग छतीसाँ और बतीसाँ, पैलाँ अन्त न पारा ।
से नर जाणै तहाँ पर वाणै, परलै धंधुकारा ।
माय न होंती बाप न हुँता, पूत नहीं परवारा ।
जामण मरण विछोह न होंता, ना कोई हेत पियारा ।
गिगन मण्डल में छतर न हुँतों, आभ न हुँता तारा ।
चन्द न सूर न पून न पाणी, न धरती गेणारा ।
सातुँ सायर औ न हुँता, नौसे नदी झलारा ।
अठकळ परवत औ न हुँता, वणी अठारै भारा ।
तंत न मंत न जड़ी न बूँटी, न दीसॅत दीदारा ।
चोये चकेनो ये खण्डे इक्कीसे विरमण्डे, एकै वचन उधारा ।

छत्तीसों प्रकार के योग और बत्तीसों प्रकार के साधन[1]— अन्त नहीं पा सकते, जिसने आत्मा को जान लिया है वही सब कुछ समझता है, अन्यथा सर्वत्र प्रलयकालीन अन्धकार ही है।

जब माता नहीं थी, पिता नहीं था, पुत्र और परिवार नहीं था, जन्म-मरण और वियोग नहीं था, न कोई स्नेही था न प्यारा, गगन-मण्डल में छत्र नहीं था, नभ में तारे नहीं थे, चन्द्र, सूर्य, पानी, धरती, आकाश इनमें से कोई नहीं था— और ये सातों समुद्र भी नहीं थे, नौ सौ नदियाँ भी नहीं थीं— अष्टकुली नाग और आठों पर्वत नहीं थे, अठारह भार वाली वनस्पतियाँ नहीं थीं, तन्त्र, मन्त्र, जडी-बूटी आदि कुछ भी दिखलाई नहीं पड़ती थीं— तब भी चतुर्दिक् नौ खण्डों और इक्कीस ब्रह्माण्डों में ॐकार रूप एक शब्द-ब्रह्म ही सबका आधार भूत था।

---

(१) 'जोग छतीसाँ' (३६+३२) अर्थात् ३६ और ३२ का योग अर्थात् ६८ तीर्थ भी जिसके भेद को नही पा सकते, यह भी अर्थ हो सकता है । ३६ (वाम मार्गी) और ३२ (दक्षिण मार्गी) संख्या मे इस प्रकार का कुछ तात्पर्य भी निकल सकता है ।

ऊनय नायाँ अनवी निवार्वां, करो उका मन माणू ।
तीन लोक रा नाथ मणीजाँ, थळसर रचियो थाणू ।
फाळंग मारी कुळ परतावाँ, निफळंग नावे कुहाणू ।
गुरु परसादे गोरख बचने, (भंदेव) जसनाथ (जी) असली ग्यान बखाणू ।

तुम्हारे मन में जो विचार उठ रहे हैं मैं उन्हें अच्छी प्रकार पहिचानता हूँ किन्तु तुम यह नहीं जानते कि हम धरा में नहीं माने पात्रों को भी अपने वशीभूत कर सकते हैं तथा नहीं झुकने वालों को भी झुका लेते हैं हम इस लोक के ही नहीं अपितु तीनों लोकों के स्वामी हैं पर अभी हमने 'थली' में ही अपना स्थान स्थापित किया है अतः निष्कलंक नाम को सार्थक करने के लिए ही कलंग राक्षस का मार कर कलियुग की समाप्ति करेंगे। मैं ऐसा वास्तविक ज्ञान गोरखनाथजी के वचनों में ही कथन करता हूँ।

पदमी के कलुषित हृदय में महाराज की यह बातें कोई परिवर्तन न ला सकी विपरीत पदमीजी को महाराज की इन बातों में गर्वोक्ति ही प्रतीत हुई। पदमीजी ने महाराज से कहा— अभी तो आपको जन्म लिए ही अधिक समय नहीं हुआ युवावस्था का तो प्राप्त हुए ही नहीं और तीनों लोकों के स्वामी बनने लगे। इस धरती पर तो एकमात्र हमारा ही अधिकार है हम ऐसी बातों से प्रभावित होने वाले नहीं हैं हमारे से कम वयस्क होने पर भी हमें उपदेश देता है।

सिद्धाचार्य ने पुनः निम्नांकित 'सबद' से पदमी को अपना आध्यात्मिक परिचय दिया—

सांभळ राय'र सांभळ राणा, सांभळ हिन्दू मुसळमाणा ।
सांभळ पढ़ पढ़ कराणा, उमत पाये आद उपाई
सांभळ जुग संसारा ।

हे राय ! सुनो, हे राणा ! सुनो सब हिन्दू मुसलमान सुनो— वेद शास्त्र व कुरान सब सुनो तथा संसार सुनो— आदि से विशाल सारी सृष्टि की रचना हुई है।

गजमल घड़िया बाजा बाजैं, लोह घड़्या चाम मँढाया
डुमा'ज ढोला, म्हारै गुरु रै, बाजा बाजैं बिन गज घड़ियाँ
बिन गज मँडिया बिन छिणमणियाँ बिन लाकड़ियाँ
घड़सी ! बाजण लाग्या बाजुँ ।
परसण' खंच्या बाजा बाजैं, सुरनर देव धियावो नाहीं
हिन्दू मुसळमान पिराणी, डर डर जिवड़ो काजुँ ।
रावाँ रंकाँ खाना खोजाँ, मलक फकीराँ सरब गरीबाँ ।
इतरा माथँ कूण बसेपो घड़सी, मरणै रो एको मागुँ ।
आवँतड़ो 'जी' के ले आयो, जावँत के ले जागुँ ।
अवँतड़ा दस मास लगाया, जाँता रतिय न लागुँ ।
पीपळ पान झड़ झड़ जासी, और भलेरा – लागुँ ।

हे घड़सी ! तुम लोगों के तो लोहनिर्मित, चमडे से मँढे हुए तथा डोमों के ढोल जैसे बाजे बजते हैं किन्तु हमारे गुरु के तो बिना किसी धातु से निर्मित बिना चमडे से मँढे हुए, बिना झींझ, मजीरा और बिना लकडी अर्थात् बिना डंडे के बाजे बजते हैं । हमारे वाद्य बादल जैसी ध्वनि करते हैं और उन प्राणियों के हृदय में सिहरन भी पैदा कर देते हैं जो तथाकथित हिन्दू और मुसलमान होने के दावेदार तो हैं परन्तु ईश्वराराधना से बहुत दूर रहते हैं ।

हे घड़सी ! राजा, रंक, सामन्त, सेवक, बादशाह, गृहस्थी, साधु, धनी और गरीब इन सबके मरने का एक ही रास्ता है, अर्थात् मृत्यु से कोई भी बच नहीं सकता। यह जीव जन्मते समय कुछ साथ नहीं लाया और न मृत्यु के समय कुछ साथ ले जा सकेगा । जन्म लेने में दस मास का समय लगा परन्तु जाने में क्षणभर का भी विलम्ब नहीं होगा ।

पतझड में जैसे पीपल के पुराने पत्ते गिर जाते हैं और वसन्त आने पर नये पत्ते प्रस्फुटित होते हैं, ठीक यही गति इस संसार की है ।

(१) पाठान्तर— घडहड = बादल । (२) ले चवरी चढ़ै दिस फेरी ।

अवरी पड़सी कोंसु पूछे जदरा देवाँ विचारा ।
आप अपंपर फेरी मनस्या, फेर रच्या ओतारा ।
म्है तो पड़सी अद ही हुँवा, मरतन्ता धंधुकारा ।
आप ही करता आपही भरता, आपही इस्ट विचारा ।
पाद अघोर समद पड़या है, किम विद लंघसी पारा ।
कळजुग में निकळ गी भमियाँ, थळ माथे ओतारा ।
गुरु प्रसाद गोरख वचने (श्रीदेव) जसनाथ (जी)
असली ग्यान विचारा ।

हे पड़सी ! तुम क्या समझ पाओगे— जितने देवता हैं सब विचार कर रह गये– आत्मा अपरम्पार है– उसने इच्छा की और सृष्टि की अवतारणा हुई । हे पड़सी ! जब प्रारम्भ में सर्वत्र अन्धकार था तब भी हम तो थे– आत्मा ही कर्ता हर्ता और इष्ट है– पाताल अथवा मंझल रूप अथाह समुद्र बीच में पड़ा है किस प्रकार तुम पार लगाओगे ?

रावण के तो थाही मायरा के अनुसार पड़सी के दम्भ भरने की सीमा नहीं रही । पड़सी ने सिद्धाचार्य से वाद विवाद करने में सीमोल्लंघन कर दिया । अतः सिद्धाचार्य ने पड़सी को यह सबद और कहा—

मकर भूख्या माथ पिराणी, काचै कान्दै गाजु ।
काचो कान्दो है कुमळाणो, ज्यूं तोड़योड़ो सागु ।
काचो कान्दो गळमळ जासी, पीसर जासी राजु ।

हे प्राणी ! तुम व्यर्थ ही छल और घमण्ड में भूल कर इस नश्वर शरीर में गर्जना करते हो । यह कच्चा शरीर एक दिन मुरझा जायेगा जैसे— तोड़ने पर हरा साग मुरझा जाता है । यह नश्वर-शरीर गल या जल कर नष्ट हो जायगा तब राज्य को तो भूलना ही पड़ेगा ।

गजमल घड़िया वाजा वाजैं, लोह घड़्या चाम मँढाया
डुमा'ज ढोला, म्हारै गुरु रै, वाजा वाजैं विन गज घड़ियाँ
विन गज मँडिया विन छिणमणियाँ विन लाकड़ियाँ
घड़सी ! वाजण लाग्या वाजु ँ ।
परसण' खंच्या वाजा वाजैं, सुरनर देव धियावो नाहीं
हिन्दू मुसळमान पिराणी, डर डर जिवड़ो काजु ँ ।
रावाँ रंकाँ खाना खोजाँ, मलक फकीराँ सरव गरीवाँ ।
इतरा माथँ कूण वसेपो घड़सी, मरणै रो एको मागु ँ ।
आवँतड़ो 'जी' के ले आयो, जावँत के ले जागु ँ ।
अवँतड़ा दस मास लगाया, जाँता रतिय न लागु ँ ।
पीपळ पान झड़ै झड़ जासी, और भलेरा — लागु ँ ।

हे घडसी ! तुम लोगों के तो लोहनिर्मित, चमड़े से मँढे हुए तथा डोमों के ढोल जैसे वाजे वजते हैं किन्तु हमारे गुरु के तो विना किसी धातु से निर्मित विना चमडे से मँढे हुए, विना झाँझ, मजीरा और विना लकडी अर्थात् विना डडे के वाजे वजते हैं । हमारे वाद्य वादल जैसी ध्वनि करते हैं और उन प्राणियों के हृदय में सिहरन भी पैदा कर देते हैं जो तथाकथित हिन्दू और मुसलमान होने के दावेदार तो हैं परन्तु ईश्वराराधना से बहुत दूर रहते हैं ।

हे घड़सी ! राजा, रक, सामन्त, सेवक, वादशाह, गृहस्थी, साधु, धनी और गरीव इन सवके मरने का एक ही रास्ता है, अर्थात् मृत्यु से कोई भी वच नहीं सकता। यह जीव जन्मते समय कुछ साथ नहीं लाया और न मृत्यु के समय कुछ साथ ले जा सकेगा। जन्म लेने मे दस मास का समय लगा परन्तु जाने में क्षणभर का भी विलम्ब नहीं होगा ।

पतझड़ में जैसे पीपल के पुराने पत्ते गिर जाते हैं और वसन्त आने पर नये पत्ते प्रस्फुटित होते हैं, ठीक यही गति इस ससार की है ।

(१) पाठान्तर— पडहड = वादल । (२) ले चवरी चहुँ दिस फेरी ।

करें तमेस् फिरे मकेरू, चोजुग फेरू पड़सीबी ओ
पाँतरियाँ बे मागु ।
रंगत् रीस् सीखो पाँखु', धारी काया कुमळाणी ज्यू सागु ।
कूकर मुगरो साग मणीजै, नागर बेली सागु ।
अन्तेवर-सा वासक नाग मणीजै, वाँठकियाँ बे नागु ।
एक'ज टोळो हँसा (रो) टोळो, बुगलाँ टोळो बागु ।
एक राग थी कानजी रागी, और बे रागे रागु ।
एक भी पाग दशासर बान्धी, और भी बान्धे पागु ।
एक भी खाग मे'रावण खागी, ओर बे खागे खागु ।
एक'ज पाज श्रीरामजी बान्धी, और भी बान्धे पाजु ।
हर रा हीदा हणमत मारया, और भी मारे मारू ।
एक भी लाज लाखणजी लाजी, निरे निराले निरे निरंजण ।

हे पड़सी ! चलते हो आप क्रोध से सने हुए बोलते हो और अभिमान में बैठकर चलते हो ऐसे पथ-भ्रष्ट प्राणी कुमार्ग पर ही अग्रसर होंगे। अच्छे गुण और शिक्षा का ग्रहण करो नहीं तो तुम्हारा यह शरीर हरे साग की तरह अलसा जायेगा।

दुर्गन्धयुक्त विपाक्त कुकर मोंगरा ही जब साग है तो फिर नागरबेल को क्या कहेंगे। अत्यन्त श्रेष्ठ वासुकि नाग ही वास्तव में सर्पराज कहलाने योग्य है फिर विषैले क्षुद्र सांपों को नाग क्यों कहा जाय। हंस तो हंस ही रहेंगे बगुलों के झुण्ड चाहे बगीचों में ही क्यों न दिखाई दें।

श्रीकृष्ण ने जैसी राग गाई क्या ! वैसी राग और कोई दूसरा गाने में समर्थ हो सकता है ? दशानन रावण ने जैसी पगड़ी बान्धी अभिमान से सर ऊँचा किया । क्या वैसी पगड़ी और भी कोई बान्ध सकता है ? अहिरावण ने जैसी तलवार उठाई थी वैसी क्या ! तलवार और भी कोई उठा सकता है ? श्रीरामचन्द्रजी ने जैसी सेतु बान्धी थी क्या । वैसी सेतु दूसरा कोई बान्धने में समर्थ हो सकता है ? जैसा कार्य हनुमानजी ने किया क्या ! वैसा अब और कोई कर सकता है ?

(१) पाठान्तर रवद् रेगु सेतु पांतु ।

एके आसण गोरख आगळ धंधुकारे, जुगाँ छतीसाँ और
बतीसाँ और बी लाजे लाजुँ ।
जम जरवाणू जरा जवर कंस, चंड्र रै निरदळिया दाणु
हर रै नांवं बिना रतिय न रै'लो राजुँ ।
रतिय न रै'लो राज, दाणू दैत सिंघारिया ।
जीतै किसनमुरार, दाणू भोभो हारिया ।
गुरु परसादे गोरख वचने, (श्रीदेव) जसनाथ(जी)
असली ग्यान उचारिया ।

लज्जा की मर्यादा का जैसा लक्ष्मणजी ने और सर्वथा निर्पेक्ष एव शुद्ध रह कर गोरखनाथजी ने इस प्रपचावृत कहे जाने वाले ससार में पालन किया क्या! लज्जा की वैसी मर्यादा और कोई रख सकता है?

महाबलशाली यमराज ने जरासन्ध, कस और चाणूर जैसे वलिष्ठदानवों का वध कर दिया। हे घडसी! फिर तुम जैसों की तो गिनती ही क्या! भगवान् के नाम विना रत्तीभर भी राज्य नहीं रह सकता। दानव-दैत्यों का तो सहार ही होगा। मुरारि श्रीकृष्ण की ही जीत होगी दानव तो जन्म जन्मान्तर में परास्त ही होंगे। गुरु गोरखनाथजी की कृपा से श्रीदेव जसनाथजी ने ऐसा ज्ञानोपदेश दिया।

यह सब सुनकर भी घड़सीजी किसी प्रकार का आध्यात्मिक लाभ न उठा सके और वे अपने साथियों सहित वीकानेर चले गए। वीकानेर जाने पर घडसीजी पागल हो गए— अपने स्थान पहुँचे तब तक उनको कोई सुधि नहीं रही, वे कभी घोड़ों पर जीन कसते कभी पुन उतारने लगते, यह क्रम कई देर तक चलता रहा। जब उनकी माता को यह सारा वृत्तान्त मालूम हुआ तो वह पुन घडसीजी को साथ लेकर कतरियासर आई और सिद्धाचार्य से घडसी के ठीक होने के लिए प्रार्थना की—"कोड़ गुनाह छारू करै, मेट करै माईत" हे महाराज! आप तो पिता के तुल्य हैं यद्यपि घड़सी ने अपराध किया है फिर भी आप मेरी विनीत प्रार्थना पर इसे कृपा पूर्वक क्षमा प्रदान

करें। सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी ने घड़सी को क्षमा दान दिया इस घटना से सम्बन्धित जसनाथी सिद्धों में यह 'सबद' प्रचलित है—

वेष निकळ गजी परगट्या, ओत लगाई नाथ।
गोरखनाथ आद का जोगी, जसवन्त धणी सदाई साथ।
भोळी दुनियाँ फिरै भटकती, औं घरां सू धाँधे बाद।
घड़सीजी नै पटा था'र ला, (बगस्या) लूणकरण नै दीन्यो राज।
गढ़ री नींव दीवि नारायण, पुन री बाँधीज्यो थे पाज।
करणी माता किरपा कर आया, देशनोक में थरप्यो थान।
करणीजी री सेवा कीज्यो, जसनाथजी रो धरज्यो ध्यान।
खटदरसण पर दया राखज्यो, औं थारां दरगा पावो मान।
परजा थारी सुख पावैली, इन्दर दे आवैलो गाज।
बीका थे जुगजुग करज्यो राज'।

(१) किंवदन्ति है कि–सिद्धाचार्य श्रीजसनाथजी ने लूणकरणजी को यह 'सबद' भी कहा था इस सबद' में वर्तमान समय का यथार्थ चित्रण मिलता है—

राजा न्याय धरम नहीं सूझै न्याव्यो न्याय लगाई।
रै'त बिचारी कुणने पुकारै कूण करै सुणाई।
जोर जबर तो चालै नाहीं, नहीं चालै नरमाई।
सूरवीर पंडित व्यौपारी, गुणी जन है भिकमाई।
चुगलखोर घुसखोर कपटी तेजी लगी है वाई।
स्वामी त्यागी जती सन्यासी, दरब फकीर गुसाई।
धन माया की लगी लालसा, फरसी पेट भराई।
विपर कह कोई विरला सीधा, हर पूजैगा नाहीं।
मन मतवाला भया सब भोगत एक सूँ एक सवाई।
दुनियाँ में कुण धरम चलावै किण विध हुवै भलाई।
नीयत धरम गया सब नासत राजा करमी भया कसाई।
भागूँ बाँध सुणाई।

सिद्धाचार्य और जाम्भोजी का सम्मिलन—

एक दिन 'समराथळ' के प्रसिद्ध सिद्ध तपोमूर्ति श्री जाम्भोजी महाराज की प्रगाढ इच्छा बाल सन्त सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी से कतरियासर आकर मिलने की हुई[1]। निश्चित् समय पर दो महान् सिद्ध-सन्तों के समागम का समाचार सत्सग-प्रिय जिज्ञासु सज्जनों में सर्वत्र पहुँच गया। अनवरत कल्याण के इच्छुक ऐसे सुअवसरों को अपने हाथ से नहीं जाने देते।

---

(१) जम्भेश्वर जसनाथजी, परमहँस वैराग।
सम्वत् पनरे सतावने, मिले सन्त वडभाग ॥

सिद्ध रामनाथ ने आगे लिखा है—

समरास्थल सु जभेश्वर आये, कतरियासर जसनाथ मिलाये।
मिलत प्रेम रस पार न पाये, दूध नीर सम सन्त सवाये।
वहु जन लोक भये इकठाई, दरसन से अघ दूर भगाई।
धिन धिन भाग साधु मिलताई, ढलती छाया ससि सवाई।
जभेश्वर कहे सुनो जसनाथी, वहु दिन से मिले मम साथी।
भानु उदेतम दूर भगाती, आशु वूंद मुक्ता कर स्वाती।
सिद्ध जसनाथ हमारे गुरुभाई, रिद्ध सिद्ध धर्म सदा उत्तमाई।
धिन धिन भाग तोरि सेवकाई, जो जसनाथ गुरु मिलताई।

जाभो कहे जसनाथ ने, मम गुरु गोरखनाथ।
गुरुभाई हम जानके, ताहि मिलायो हाथ ॥

जसनाथ कहे जभेश्वर भाई, विष्णु धर्म की राह चलाई।
जात जगत में झूठ दिखाई, कर्म तना फल भोग सदाई।
धर्म ज्ञान मुक्ति के हि दाता, श्रुति स्मृति सन्त सुर गाता।
भगती कर्म कर ज्ञान मिलाता, या विद वेद विधि गुण गाता।

सत गुरु शब्द सुचालते, दुष्ट जीव तरजाय।
जसनाथ कहे जभेसर, भगति रूप करताय।

चिरकाल तक मानव को मानवोचित गुण कर्मों में सलग्न रखती हैं। आगे चलकर ये ही गुण-कर्म मानव सस्कृति के नाम से माने एव पुकारे जाते हैं और ऐसी सुखद सस्कृति के एकमात्र जनक हैं भगवत्परायण सन्त। उन्हें स्वय अधिक कुछ भी अभिष्ट नहीं होता, क्योंकि वे सर्वत परिपूर्ण होते हैं। लोक-कल्याण के निमित्त वे स्वय आचरण करके लोगों को शिक्षा देते हैं।" इन्हीं उपरोक्त गुणों और कर्मों से समाहित जीवन सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी का था।

श्री जाम्भोजी महाराज तो देशाटन प्रिय भी थे, पर श्री जसनाथजी को एकासनस्थ रहना ही अभीष्ट था। श्री जसनाथजी के "सबदों" में भी "पै'ला आसण दिढक रहैला, से पूरा परवाणी" अर्थात पूरा प्रमाणित तपस्वी तो वही है जो पहिले अपने आसन पर दृढ़ रहेगा। इन्हें घूम घूम कर उपदेश देने की आवश्यकता नहीं थी क्यों कि इनके दिव्य-ज्ञान का प्रभाव स्वच्छाकाश की भाँति सर्वव्यापक था। सिद्धों का प्रभाव-क्षेत्र उनकी मनोवृत्ति पर निर्धारित रहता है। सृजन और दर्शन इन दोनों ही में इनकी सहज गति होती है। ऐसी गति के लिए इन्हें कोई वाह्य प्रेरणा-स्रोत की आवश्यकता नहीं, वे तो स्वय ही प्रणेता होते हैं। अस्तु।

श्री जाम्भोजी ने कतरियासर यात्रा के लिए तैयारियाँ आरम्भ करदीं। अधिक समय नहीं लगा, सभी लोग सात्विक साज-बाज के साथ तैयार हो गये। गुरु-भक्तों ने विनीत हो आग्रह पूर्वक रथ को सुसज्जित कर महाराज के समक्ष प्रस्तुत कर दिया। इसी वेला को शुभ मुहूर्त समझ कर श्री जाम्भोजी रथ में विराजमान हो गये। सारथी का काम उनके शिष्य ऊदोजी ने किया। श्री जाम्भोजी के रथ को उत्तम 'नागोरी बैलों' की जोड़ी ने खींचा। सारथी ऊदोजी के चातुर्य ने तो बैलों को द्विगुणित गति प्रदान की। धवल धोरी गोपुत्रों ने अपनी सहज गति से रथ को खींचते हुए दुर्गम रेतीले टीलों, बालू के मुलायम मैदानों, समतल 'डेरियों' सम-विषम विशाल जगलों और अनेक गाँवों को चलचित्र की भाँति पीछे छोड़ते हुए कुशल सारथी के सकेता-नुसार प्रथम विश्राम 'बमलू' ग्राम में किया।

पुण्यधाम कवरियासर और तपोनिष्ठान 'समराथल' में दूरी का अधिक अन्तर नहीं है। यदि हो भी तो भक्तजन कण्टकाकीर्ण बीहड़ मार्ग की लम्बीयात्रा में किंचित् मात्र कष्ट की अनुभूति नहीं करते। मनुष्य-जीवन की वास्तविक सार्थकता की कुंजी एकमात्र सत्संग में ही तो उपलब्ध होती है। अतः दोनों ओर के भावुक भक्तजनों का कवरियासर के पुण्य क्षेत्र गोरख माळिये पर जमघट लगना प्रारम्भ होगया। गोरख-माळिये के तपोमय आध्यात्मिक शान्त वातावरण में सभी शान्त एवं प्रसन्न चित्त दिखाई देने लगे।

सिद्धनाथ की स्वर्णिम लम्बी लम्बी केशावलि देदीप्यमान मुखाकृति सुगठित शरीर, बड़ी बड़ी सुहावनी आँखें और मन्द मन्द मुस्कान देखने वाले को स्वतः ही अपनी ओर आकर्षित कर लेती थी। जाळ वृक्ष की सुशीतल छाया में बैठकर जिज्ञासु भक्तजनों के साथ साथ कामी क्रूर और अहमी जन भी शान्त तथा निश्चल भाव से मार्मिक होने पर भी प्रिय तथा हितकर प्रवचन श्रवण करते थे। तात्कालिक परिस्थिति में जन-जीवन के अभ्युत्थान के लिए इनके उपदेशों के अतिरिक्त अन्य कोई सुखद अवलम्बन नहीं था।

जिज्ञासु एवं विशुद्धान्तःकरण वाले भक्तों को यथेष्ट लाभ पहुँचाने के लिए सन्त-हृदय सदा लालायित रहता है ! मर्त्य मर्यादारी लोकोत्तर विभूतियाँ इसीलिए इस वसुन्धरा पर अवतीर्ण होती हैं और अपनी सामान्य-मंगलमयी प्रतिभा के विकास द्वारा वे मानवों के दुर्गम पथ को आलोकित कर उसे सुगम बनाती हैं।

एक अनुभवी सन्त के वचनों में—"ऐसे दिव्यपुरुष भगवत्-स्वरूप या ईश्वर के प्रतिबिम्बरूप में ही अवतरित होते हैं। अतः ज्ञान कर्म तथा भक्ति के वे ही एकमात्र प्रवर्तक हैं। जब कर्मों की शिथिलता, ज्ञान का लोप भक्ति का विनाश और तज्जनित संताप को बढ़ता हुआ देखते हैं तब जहाँ जैसे स्वरूप की जरूरत होती है वहाँ वैसे ही स्वरूप में प्रकट होकर सर्व कल्याणप्रद भगवान् उन दिव्य तत्त्वों को पुनर्जागृत कर, विक्षिप्त एवं संतप्त मानव-मानस को शान्ति प्रदान करते हैं। भगवान् की ये दिव्य लीलाएँ

सारथी ऊदोजी का मन आश्चर्य के अथाह सागर में डूबने लगा। उन्होंने रास को खींचते हुए नीचे उतर कर देखा तो रथ निश्चय ही तिल भर भी आगे नहीं बढ पाया था।

रथ से नीचे उतर कर श्री जाम्भोजी ने कहा— "मैंने चलते समय विनोदभाव से ही श्री जसनाथजी की सिद्धि के परीक्षण की भावनामात्र की थी, उसी के फलस्वरूप यह अघटित घटना हुई है, जिससे हम सब लोग मर्यादित हो जाय। पुण्य-भूमि गोरखमाळिये के सामने रथादि में बैठ कर चलना हमारा दुराग्रह मात्र था। वास्तव में इस विलक्षण घटना ने हमें उचित स्तर पर ला दिया[1]। और हमारे हृदय पर एक अलौकिक शक्ति की छाप लगादी।

इतने में हारोजी, श्री जाम्भोजी के स्वागतार्थ आगये। हारोजी ने विनय पूर्वक "ॐ नमो नम" कह कर श्री जाम्भोजी का अभिवादन किया तथा समस्त मण्डली को आदर पूर्वक कतरियासर में लाकर विश्राम करवाया। कुछ समय बाद हारोजी ने पूछा— "आपके लिए कैसी भोजन-व्यवस्था करवाई जाय" प्रत्युत्तर में श्री जाम्भोजी के शिष्य ऊदोजी ने कहा— "हमारे गुरु तो एकमात्र वाताहारी (हवा-भक्षी) हैं। कहिये, आपके गुरु क्या सेवन करते हैं?" हारोजी ने सरलता पूर्वक कहा "हमारे गुरु महाराज तो भस्म (विभूति) मिश्रित थोडा सा दूध लेते हैं।' ऊदोजी ने मुँह-नाक सिकोडते हुए उपेक्षा भाव से कहा— "तब तो कुछ नहीं।" हारोजी को ऊदोजी का यह व्यवहार अच्छा नहीं लगा। अतिथि का यथा-सम्भव आदर सत्कार करना हमारी सनातन संस्कृति है पर वैसे ही अपने सद्गुरु के प्रति उपेक्षा-भाव को न सहन करना भी।

हारोजी ने श्री जाम्भोजी एवं उनकी मण्डली के यथास्थान डेरे लगवा कर स्वयं श्री जसनाथजी की सेवामें उपस्थित हो गये। हारोजी ने सिद्धाचार्य के प्रति सारी बातें निवेदन करदीं। बिना किसी भाव परिवर्तन के सिद्धेश्वर ने कहा— "हरमल! कल प्रात तुम्हें ज्ञात हो जायगा कि वे हवा-भक्षी हैं या अन्न भक्षी।

(१) यह स्थान अब तक 'जाम्भाथळ' के नाम से पुकारा जाता है।

समस्त ग्राम के निवासियों को जब यह ज्ञात हुआ कि श्री जाम्भोजी महाराज सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी से मिलने के लिए कतरियासर पधार रहे हैं, तो उन्होंने जाम्भोजी महाराज का बड़ा आदर सत्कार किया। ग्राम वासियों ने संत मण्डली एवं भक्त-समुदाय के लिए यथा विधि भोजन-व्यवस्था की। भोजन और विश्राम कर लेने के पश्चात् समस्त-समुदाय ने वहां से प्रस्थान किया।

श्री जाम्भोजी ने रथ में बैठते हुए कहा— 'समीप ही है अभी स्वल्प-काल में ही कतरियासर पहुँच जाते हैं और बाल-मूर्ति के बढ़ते हुए प्रबल प्रताप का देख लेते हैं।" किसी एक ने कहा – महाराज ! आपके सामर्थ्य के सामने उनकी क्या सिद्धि चल सकेगी ? श्री जाम्भोजी ने उत्तर दिया हाँ ! यही तो देखना है ! अब विलम्ब नहीं करना चाहिए भगवान् भास्कर अस्ताचल की ओर अग्रसर हो रहे हैं। दिन रहते ही हमें वहाँ पहुँच जाना चाहिए जिससे सन्ध्या काल का अतिक्रमण न हो।

ऊदोजी ने रथ को द्रुतगति से चलाया कि बात की बात में तीन कोस की दूरी पार की। यहाँ से कतरियासर केवल एक कोस ही है। रेत का ऊँचा टीला होने के कारण कतरियासर सामने स्पष्ट दिखाई पड़ने लगा। यहाँ आकर थोड़े समय के लि ये लोग रुक गये। जब पीछे रहे हुए सब लोग इनके साथ मिल गये तो पुन: आगे प्रस्थान हुआ। अभिमानी ऊदोजी ने उत्साह पूर्वक रथ का अति तीव्र गति से हाँका और वह बड़े वेग से चलता हुआ दिखाई पड़ा मानों आकाश मार्ग से हवा में ही उड़ रहा हो। बैलों की पद-ध्वनि और रथ-कम्पन से तथा बैलों का श्वासोच्छ्‌वास बढ़ जाने से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि रथ सचमुच तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है पर था बिल्कुल विपरीत कि रथ अपने स्थान से एक अंगुल भी आगे नहीं बढ़ सका। रथ की द्रुतगति चक्रों का धूरी में घूमते हुए पीछे की ओर धूलि फेंकना और बैलों का श्रान्त होना यह सब था एकमात्र भ्रम। यह क्रम काफी समय तक चलता रहा मिट्टाम रास्ते में कोई भाड़ न देख पूर्णो, लताओं तथा अन्य दृश्यों के साथ साथ कतरियासर उसी रूप में उतनी ही दूरी पर देखकर

दोनों महापुरुषों के उच्चासनों पर विराजने के पश्चात् यज्ञ प्रारम्भ हुआ। यज्ञ की पुनीत-ज्योति के दर्शनों का लाभ–प्राप्त कर उपस्थित श्रद्धालु-भक्तों का हृदय आनन्द-विभोर हो उठा। श्रद्धालु लोग यज्ञ के निमित्त जो गो-घृत अपने साथ लाये थे उसे एक एक करके यज्ञ-वेदी के निकट संस्थापित घृत–पात्र में उडेलने लगे। इस प्रकार अनायास ही मनों घृत एकत्रित हो गया। अपने सद्गुरु के पास गृहस्थी लोग खाली हाथ जायें यह शास्त्र सम्मत नहीं। 'पत्र पुष्पम्" जो उनसे बन पडता है, वे प्रेम सहित सात्त्विक भाव से उनके अर्पण कर अपना अहोभाग्य मानते हैं। निस्पृही, वीतराग महापुरुषों के समक्ष सांसारिक पदार्थों की कोई गणना नहीं किन्तु लोकोपकारी कृत्यों के लिए तो उनका प्रेरणास्रोत सदा बहता ही रहता है।

इन ग्रामवासियों के पास निष्कपटता, सरलता, सदाचार और हार्दिक प्रेम के अतिरिक्त है ही क्या? ये कलिक्लान्त कुपथगामी नहीं हैं और अपने एकमात्र प्रेमास्पद गुरु के इङ्गित पर प्राणोत्सर्ग करने को भी तत्पर हैं। सत्संग–सरिता में अवगाहन करते करते ये पूर्णपरिष्कृत हो चुके हैं। सहस्रपुटित धातु के स्थायी चमत्कार की भाँति इनकी अपूर्व आध्यात्मिक-शक्ति भी स्थायी हो गई है। इसी के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वर्तमान में भी लाखों लोग इनके धर्म-नियमों का पालन कर, मानव लक्ष्य की प्राप्ति की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

आगन्तुक जन-समुदाय में सबका एक जैसा दृष्टिकोण नहीं है। उनमें कुछ लोग सात्त्विक–भाव से दर्शनार्थ आए हैं। कुछ उनकी पारस्परिक वार्तालाप का आनन्द–लाभ करने तथा कुछ लोग कौतूहल वश ही यहाँ आकर एकत्रित हो गए हैं। जो श्रद्धालु जिज्ञासु हैं उनका ऐसा भाव है—"इस दुस्तर भवसागर से पार होने के लिए एकमात्र सन्त ही तो वे जहाज हैं जो भयंकर झंझावात से संघर्ष करते हुए उस पार, प्रियतम की नगरी के निकट उतार देते हैं जहाँ की मनोरम-सुषमा प्रियतम से मिलाने के लिए सहस्र हाथ आगे बढकर उसका पुनीत स्वागत करती है। इस निष्कटक साम्राज्य में किसी अन्य का हस्तक्षेप नहीं है। उस सत्त्वमय एकछत्र-राज्य की शरण में चले जाने के पश्चात् वह स्वयं शासक के रूप में परिणित हो जाता है।"

दूसरे दिन प्रातःकाल जब हारोजी श्री जाम्भोजी के डेरे पर गए[1] तो देखा कि ऊदोजी श्री जाम्भोजी को भोजन करा रहे हैं। इस प्रकार जाम्भोजी का अन्नोपभोग (भोजन) करते हुए देखकर हारोजी को बड़ा आश्चर्य हुआ! क्योंकि पहले दिन ऊदोजी द्वारा अपने गुरु को एकमात्र "हवा-भखी" बतलाकर श्री जसनाथजी के विभूति-मिश्रित दुग्ध-सेवन की मुँह-नाक सिकोड़ कर बड़ी भर्त्सना की गई थी। आज इस प्रत्यक्ष अवस्था को देख कर हारोजी समझ गए कि ऊदोजी व्यर्थ ही मुझे वैसा कह कर प्रभावित करना चाहते थे किन्तु ऐसा व्यापार सन्त-शिष्यों के लिए कहाँ तक शोभनीय है! कहा नहीं जा सकता। संभव है ये सब कुटिल चालें सिद्धराज की परीक्षा के लिए चली गई हों या कुटिल अहंभाव ने ही ऐसा करने के लिए ऊदोजी को प्रेरित किया हो।

हारोजी ने श्री जाम्भोजी को विनीत भाव से गोरखमालिये पधारने के लिए निवेदन किया। "ॐ विष्णु विष्णु" कहते हुए श्री जाम्भोजी गोरख मालिये की ओर चल पड़े। गोरखमालिये पहुँचने पर राजस्थान की इन दोनों विभूतियों ने परस्पर गल-बहियाँ डाल कर 'ओ३म् नमो नम' ओ३म् नमो आदेश की ध्वनि के साथ प्रेमालिंगन किया। उस समय के अपूर्व एवं अलौकिक दृश्य का वर्णन करने में जन-जिह्वा तथा कोरे की लेखनी समर्थ नहीं। इस भाव गम्य दृश्य व चित्र को मूर्तरूप देना क्लिष्ट ही नहीं अपितु असम्भव प्रतीत होता है।

(१) जन कथा के रूप में यही वार्ता इस प्रकार प्रचलित है— सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी ने हारोजी को बिलाव बनाकर जाम्भोजी के डेरे पर भेजा उस समय जाम्भोजी जमीन में गड्ढा खोद कर उसमें बैठे भोजन कर रहे थे। "बिलाव रूप" हारोजी ने 'माऊँ! माऊँ!!' की आवाज लगाई जाम्भोजी ने ऐसा जान कर कि बिलाव भूखा है "चूरमे" का एक लड्डू खाने को दिया। वह लड्डू तथा जाम्भोजी के पहनने की धोती बिलाव रूप हारोजी गोरख मालिये पर ले आये। धोती इसलिए लाये कि ऊदोजी के कथनानुसार जाम्भोजी की धोती आकाश में अदृश्य रूप से सूखती थी। समय पर वह लड्डू तथा धोती जाम्भोजी को दिखाई

दोनों महापुरुषों के उच्चासनों पर विराजने के पश्चात्, यज्ञ प्रारम्भ हुआ। यज्ञ की पुनीत-ज्योति के दर्शनों का लाभ-प्राप्त कर उपस्थित श्रद्धालु-भक्तों का हृदय आनन्द-विभोर हो उठा। श्रद्धालु लोग यज्ञ के निमित्त जो गो-घृत अपने साथ लाये थे उसे एक एक करके यज्ञ-वेदी के निकट संस्थापित घृत-पात्र में उडेलने लगे। इस प्रकार अनायास ही मनो घृत एकत्रित हो गया। अपने सद्गुरु के पास गृहस्थी लोग खाली हाथ जायँ यह शास्त्र सम्मत नहीं। 'पत्र पुष्पम्" जो उनसे बन पड़ता है, वे प्रेम सहित सात्त्विक भाव से उनके अर्पण कर अपना अहोभाग्य मानते हैं। निस्पृही, वीतराग महापुरुषों के समक्ष सांसारिक पदार्थों की कोई गणना नहीं किन्तु लोकोपकारी कृत्यों के लिए तो उनका प्रेरणास्रोत सदा बहता ही रहता है।

इन ग्रामवासियों के पास निष्कपटता, सरलता, सदाचार और हार्दिक प्रेम के अतिरिक्त है ही क्या? ये कलिक्लान्त कुपथगामी नहीं हैं और अपने एकमात्र प्रेमास्पद गुरु के इङ्गित पर प्राणोत्सर्ग करने को भी तत्पर हैं। सत्संग-सरिता में अवगाहन करते करते ये पूर्णपरिष्कृत हो चुके हैं। सहस्रपुटित धातु के स्थायी चमत्कार की भाँति इनकी अपूर्व आध्यात्मिक-शक्ति भी स्थायी हो गई है। इसी के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वर्तमान में भी लाखों लोग इनके धर्म-नियमों का पालन कर, मानव लक्ष्य की प्राप्ति की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

आगन्तुक जन-समुदाय में सबका एक जैसा दृष्टिकोण नहीं है। उनमें कुछ लोग सात्त्विक-भाव से दर्शनार्थ आए हैं। कुछ उनकी पारस्परिक वार्तालाप का आनन्द-लाभ करने तथा कुछ लोग कौतूहल वश ही यहाँ आकर एकत्रित हो गए हैं। जो श्रद्धालु जिज्ञासु हैं उनका ऐसा भाव है—"इस दुस्तर भवसागर से पार होने के लिए एकमात्र सन्त ही तो वे जहाज हैं जो भयंकर झंझावात से संघर्ष करते हुए उस पार, प्रियतम की नगरी के निकट उतार देते हैं जहाँ की मनोरम-सुषमा प्रियतम से मिलाने के लिए सहस्र हाथ आगे बढ़कर उसका पुनीत स्वागत करती है। इस निष्कंटक साम्राज्य में किसी अन्य का हस्तक्षेप नहीं है। उस सत्त्वमय एकछत्र-राज्य की शरण में चले जाने के पश्चात् वह स्वयं शाश्वत के रूप में परिणित हो जाता है।"

जसनाथी सिद्धों में यह कथा इस प्रकार प्रचलित है कि "हमीरजी ने श्री जाम्भोजी को आग्रहपूर्वक निवेदन किया कि वे कतरियासर जाकर उनके इकलौते पुत्र (श्री जसनाथजी) को समझावें। क्योंकि वे परिवार त्याग कर विरागी हो गये हैं। श्री जाम्भोजी का कतरियासर जाने का यही अभिप्राय था। किन्तु यह बात निःसन्देह रूप से स्वीकार नहीं की जा सकती। क्योंकि 'सिद्ध रामनाथ" ने इनके मिलने का समय विक्रम सं० १५५७ में निश्चित किया है। यदि यह समय सही माना जाय तब तो सिद्धाचार्य को दीक्षित हुए सात वर्ष का लम्बा समय व्यतीत हो जाता है। इस काल में सिद्धाचार्य द्वारा अनेक आलौकिक चमत्कृतियाँ प्रकट की जा चुकी थी तथा इनका सुयश और ख्याति का आलोक मरुधरा के दशों दिशाओं में देदीप्यमान हो चुका था। ऐसी स्थिति में उक्त प्रसंग इस प्रकार हुआ हो यह जचता नहीं। किन्तु इस प्रसंग की सर्वथा उपेक्षा भी नहीं की जा सकती क्योंकि इस घटना से सम्बन्धित सिद्धाचार्य द्वारा निम्नांकित सबद' श्री जाम्भोजी के प्रति प्रश्नोत्तर रूप में कथन किया गया है। श्री जाम्भोजी ने श्री जसनाथजी से अनेकों प्रश्न किये तथा ऐसी गर्वोक्ति भी प्रकट की कि मैं स्वयं श्रीकृष्ण हूँ" ऐसा भाव इस 'सबद' से प्रकट होता है।

वेदान्त सिद्धान्तानुसार प्राणीमात्र ईश्वर का स्वरूप है। फिर विशिष्ट सन्त-पुरुष तो साक्षात् नारायण स्वरूप हैं ही। अतः श्री जाम्भोजी तथा सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी साक्षात् भगवत-स्वरूप हैं किन्तु समकक्ष सन्त के समक्ष श्री कृष्णावतार होने की गर्वोक्ति प्रकट करना श्री जाम्भोजी के लिए कहाँ तक उचित था ? कहा नहीं जा सकता। जाम्भोजी श्री कृष्ण है तो क्या सिद्धाचार्य श्रीकृष्ण स्वरूप नहीं है ? एक ही श्रेणी के तथा एक समान धर्म सिद्धान्तों के प्रतिपादक पारस्परिक मिलन के मध्य ऐसी गर्वोक्ति मिथ्या अहंभाव हो तो प्रकट करती है। इसका समाधान वक्रोक्ति द्वारा ही हो सकता था यही आभास सिद्धाचार्य के इस 'सबद' से प्रकट होता है।

सरब सिनानी सुरनर भणिये, देव री सीस जटा मुकळाई ।
मेळ मिलागर गढ़ उदियागर, गढ़ छै लॅक विलँका चक
चोफेरी खाई ।
गोरखनाथ जुँगा लग बावो, मनस्या नितलग माई ।
जाप्रत आप चतुरभुज ईसर, देवजी ! जुग २ री गै'लाई ।
गै'लै होय'र ईसर बावै, घणी घणी बरताई ।
हू लटियाळो कान गिंवाळो, जिण आ सिष्ट पपाई ।
वुध हुँता पांचू पाण्डु राख्या, कैरू किया छाँई ।
जो जम्भेसर कान कुहावो, खतियाँ केथ मुँडाई ।

सदा शुद्ध निर्मल रहने वाले तो बड़े २ देवता और जटाधारी मुनि जन हैं, और आपके तो सिर पर जटा भी नहीं है। मलयाचल, उदयाचल जैसे उच्च गिरिशिखरों और विलक्षण गहरी खाइयों से आवृत लंका जैसे दुर्भेद्य गढ़ों के समान ब्रह्मरन्ध्र में आत्मा के साथ मनोवृत्तियों का समाधि द्वारा ही मेल अर्थात् निवास होना सम्भव है और ऐसा करने वाला ही वस्तुत नित्य स्नानी कहलाने का पूर्ण अधिकारी है। आप चतुर्भुज विष्णु का जप करते हैं और मैं शिव का, जो युग युगों तक सृष्टि के प्रत्येक काल में व्यापक हैं। सभी युगों में रहने वाले अविनाशी इष्टदेव गोरखनाथ ही मेरे बाबा हैं, उन्हीं में मेरी नित्य मनोवृत्ति लगी रहती है।

मेरे आराध्यदेव सदा शिव भोले भण्डारी हैं जो लोगों पर बहुत बहुत कृपा करते रहते हैं और श्रीकृष्ण की क्या महिमा गाऊँ वह सुन्दर बालों वाला है, जो केशव के नाम से भी प्रसिद्ध है, गोपालक है और इस सृष्टि का रचयिता है।

उन्होंने बुद्धिमान् और धर्मपरायण पाण्डवों की रक्षा कर पापी कौरवों का नाश किया। आप यदि वही श्रीकृष्ण हैं तो मैं आपकी क्या समानता कर सकता हूँ। परन्तु हे जम्भेश्वर। आप सचमुच ही श्रीकृष्ण कहलाते हैं तो कहिए आपने सिर क्यों मुँडवा लिया? श्रीकृष्ण तो 'लटियों' वाले केशव हैं।

कानजी (रे) सायें राई रुखमण हुँता, ज्यांने कठे गमाइ।
माँझी काया जोत अगाधो, (तो) थानें देवां वदाई।
एकण हुँता अणत उपावो, अणतो अणत उपाई।
काळ ँग मारो कुळ परतावाँ, निफळँग नाथ कुहाई।
गुरु परसाद गोरख धवने, (श्रीदेव) जसनाथ(जी) सुणाई।

श्री कृष्ण के साथ तो महारानी रुक्मणी रहती हैं। उसका आप कहाँ लाए आप ? भगवान् कृष्ण तो जैसे एक से अनेक हो जाते हैं उस से अदृश्य हो जाते हैं और जहाँ सघन अन्धकार छाया हुआ रहता है वहाँ दिव्य प्रकाश फैला देते हैं उसी प्रकार आप भी अपनी क्षण-भङ्गुर काया का मोह न रखते हुए अद्भुत ज्योति जगाएँ तब आप प्रशंसा योग्य हैं।

श्रीकृष्ण एक होते हुए भी अनेक जगह प्राप्त होते हैं, अनेकों रूप धारण करते हैं और अणु से अणु अर्थात् सूक्ष्म से सूक्ष्म बन जाते हैं। काल को मारने वाले हैं प्रत्येक स्थान में व्यापक हैं और निष्कलंक कहलाते हैं आप भी ऐसे ही श्रीकृष्ण बनो तब आपकी प्रशंसा है।

श्री जाम्भोजी पूर्णतया समझ गए कि श्री जसनाथजी जन्मजात योगेश्वर हैं। अब जाम्भोजी और उनकी मण्डली की छिद्रान्वेषणी मनोवृत्ति ध्वस्त हो गई। श्रद्धा और सौहार्द के स्वच्छ गगन में गुण-गरिमा की स्फुट उड़ान भर भर कर सभी सुख का अनुभव करने लगे।

आगन्तुक भक्त-मण्डली भी धर्म-दर्शन सम्बोधोपदेश-श्रवण कर तथा सिद्ध सन्तों को नमस्कार कर अपने अपने गन्तव्य स्थान की ओर चल पड़ी।

षष्ठ अध्याय

सिद्धाचार्य एवं महासती काळलदे का समाधिस्थ होना

एक दिन 'गोरख माळियै' पर बैठे हुए सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी ने हारोजी से कहा- "हरमल ! अब मेरा समाधिस्थ होने का समय आगया है। जिस कार्य-सिद्धि के लिए मैं इस पृथ्वी पर अवतरित हुआ था वह कार्य प्राय इस देह से सम्पन्न हो चुका है। अब मुझे अधिक समय प्रकट रूप में नहीं रहना है।[1] इसलिए तुम चूड़ीखेडा जाकर महासति काळलदे[2] को मेरा यह सन्देश पहुचादो।"

सिद्धाचार्य ने हारोजी को साक्षी रूप 'माला' देते हुए कहा- "इसे देख कर सती काळलदे तुम्हारे साथ यहाँ आ जायेगी।"

परम गुरु सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी की आज्ञा शिरोधार्य कर एव उन्हें 'ओंनमों आदेश' अभिवादन कर हारोजी चूड़ीखेडा की ओर चल पड़े[3]।

---

(१) सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी इस समय तक अपनी आयु के २३ वर्ष ११ महीने और कुछ दिन व्यतीत कर चुके थे।

(२) सिद्धाचार्य का सती काळलदे से १० वर्ष की अवस्था में ही 'सगाई-सम्बन्ध' हो चुका था। सिद्धाचार्य के योगी होने पर भी सती काळलदे ने अन्य सम्बन्ध स्वीकार नही किया, इसी प्रकार सती काळलदे की बहिन सती प्यारलदे का किसी के साथ 'सगाई सम्बन्ध' भी नहीं हुआ। इन सतियों की आश्चर्यजनक चमत्कारो की चर्चा सर्वत्र फैली हुई थी। अत इनके साथ सम्बन्ध करने का दुस्साहस भी कौन कर सकता था ? काळलदे जैसी सती के लिए सिद्धाचार्य जैसा वर ही उपयुक्त था।

(३) यह घटना 'सिद्धजी रो सिरळोको' की निम्नलिखित कड़ियों में भी वर्णित है —

चूडी खेडै में सती विराजै

इस घटना से संबन्धित जसनाथी सिद्धों में 'कड़ा' नाम के पद्य प्रचलित हैं। जिनसे इस विषयक इतिहास का बोध भली प्रकार होता है—

हरमल हीई हालिया, मेल्या निकळंग पाव ।
हरख उमावो मन घस्यो, हरमल हाल्या वात ।।
हुकमी गुरु जसनाथ रा, अलख गुरां री छाप ।
पवन सरूपी हुय धरया, (हरमल) जाय पहूँता आप ।।
हरमल (नै) परतक देखतां, परसण काळल मात ।
सतियां सेवग ओळख्या, मस्तक मेल्या हाथ ।।
कहो सै'नाणी हरा देवरी, कहो कायम री बात ।
किण पारे हरा रम रहा, कहो हरा ! कुसळात ।।

निष्कलंक पति (श्री जसनाथजी) का भेजा हुआ हरमल उनके आदेश की पूर्ति के लिए चला। हारोजी हर्ष से उमंगित हो चले जा रहे हैं।

हारोजी गुरु जसनाथजी के आज्ञाकारी हैं (उन पर) अलख गुरु की छाप लगी है। हारोजी पवन-स्वरूप हो अर्थात् पवन गति से वहां (चूरी खेड़ा) जा पहुँचे।

हारोजी को प्रत्यक्ष देखकर मातेश्वरी काळलदे बहुत प्रसन्न हुई और हारोजी को पहिचान कर सती ने सेवक (हारोजी) के सिर पर (आशीर्वादात्मक) हाथ रखा (और) पूछा हे हारा! देव (श्री जसनाथजी) की निशानी (पहिचान) कहो मेरे आराध्य देव की बात कहो।

नाम अलखरे सनमुख साजै
श्री गुरुनाथ रा हुकम'ज आया
श्री जसनाथजी दया दरसाया
सुणतां सतीजी सीस नैंवायो
मेरै नाथ रो सनेसो आयो
नाथपति रो नाँव सुणायो
आप धीसन सुत सामी रा जगा
मारै साजन रो सनेसो पूगा

हे हरमल ! वे कौन से सुरम्य तट पर क्रीडा कर रहे हैं अर्थात् उनके ज्ञानयोग की क्या स्थिति है, उनकी कुशल-मगल कहो !

तब हारो जी ने सती के समक्ष निवेदन किया —

एका आसण माता ! देव जी, भजन करैं दिन रात ।
बैठा गोरख माळियै, भळकतै दीदार ।
तिलक चनरमाँ भळहळै, सीस मुकुट गँगधार ।
सदा हजूरी स्याम रै, पाँडु पोह दुवार ।
दरसण आवैं देवता, ईसर रै दरबार ।
सिद्ध चौरासी, नाथ नौ, गोरख जोग विचार ।

हे माता ! श्री देव (जसनाथ जी) 'गोरख माळियै' पर एकासनस्थ हो निरन्तर भजन करते हैं, (उनकी मुखाकृति) तपोतेज से देदीप्यमान हो रही है, (उनके ललाट पर) चन्द्रमा के समान तिलक चमक रहा है और सिर पर जटा-मुकुट गगा की धारा के समान सुशोभित है अर्थात् वहा ज्ञान-गगा वह रही है। पाण्डव उनके द्वार पर पहरा दे रहे हैं। ईश्वर (श्री जसनाथ जी) के दरबार (गोरख माळियै) मे देवता लोग (उनके) दर्शनार्थ आते रहते हैं। नवनाथ, चौरासी सिद्ध (एव) गुरु गोरखनाथ जी (वहा) योग का विचार करते रहते हैं।

सारै सतॉ नै आसीसाँ दीवी
भला नाथजी किरपा सत कीवी
जती सती रो अवचळ जोडो
सत छूटॉ तो पडैलो फोडो
मेळू वीग थे रथ सिणगारो
कतरियासर मे प्रगट किरतारो
छोटी बै'न मिल प्यारलदे आई
पकडी भुजा नै रथ में बैठाई
सती सेवग नैं करै उपदेसा
रथ हाँक्या है सुर पवन'ज जैसा

सै अै'नाणँ ओळखणा, सतियाँ सुण्यो विचार।
सतियाँ भायाँ नै पूछियो, कीरा थारा विचार।

सतियों ने जब हारोजी से ऐसा कथन सुना तब वे हारोजी के बताये हुए चिन्हों से मामा प्रत्यक्ष रूप में (श्री जसनाथजी को) पहिचान गई। (कायम एवं प्यारल) सती ने (अपने भाइयों से कहा) हे भाइयों! कतरियासर जाने के विषय में अपने विचार कहो।

भाइयों ने सतियों से पूछा —

'सपनाँ मिल्या'क सौंपरत, कायम किसन मुरार।

हे बहिनो! (आपको कतरियासर जाने का) स्वप्न आया है या प्रत्यक्ष में मिल कर भगवान् (श्री जसनाथजी) ने आपको कुछ कहा है?

हुई परमाणाँ कतरियासर आया
हरिये बागाँ में आसण बिराया
आया सतीजी गुरों रै चरणाँ
वचन सतगुरु रो धारण करणाँ
सती सनमुख आती रै आई
दरसण किया मैं सरब सुख पाई
दूध-नीर ज्यूँ मिल्या पकाई
मिलताँ परगट जोत सवाई
श्री गुरु बोल्या है सुणो सेवकाई
उत्तम धरम चलाओ भाई
धरम सनातन राखो मन ताई
सत गुरु साधन रै सदा सरणाई
नेम धरम सतगुरु फरमाया
जिण विध जसनाथजी पंथ चलाया
सती प्यारलदे मालासर माँई
सिद्ध पाँच परगटिया ताँई

(यशोनाथ पुराण उत्पत्ति प्रकरण पृष्ठ ११ १२)

यह घटना विक्रम सम्वत् १५६१ के लगभग आश्विन शुक्ल पक्ष की है, क्योंकि जसनाथी सिद्धों की मान्यता के अनुसार आश्विन शुक्ला चतुर्थी को सती काळलदे यहाँ (कतरियासर) आ गई थी।

सतियों ने अपने भाइयों से कहा —

हरमल आया हेत सूँ, माळा दीनी हाथ।
स्याम सनेसो मोकळयो, चेतै किया'ज नाथ।

हारोजी यहा वडे ही प्रेम से आये हैं (और उन्होंने साक्षी के रूप में सिद्धाचार्य की) माला दी है। माला को देखकर मुझे विश्वास हो गया है कि श्री श्याम (श्री जसनाथजी) ने सन्देश भेजा है, श्री नाथजी ने मुझे याद किया है।

जब सती काळलदे और प्यारलदे ने अपनी मा से भी निवेदन किया कि उन्हें कतरियासर जाने का आदेश दे। तब माता ने सती को टूटे हुए रथ तथा वाल वछडों की ओर सकेत करते हुए कहा– "अभी कतरियासर जाने का कोई साधन नहीं है। अगर तुम्हे जाने की इतनी ही शीघ्रता है तो इस रथ में इन वाल वछडों को जोत कर जा सकती हो।"

सती काळलदे ने माता की यह वात सुनकर उसी टूटे हुये रथ को सँवारा और वाल वछड़ों को जोत लिया।

साहण वाहण सोहना, रथ लिया सिणगार।
वाळ लुवारों जोड़िया, रथ लिया ललकार।
काळल प्यारल ऊमवा, वहना हेत पियार।
मन हरख्यो मेळू कहै, घड़ी न लावो वार।

सती काळलदे ने अपने यौगिक चमत्कार से टूटे हुए रथ को सँवार लिया तथा वाल वछड़ों को वैलों के रूप में परिणित कर लिया। दोनो वहिनें रथ पर सवार हो गई और रथ चलने को उद्यत हुआ।

काळल और प्यारल उमगित हो रहीं थीं (क्योंकि दोनों ही) वहिनों के अन्तर में करितयासर जाकर श्री नाथ के दर्शनों के लिए प्रेम उमड़ रहा था। प्रसन्न मन से भाई मेळू ने भी कहा– "चलने में अव तनिक भी विलम्ब न करो।"

माता ने जव देखा कि दोनों सतियाँ करितयासर जाने के लिए रथ पर चढ कर तैयार हो गई हैं तव उन्होंने सतियों को रोकते हुए विनय पूर्वक

कहा– ' मैं तुम्हें इस रूप में कतरियासर नहीं भेज सकती क्योंकि तुम अभी अविवाहित हो, अविवाहित कन्या को उसकी सुसराल भेजना माता पिता के लिए शोभाजनक नहीं होता। विधिपूर्वक विवाह करके ही तुम्हें कतरियासर भेजेंगे।"

माता के मुँह से विवाह की बात सुन कर सती काळलदे ने कहा–

जद म्हे परण पधारस्याँ, काळँग दाणू मार।
सती भणै माता सुणै, जुग चौथ री पार।
मीठो लागै माइयो, इमरत हर रो नाँव।
सोरा राखो सेवगाँ, अलम अलम सुख थाव।

हे माता! काळँग राक्षस को मार कर ही मैं विवाह करने के लिए पधारूंगी इससे पूर्व मेरा विवाह नहीं हो सकता और काळँग राक्षस का मरने का समय चौथे (कलि) युग के अन्त में आयेगा (इस समय तो) माधव (श्री जसनाथ जी) ही मीठे लगते हैं हरि का नाम ही अमृततुल्य है इसलिए प्रार्थना है कि वे सेवकों को प्रसन्न रखें। अगम जन्मान्तर में उनको सुख की प्राप्ति रहे।

कलियुग के अन्त में सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी एवं सती काळलदे अधर्म का नाश करने के लिए अवतरित होंगे उस अवसर पर ही उनका विवाह संस्कार सम्पन्न होगा, जैसे सती ने कहा है–

सावण बाँधै सेवरा, बीन बणै जसनाथ।
सिद्ध बनोरो पूरसी, माँझी गोरखनाथ।
सुरनर जान पधारसी, पाँचू पाँडू साथ।
भींव बधाई आवसी, अलबल अरजण पाथ।

श्री जसनाथजी सहरा बाँध कर दुल्हा बनेंगे। ब्रह्माजी विनायक की स्थापना करेंगे गोरखनाथजी प्रत्यक्ष काम की सम्पन्नता करेंगे। पाँचों पाण्डवों के साथ देवता और मनुष्य बरात बनाकर आयेंगे। भीमसेन बधाई देने वाला का कार्य करेगा। अति बलशाली अर्जुन पनियों की बन्दनवार बांधेगा।

दल (में राव) जहूठल मानसी, खरच खजानो हाथ।
तोरण हीरा भलहलै, थामा रतन जड़ाव।
मांग भरी जग मोतियाँ, कालल करै बणाव।
चम्मण चौक पूरावसी, मगळ गावै नार।
सोव्रन तकत् रचावसी, हीरौं रतन जड़ाव।
कायम पाट पधारसी, तीन भवन रा राव।

वह सारा दल (बारात) राजा युधिष्ठिर के नेतृत्व में चलेगा तथा धन-राशि को खर्च करने का अधिकार युधिष्ठिर के हाथ में रहेगा।

हीरों का चमकता हुआ तोरण होगा (और विवाह वेदी के स्थान पर) रत्नों से मँढा हुआ मण्डप होगा। सती काळलदे जगमगाहट करते हुए मोतियों से माग भर कर श्रृंगार करेंगी और चन्दन की चौकी पर बैठेगी स्त्रियाँ मगल गीत गायेंगी। हीरे आदि रत्नों से जडित स्वर्ण के पाट पर तीनों भवन के स्वामी (श्री जसनाथजी) विराजमान होंगे।

माता ने बीच ही में पूछा—

कुण थारी चँवरी रोपसी, कुण थानै वेद भणाव।

पुत्री, तुम्हारे विवाह की चॅवरी कौन रोपेगा और कौन तुम्हें विवाह के वैदिक मन्त्र पढायेगा?

सती काळलदे ने कहा—

सै'दे चॅवरी रोपसी, बिरमा वेद भणाव
जद म्हे परण पधारस्या.. ....

पाण्डव सहदेव चँवरी रोपेंगे तथा ब्रह्माजी वेद पढाऐंगे तब मैं विवाहित होकर पधारूगी। अभी मुझे जाने दो।

कर मेलो परिवार सूँ, माता द्यो आसीस।
जद (म्हे) ओतार रचावस्यॉ, आसा पूरण ईस।

हे माता! मुझे विदा दो, यदि तुम्हें मुझे विदा देने में कोई झिझक हो तो परिवार के लोगों से पूछ और उनकी राय लेकर मुझे विदाई स्वरूप आशीर्वाद दो। मेरा विवाह तो जैसा मैंने आपसे बताया है, उसी प्रकार होगा, उस समय मैं अवतार लूगी, यह एकान्त सत्य है। उस समय ही मुझे निष्कलक (श्री जसनाथजी) वर की प्राप्ति होगी जो आशा की पूर्ति करने वाले स्वय ईश्वर ही हैं।

फळ बीगाँ पो रो फुरै, कार्गां काळँग सीस ।
मळ मळण हर आवसी, हुय निकळँग ओतार ।
पूंग पलाणै सेतळै, लीला तुरी तरखार ।
उत्तर दिखण दळ देव रा, हाले हुकम हजार ।
छपन कोड़ दळ आवसी, मांझी लखम कुँवार ।
सद म्हे सुख थाय ।

कलियुग के व्यतीत होने पर समय बदल जायेगा उस समय भगवान 'धर्मंग' राक्षस का वध करेंगे। भगवान (श्री जसनाथजी) म्लेच्छों का नाश करने के लिए अवतरित होंगे।

पवन गामी श्वेत घोड़े पर जीन कसकर भगवान् उस पर आसीन होंगे। उनकी फौज में अनेकों नीले रंग के घोड़े होंगे। उनके साथ उनके आदेश पर चलने वाले हजारों सैन्यदल होंगे। जो उत्तर से दक्षिण तक फैल जायेंगे। देवताओं के इन छप्पन कोटि दलों का नेतृत्व लखमणजी करेंगे।

सती के ऐसे निर्भीक एवं स्वाभिमानपूर्ण वचन सुनकर—

मात पिता मन हरख हुवो, मेंघू मेल्यो साथ ।

माता पिता और भाइयों को बड़ा हर्ष हुआ।

काळलदे की माता ने उनको कतरियासर जाने की आज्ञा दे दी और साथ ही अपने पुत्र को भी आदेश दे दिया कि वह बहिन के साथ जाय।

सती को प्रस्थान करते देखकर परिवार के एक मुखिया ने हँसा से कहा—

हँसा, रथ आगळ खड़ो, गवण करो दिन रात

हे हँसा! अपने रथों को भी सजाओ और सती के रथ के आगे आगे लिए चलो रात-दिन भाग चलना स्वीकार है पर सती का साथ नहीं छोड़ेंगे।

रथ खड़िया है हुक्म प, काळलदे रै साथ ।
सांझ पड़ी जद चालिया, बरती मांझळ रात ।
पो फाटी पगड़ो भयो, (आ) मेंद्र्या निकळँग पात ।

फिर क्या था देखते-देखते परिवार के लोग उमड़ पड़े। सन्ध्या होते होते सती के रथ के साथ-साथ सजी हुई १२० गाड़ियाँ कतरियासर की ओर चल पड़ीं जिन्हें वहाँ पहुँचने में सारी रात व्यतीत हुई।

वैल थमाओ भाइयाँ, हरमल जाओ हजूर।
हुकम धण्याँ रै हालणों, वाचा वरतै नूर।
वाचा चान्दो सूरज वन्धिया, वासो छपन पियाळ।
वाचा धवळो वन्धियो, सींग सें'वै धर भार।
वाचा मोटै स्याम री, आसण दिढ़क अधार।
सूरत मोटै स्याम री, निरखाँ निजर पिसार।
निकळंग रूप सरेवताँ, कळ दसवैं ओतार।
जद म्हे परण पधारस्यां, ... सुख थाव।

कतरियासर की सीमा में प्रविष्ट होते ही सतीजी ने अपना रथ ठहरा दिया और हरोजी से कहा—

हे हरमल! जाओ, सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी की सेवा में उपस्थित होकर मेरे आने का समाचार दो और निवेदन करो कि अब हमें क्या आज्ञा है? क्योंकि विना उनकी आज्ञा के उनकी सीमा में प्रविष्ट होना ठीक नहीं है। अब तो आगे उनकी आज्ञा से ही चलना होगा।

स्वामी के वचनों से बँधे चन्द्र और सूर्य के रथ अपने समय के अनुसार ही आकाश-मार्ग में विचरण करते हैं। वचनों से बँधा हुआ ही वासुकि नाग पाताल में निवास करता है और वचनों से बँधा हुआ नन्दीश्वर अपने शृंग पर पृथ्वी के भार को सम्भाले हुए है। दृढ संयमी समर्थ प्रभु की आज्ञा शिरोधार्य करके ही हमें आगे चलना है और उनकी मन मोहिनी मूर्ति को नजर भर कर देखना है। निष्कलंक प्रभु के रूप की आराधना करती हूँ, जो दसवें अवतार हैं।

इस प्रकार मुक्तकण्ठ से सिद्धाचार्य के वास्तविक गुणों की प्रशंसा करते २ महासती काळलदे के सतीत्व का तेजपुञ्ज मानो पृथ्वी पर अमित. प्रसरित हो चला और आसपास की भूमि के कण दिव्याभा से अनुप्राणित हो गये। (आगे सती के पूजा का स्थान भी यहीं स्थापित होगा)।

महासती काळलदे के श्रद्धामय विचार सुनकर हारोजी वहाँ से 'गोरख माळिये' पर पहुंचे। लेकिन सिद्धाचार्य वहाँ न मिले। उनका आसन

लागी पड़ा था। हारोजी ने महाराज की प्रतीक्षा की—इधर उधर खोज की शालीनता पूर्वक सम्बोधन किया परन्तु सिद्धाचार्य की स्थिति का कोई अनुभव न हुआ।

हारोजी ने 'गोरलमालिये' के पास इधर उधर बहुत देखा पर कहीं सिद्धाचार्य न मिले। ज्यों ज्यों सिद्धाचार्य से मिलने में देर हो रही थी त्यों त्यों हाराजी के मन की व्यग्रता बढ़ रही थी। चारों ओर से निराश होकर हाराजी सोच विचार करने लगे—अब क्या किया जाय? माता कामलदे के सामने कैसे मुँह दिखाऊं? वे मन में क्या सोचेंगी? किस मुँह से जाकर उनसे कहूँ माता! सिद्धाचार्य मिले नहीं! उन्हें ऐसे वचन सुनकर कितना दुःख होगा?

हारोजी ने अन्त में यही निश्चय किया कि जो कुछ भी हो मुझे चलकर माताजी से सारी वस्तुस्थिति का निवेदन कर देना ही चाहिए।

हारोजी उदास मुख, अश्रुप्लावित नेत्र कम्पित गात्र माता कामलदे के पास आये

नैण झरै, झर पींजर झरै, पींजर नैण झराय।
उभण बूठा काळै मेह ज्यूं, पण धोंच्यो पूठाय।
(भीखरण बाप सदेसड़ो, बाँच कह्यो हरमाल)।

रोते रोते उनके नेत्र चुँधिया गये हैं आँखों की लालिमा पीतिमा में परिणित हो गई है। काले बादलों की तरह उनके नैत्र अविरल झरते हो जा रहे हैं।

जैसे ही महासती कामलदे ने हाराजी से सुना कि सिद्धाचार्य गोरलमालिये' पर नहीं है तो वे स्वयं परिवार सहित 'गोरलमालिये' पर आ उपस्थित हुई और असीम श्रद्धा से सिद्धाचार्य के आसन का दर्शन किया।

उस समय हारोजी ने सिद्धाचार्य के आसन की ओर इंगित करते हुए विरह–विह्वलता से कहा—

अठै माथा काळ्लद! कानड़ होन्ता, अठै होन्ता गुरु आप।
सँदे गुराँ रा मेटियो, गयो गुराँ (रै) पायँ लाग।
(भीखरण बाप संदेसड़ो, बाँच कह्यो हरमाल)।

हे मातेश्वरी काळ्लदे ! मैं सूर्य को साक्षी करके कह रहा हूँ कि यहाँ श्री कानड—कन्हैया अर्थात् श्री जसनाथजी थे। मैं स्वयं प्रत्यक्ष गुरुदेव से भेंट कर तथा उनके श्रीचरणों में अभिवादन कर आपके पास (चूडीखेडा) गया था।

कान तणा चौरासिया, टूटी पींग तणाय।
देचलो भळकै चावै सोवनो, मन राखो नेठाव।
छुरी, कटारी सालवै, ज्यूँ साले है घाव।
(श्री सूरज वाप संदेसड़ो, वाँच कह्यो हरमाल)।

हे माता ! मैं सच कहता हूँ, सूर्यदेव की साक्षी देकर कहता हूँ, मेरे तो एकमात्र आधार गुरुदेव ही थे। उनके बिना मेरी गति रस्सी (तने) टूटे हुए झूले की-सी हो रही है। गुरुजी के उपदेश रूपी झूले में झूलता हुआ मैं परमसुखी था किन्तु उनके अदृश्य होने पर मेरी स्थिति झूला झूलते हुए और अकस्मात् झूले की रस्सी टूटने पर उस व्यक्ति की-सी हो रही है। हृदय ऐसी प्रेरणा देता है कि धैर्य रखो, तो भी विरह की यह असह्य वेदना छुरी (कटारी) की तरह चुभ रही है—मर्मान्तक पीड़ा दे रही है।

हारोजी की निश्छल बातें सुनकर और सिद्धाचार्य की आँख-मिचोनी देखकर मातेश्वरी काळ्लदे को महान् आघात लगा। वे विलाप करने लगीं। ये विलाप के पद्य 'जसनाथी-साहित्य' में 'झुरावा' के नाम से प्रसिद्ध हैं[1]।

---

(१) माता काळलदे के 'झुरावा' के साथ साथ उनके साथ आये हुए कुलगुरु देवपालजी पाण्डिये ने भी सिद्धाचार्य से प्रकट होने की प्रार्थना करते हुए निम्नोक्त "सिलोक" पाठ किया—

जाग—जाग जसनाथ, जाग जुग चोथो आयो।
भय मान्यो भूपाळ (काँई) कळ कूकराँ डरायो।
काँई पिंगूडै वाळ, काँई इसड़ो बुढ़ायो।
जगत रूप विस्तार मेवगाँ देख लुकायो।
हाथाँ रा हिंवरस वसो, हरख दिखावण हाथ।
श्याम मरण देपाळ कहै, जाग जाग जसनाथ।

× × ×

माता कामदे ने अपने विरह को—वियोगजन्य वेदना को मर्मस्पर्शी शब्दों में व्यक्त किया है जो पठनीय है—

मोंसी कायम राजा ओसर्या, दीनी नींव पताळ।
कान सनेसो रुखमण यूं मणें, गोठ रची सिसपाळ।
घण्या विहूणों करवलो, पल्लाण्यो सिसपाल।

हे भगवान्! संसार सागर से असंख्य जीवों के उद्धार करने के हेतु ही आप अवतरित हुए हैं और आपने धर्म की ऐसी नींव डाली है जो पाताल तक पहुँच गई है इसे कोई भी हिला नहीं सकेगा।

रुक्मणी ने जब भगवान् श्रीकृष्ण को संदेश पहुंचाया तब श्रीकृष्ण ने शिशुपाल से उसकी रक्षा की किन्तु आपने तो मुझे दर्शन तक नहीं दिये। हे प्रभु! बिना किसी अन्तःप्रेरणा के मेरी वही दशा है जो शिशुपाल के सामने रुक्मणी की थी।

जाग जाग जसनाथ सूता क्यूं मरसी स्वामी।
गुना बगस गोमन्द (मह) चाकर मबा'ज लामी।
दरसण द्या किरतार सवगों विनती सामी।
प्रगट रूप भगवान उठा थे अन्तरजामी।
हाथों रा हिवरस बसो।

× × ×

जाग जाग जसनाथ जाग नर नारी पियारो।
नव बिरियों मिरलाव दसवण काटण दावो।
कर मनस्या (री) तरवार, मूठ मेलों सिर आवो।
मगता हित अरदास दाख कर वेगा आवो।
हाथों रा हिंवरस बसो भवतारण गह हाथ।
स्याम सरण देपाळ कह।

× × ×

जाग जाग जसनाथ जाग सुध बुध की वाणी।
जागण वाळी जाग आव जुगती सूं आणी।
मवद स्याम उपदेश (भाखियो) जगत सूं तारण ताणी।
भेद मरम सव मेट केवटो आव समाणी।
सुनमुख आयो सायबा मस्तक मेलण हाथ।
स्याम सरण देपाळ कह।

× × ×

माय विहूणी धीवड़ी, उणत घणी संसार।
वीर विहूणी बैं'नड़ी, पुरख विहूणी नार।
जिसी करेलण वेलड़ी, विकसै कॉय उधार।
मोर विहूणी ढेलड़ी, हाँडै वणी मँझार।
नैंण सरोवर हुय रिया, वूठा अमी फुँवार।
थे मतजाणो कानड़! परणिया, म्हे छाँ अकन कुँवार।

हे स्वामी! इस ससार में मातृहीन बालिका, भ्रातृ-विहीना भगिनी और पुरुष विहीना नारी की जो अन्तरदशा होती है, वही अन्तरदशा आज मेरी हो रही है।

जैसे करेले की वेल विना आधार के विकास नहीं कर सकती है, वैसे ही मैं आपके आधार के विना कैसे विकसित (प्रसन्न) हो सकती हूँ?

विना मूर्ति के जैसे देवालय, विना तट के जैसे सरोवर शोभित नहीं होते है, वैसे ही आज मैं आपके विना अशोभनीय बन रही हूँ। मयूर के विना जैसे मयूरी जगल में भटकती है, ठीक आज वही दशा मेरी है। प्राणनाथ! आपके दर्शनों के विना आँखों में आँसुओं का क्षीरसागर उमड़ रहा है और अमृत के फुहारे छोड़ रहा है।

हे श्रीकृष्णरूप जसनाथजी! आप यह न समझें कि मैंने विवाह कर लिया है, मैं आपको विश्वास दिलाकर कहती हूँ कि मैं अक्षय-कुमारी हूँ।

जाग जाग जसनाथ, जुगत कर जीवण जालम।
ऊपर करो अलेख, सो जुग दीखै खालग।
राम लखण नरसिंघ, जगत रा थे ही पालंग।
थे निकळंग ओतार, पापियाँ हिवड़ै सालंग।
चान्द, सुरज, दीपक तपै, धरती अम्बर हाथ।
स्याम सरण देपाळ कह .. . ।

इन सिलोको के अतिरिक्त निम्नलिखित सिलोक भी उपलब्ध है—

जती सती सूँ कराँ वीनती, कैसे सिवराँ गुरु जसनाथ।
यूँ मन पायल पग ज्यूँ डोलै, चित्त नहीं इक धारा।
कालर खेत कणक को बायो, कण नहीं निपज्यो सारा।
बो'रा सेती करी ठगाई, विन बोल्याँ दीन्या चूंकारा।
देखै चन्दो देखै सूरज, देखै नवलख तारा।
स्याम सरण देपाळ कह, अवचळ गुरु हमारा।

सती काम्मदे के पत्थरों को रुला देनेवाले विरह-रुदन को सुनकर भी जब सिद्धाचार्य श्रीदेव जसनाथजी प्रकट न हुए, तब सती का धैर्य चरम सीमा का उल्लंघन करने लगा। प्रत्यक्ष दर्शनों में पड़ा यह व्यवधान असह्य हो गया। उन्होंने अपने भाइयों को सम्बोधित करके कहा—

उठो म्हारा च्यार जुगाँ रा बन्धवाँ, तुरत करो त्यार।
सुरपद खाना सोहना, मोतियाँ लेवो वधार।
उठो म्हारी सँग री सहेलियाँ, गावो मंगळाचार।
उठो म्हारी कुम सुहावण्या, नेवर रै झिणकार।
सुरग सिधारया देवता, कथा रही संसार।
सतियाँ सबद समरूलावियो, (भाँवो) हरमल करो विचार।

हे मेरे चार जन्म के बान्धवो! उठो और मेरे लिए समाधि तैयार करो। जब प्राणनाथ मुझे दर्शन देना भी उचित नहीं समझ रहे हैं तब समाधि लेना ही उचित है। हे मेरे संग की सहेलियो! उठो और मंगलाचार के गीत गाओ। हे कुरजाँ जैसी सुन्दरियो! अपनी पायलें झंकृत करती हुई उठो। ऐसा पता चलता है कि श्रीदेव जसनाथजी ने स्वर्गारोहण कर लिया है और केवल उनकी कथा ही संसार में शेष रह गई है। हारोजी तुम भी अपने विचार प्रकट करो मुझे अब क्या करना चाहिए!

हारोजी चुप रहे। वे कुछ न बोले। गोरखमालिये पर उपस्थित सब वर्ग भी किंकर्तव्यविमूढ़ रहा। वह क्या करे कुछ सोच नहीं पा रहा था।

पर सतीजी की आज्ञानुसार समाधि तैयार करदी गई। समाधिस्थ होने से पूर्व सतीजी ने पुनः मानसिक प्रार्थना की और प्रार्थना के फलस्वरूप सिद्धाचार्य प्रकट हो गये। सबने सिद्धाचार्य के दर्शन कर जय जयकार किया।

प्रकट होकर सिद्धाचार्य ने अपने प्रिय शिष्य हारोजी से कहा—

गुराँ रो साथ न चीनो हरमल, साथै थकाँ विसारया।

हे हरमल! तुम ने गुरु के साथ रहकर भी उसके रहस्य को नहीं समझा! भ्रम में ही पड़ा रह गया।

हारोजी ने निवेदन किया—

अमर काया री आस करै हो, प्रथम मना विसारथा ।
आप अपंपर हुया सुरगाँपत, लोटी हार उत्तारथा ।

मैंने इस भेद को इसलिए भुलाये रखा कि मैं तो आपके इस शरीर के अमर होने की आशा करता था । आप तो युग-युग से अमर हैं । हम ने तो आप के इस क्षणिक अन्तरध्यान को ही आपका स्वर्गारोहण मान लिया था । पर आपने पुन दर्शन देकर हम सब को कृतार्थ कर दिया ।

हारोजी ने विनयावनत होकर उस समय सिद्धाचार्य से निवेदन किया कि महाराज, आप तो अपनी लीला समेट रहे हैं, पर मुझ दास के लिए आपकी क्या आज्ञा है, मैं तो आपके श्रीचरणों में रहकर भी कोई आध्यात्मिक तत्त्व नहीं समझ पाया । भगवन् ! आप सर्वशक्तिमान हैं । मेरे हृदय में ज्ञान की ज्योति जगाने की कृपा करें ।

हारोजी की निश्छल तथा प्रेम भरी प्रार्थना सुनकर सिद्धाचार्य ने कहा—

हे हरमल ! तुम मेरे परिक्रमा दो, जिससे तुम्हारे हृदय में सच्ची ज्ञान ज्योति जगेगी, समस्त युगों और तीनों कालों का हस्तामलकवत् बोध हो जायेगा ।

श्री गुरुदेव की आज्ञानुसार हारोजी ने उनकी प्रदक्षिणाएँ देनी प्रारम्भ कीं । जैसे ही प्रदक्षिणा प्रारम्भ की कि उनमें ज्ञानतत्त्व का प्रादुर्भाव होने लगा और प्रति प्रदक्षिणा में एक एक 'सबद' स्वत उच्चरित होने लगा – ये 'सबद' जसनाथी साहित्य में 'ताछ'[1] नाम से प्रसिद्ध हैं ।

---

(१) श्री गुरुजी ! ओकारे रम रै'या जद गुरु हँवदा घोर अँधार ।
आपीणे आप उपाविया विछडिया विस्तार ।
धरत सरेवी (नन्दे) गोव्ळवी, वर सुरगाँपत पार ।
रूसिया राम, सरेवियो, (गुरु गोरख) थॉप्यो वेद विचार ।
पुरिया साध सँतोखिया, मनस्या (देवी) तणा उधार ।
वेद लिया परमाण सूँ, जाप जप्या निरकार ।
भगत प'लाद (नैं) सताविया, दाणों मेल्यो भार ।

इधर हारोजी प्रदक्षिणा करते हुए गुरु-गुण गानकर अपनी एकनिष्ठा का परिचय दे रहे थे और गुरु प्रवर्तित धर्म का वास्तविक रूप सेवकवर्ग को दिखला रहे थे तथा प्यारल सती की प्रार्थना पर सिद्धाचार्य ने उन्हें उपदेश देते हुए आज्ञा दी कि तुम टोडरजी के पास मालासर चले जाना।

चार युगों की चार परिक्रमा कर चुकने के बाद हारोजी ने सिद्धाचार्य को "ओंनमो आदेश" कहकर वंदना की। सिद्धाचार्य ने भी 'प्रत्यादेश' किया और कहा—

हारा! तुम अपनी जन्मभूमि बम्बलू चले जाना और वहाँ इस धर्म के प्रचार के माध्यम से लोगों के नैतिक जीवनस्तर को ऊँचा उठाना।

हरवो हिरणाकस (नैं) मिरदक्ष्यो नै'रों किमो पुहार।
पाँच (किरोड़ों) पै'ल्हादो ले तिर्‌या, ले'र उतारयो पार।
श्री जसवँत धणी सरैवणों मन सों मती बिसार।
मन रै मोड़ै चाढ़ कै पौं'चायै गुरु पार।
सत (जुग) त्रेता, द्वापर कलयुग आया म्हाँ सूँ पास।
जोग जुगाँ रा पोल्मिया ग्यान रै'यो संसार।
कायम (राजा) बाहर आविया जोम्मिया हरमाल।
आगमूँ कह (गुरु) जसमालजी बैठो (हरमल) करो विचार।
× × × ×
सत जुग री बरतावियो (आयो) त्रेता जुग रो बार।
रानी तारा (दे) रोहितास कुँवर, (राजा हरचँद) करणी रो सुविचार।
नीर तण्यो तीनूँ जणाँ भील भिडयो भिलियार।
कारण दरीवाँ परहर्‌या कोट गढ़ाँ बेजार।
माया कुमाई मेट कै झाड़ चल्या पर बार।
कौरि चाँको चालियो बीदो (लेवयो) जाणर कूँ पार।
रामो रावण (नैं) मारियो लंक दहाँ लग पार।
साता (किरोड़ों) हरचँद ले तिर्‌यो लेर उतारयो पार।
श्री जसवँत धणी
हरमल करो विचार।

सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी ने हारोजी को अपना निष्ठावान एव अधिकारी शिष्य समझ कर उन्हें अपनी स्मृति-स्वरूप सेवा-सामग्री 'माला-मेखळी' प्रदान की और कहा—

"यह सेवा-सामग्री तुम अपने पास रखना, आज से ठीक छै मास बाद हमारी ज्योति जगेगी अर्थात् हम स्वय किसी अन्य व्यक्ति में प्रकट होंगे, उसे यह पवित्र सेवा-सामग्री प्रदान कर देना।"

सरल स्वभाव हारोजी ने पूछा—

"पूज्य गुरुदेव! मैं उस महामहिम पुरुष को कैसे पहिचान सकूँगा, जिसमे आपकी ज्योति आविर्भूत होगी।"

सिद्धाचार्य ने बताया—

"हरमल! उस व्यक्ति की पहिचान यही होगी कि वह व्यक्ति प्रथम मिलन में ही तुम्हारी कनिष्ठिका (चिटली) अँगुली पकड़ लेगा। उसे ही तुम मेरा प्रतिनिधि समझना और यह सेवा-सामग्री उसे प्रदान कर देना।"

त्रेता जुग वरताविये, आयो (द्वाजुग) पँडवाँ (रो) वार।
बात करै देइ-देवता, जीभ लुळै कई बार।
पँडवा अलख सरेवियो, कोरवाँ कियो हंकार।
केरू (तो) भो-भो पाँतर्या, गाफल खरा गिंवार।
पँडवाँ अलख सरेवियो, (वै सैं'दे) गया'ज सुरगाँ द्वार।
पाँण्डु दळ में थोड़की, कोरवाँ अन्त न पार।
दो जुग कोरवाँ दीजसी, दो जुग (बाँरी) माय गँधार।
नवाँ (किरोडाँ) जहूठळ ले तिर्या, ले'र उवार्या पार।
श्री जसवँत धणीं सरेंवता ... .।
. .. . . हरमल करो विचार।

× × × ×

द्वा जुग वरताविये, कळजुग महमदी (रो) वार।
मासां मास उड़ावसी, बरसो बरसी छात।
नर निकळंग जी जागसी, छेड़ो सो परवार।
संता (नें) सरणीं राखसी, गुर गोरख (रै) परमाण।
वा'रै (किरोड़ाँ) निकळंगजी ले तिरै लेर उवारै पार।
श्री जसवँत धणीं सरेंवताँ मन सूँ मती विसार।
सत रै बीड़ै चाढकर, पों'चावै गुरु पार।

समस्त सेवक समुदाय को यथोचित आदेश उपदेश देकर सिद्धनाथ श्रीदेव जसनाथजी विक्रम संवत् १५६३ आश्विन शुक्ला सप्तमी शुक्रवार को समाधि में बैठकर ब्रह्मज्योति में लीन हो गये।

इस विषयक जसनाथ-सम्प्रदाय में यह 'सबद' प्रचलित है —

सात्यूं सुकर मास आसोजी, फरमन धीर करारा।
भँवर गुफा में टापी रोपी, नेछल नेत विसारया।
सुरग मँडळ सझिदाण रचायो, मेद धणी ज्यूं पाया।
जपो अजप्पा जाप, गुरु म्हानैं फरमाया।

सत (जुग) त्रेता द्वापर कळजुग बाबा म्हों सूं पास।
जोग जुगा रो जोगिया ध्यान रैयो संसार।
कायम राजा बाहर आविया जोगलिया हरमास।
आग्यूं अब (गुरु) जसनाथजी, बैठो हरमस करा विचार।

(१) सम्वत पन्द्रा सो त्रेसठ आइ मास आसोज सातम सुध पाई।
सुकरवार वरत्यो दिन आई उस दिन नाथजी समाधि लगाई।

(सिद्ध रामनाथ, यशोनाथ पुराण पृ. ८८)

यशोनाथ पुराण में लिखा है कि योगेश्वर सिद्ध श्री जसनाथजी महाराज २४ वर्ष की अवस्था में अन्तर्ध्यान हुए थे। समाधि के दिन उनकी अवस्था २४ वर्ष की ही थी।

प्रादुर्भाव विक्रम सम्वत १५३९ कार्तिक शुक्ला एकादशी योगदीक्षा विक्रम सम्वत १५५१ आश्विन शुक्ला सप्तमी और समाधिस्थ—तिरोहित होने की तिथि वि. सं. १५६३ की आश्विन शुक्ला सप्तमी है। यों २४ वर्ष की अवस्था सत्य प्रमाणित है।

(२) श्री जसनाथ समाधि सुविचारा यम नियम गुरु आसण धारा।
पूरक, रेचक कुम्भक राई प्रत्याहार सुयोग सराइ।
ध्यान, धारणा अष्ट समाधि या विध करम सुक्रिया साधि।
योग युक्त किये ही सुनीति या स विरद होत अनीति।

(यशोनाथ पुराण समाधि प्रकरण पृ. ८७)

होम – जिग – जाप – थळ रा थान सुधारो ।
आगै अभा देई-देवता, जॉम्बू लम्बी भुजा पिसारो ।
गुरु प्रसाद कह हारोजी, धुरलो ग्यान विचारो ।

यही 'सवद' पाठान्तर भेद से इस प्रकार भी है —

सुरग मॅडळ खळिहाण मचायो, मेद वणी वो पायो ।
अतरी जरणा, विखमी वरणा, इदक'ज अेढी ढारा ।
ओरत सोरत होम भणीजै, जुग जीवण सुधारो ।
वीजो वाणिज नय कीजसाँ, (म्हानैं) लागै हर रो नाम पियारो।
सिद्ध सुरगापत पों'चिया, थळ रो थान सुॅधारो ।
सुरगापत री सेरियाँ, गुरु जसनाथ पधारो ।
गुरु प्रसाद भणै 'सिध हरमल', धोरण वात विचारो ।

प्राचीनता की दृष्टि से जसनाथी साहित्य' में सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी की समाधि के विषय में उपर्युक्त 'सवद' ही प्रमाण रूप माना जाता है। परन्तु इस 'सवद' से यह प्रमाणित नहीं होता कि सिद्धाचार्य और सती काळलदे ने एक साथ ही या पृथक् पृथक् समाधि ली थी। पर कतरियासर के श्री जसनाथजी के मन्दिर में एक ही समाधिस्थल है, जिस पर सदैव 'भगवा चादर' के नीचे 'पवरी' (ओढ़नी, स्त्री-वस्त्र) चढ़ी रहती है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि माता काळलदे ने सिद्धाचार्य की समाधि के पास ही समाधि ली थी और दोनों समाधियों को अन्दर रखकर ही मन्दिर बनाया गया है।

जन श्रुति है कि सिद्धाचार्य ने समाधि लेते समय कहा था कि सती काळलदे की पूजा यहाँ से पूर्व में जहाँ सती काळलदे ने रथ से उतर कर प्रथम विश्राम लिया था और हारोजी को मेरे पास भेजा था होगी। यहाँ तो केवल मेरी ही समाधि की पूजा होगी। इसीलिए महासती काळलदे की पूजा व मेला उक्त स्थान पर होता है, जहाँ वर्तमान में सतीजी का मन्दिर बना हुआ है।

एक धारणा यह भी है कि सती काळलदे ने जहाँ उनका अलग मन्दिर बना हुआ है, वहाँ समाधि ली थी, पर इस बात को वि० सं० २०१२

के भीकासायत के मेले पर एकत्रित हुए सम्प्रदाय के लोगों ने निराधार बताया और इस मत का समर्थन किया कि सतमी को सिद्धाचार्य के साथ ही पृथक् समाधि सुदया कर माताजी समाधिस्थ हुई थी।

यशोनाथ पुराण में उल्लिखित निम्न दोहे से भी इस मत की पुष्टि होती है —

योगेश्वर जसनाथजी, योग युक्त निज धार।
नाथ सती निज परम गति, ओं सबद सत सार[1]।

सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के समाधिस्थ हो जाने के पश्चात् सम्प्रदाय की विशेष परिपाटी के अनुसार कतरियासर वालों ने श्री लालोजी[2] को अपने मठ का मुख्य सिद्ध नियुक्त किया, जिसकी परम्परा अब तक चली आ रही है।

कतरियासर में अन्य जीवित समाधियों का विवरण नीचे लिखे अनुसार है —

(१) जसपालजी ये कुलगुरु देवपाल पारिखसा के सुपुत्र थे। इनकी तपस्थली आजीवन कतरियासर की बाड़ी ही रही। (२) लखुनाथजी— कतरियासर में अब भी इनकी समाधि पर एक छोटा-सा देवालय बना हुआ है। (३) गंगा जाटणी—यह सामूजा ग्राम की थी। (४) प्रहलादजी (५) सती—यह प्रहलादजी की लड़की थी। (६) सती—यह भी प्रहलादजी की ही सुपुत्री थी।[3] (७) असीनाथजी (८) देहोजी माई (९) किसी अन्य सिद्ध की समाधि है।

---

(१) वही पृ० ८७

(२) ये हमीरजी के छोटे भाई रामोजी के सात बेटों में से थे। कुछ लोगों का मत है कि सिद्धाचार्य के चोला-छोड़ने पर जब हमीरजी ने विलाप किया तो सिद्धाचार्य ने ही हमीरजी को वरदान दिया कि तुम्हारे एक और पुत्र जन्म लेगा। वही ये लालोजी हैं।

(३) इन दोनों सतियों का कोई विशेष वृत्त उपलब्ध नहीं हो सका।

सप्तम अध्याय

सिद्धाचार्य की उत्तर परम्परा

बमलू¹—

सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के समाधिस्थ होने के बाद विक्रम सवत् १५६३ आश्विन शुक्ला एकादशी को सिद्ध हारोजी कतरियासर से चलकर अपनी जन्मभूमि बमलू आ गये। वे गाँव की पश्चिम दिशा में सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के सिद्धपीठ (बाड़ी) की स्थापना कर वहाँ तप करने लगे। जब उन्हें तप करते-करते ६ मास का समय व्यतीत हो गया, तब एक दिन अचानक ही वहाँ श्री हाँसोजी² पधारे। उन्होंने पहुँचते ही सहसा श्री हारोजी

(१) यह ग्राम बीकानेर शहर से पूर्व में सात कोस दूर स्थित है। दिल्ली-बीकानेर रेल्वे लाईन की नापासर स्टेशन से लगभग चार कोस उत्तर दिशा में है। गांव के प्राय समस्त लोग जसनाथ मतानुयायी है। यहा पर भी कतरियासर की तरह वर्ष में तीन जागरण पर्व मनाये जाते हैं। इन जागरणो के अवसर पर सुगन्धित द्रव्ययुक्त मनों घृत का हवन होता है। बाडी में श्री हारोजी की समाधि पर सुन्दर मन्दिर बना हुआ है तथा मन्दिर में चारों ओर पक्का चौक बना हुआ है। निकट ही कतरियासर के भूतपूर्व 'सिद्ध जस्सुनाथजी' का मन्दिर है। बाडी में अन्य जीवित समाधियों पर भी स्मारक रूप में छोटे-छोटे देवालय बने हुए हैं। बाडी का दृश्य बडा नयनाभिराम है। बडी में जाल के कई सुन्दर वृक्ष हैं जो बाडी की शोभा को द्विगुणित कर रहे हैं। बमलू ग्राम में प्रवेश करने वालो को बाडी उच्च स्थान पर स्थित होने के कारण दूर ही से दिखाई पडती है। किसी समय यहाँ हारोजी की यात्रा के निमित्त बडा भारी मेला लगता था जिसमें बीकानेर शहर के बडे बडे व्यापारियों की दुकानें लगा करती थी। श्री हारोजी की बाडी के सेवक अब भी उनकी समाधि के दर्शनार्थ दूर दूर से आते हैं। कतरियासर की यात्रा तब तक सफल नही समझी जाती जब तक कि बमलू की बाडी के दर्शन न कर लिए जाय। यही कारण है कि कतरियासर की बाडियो के दर्शनार्थ आये हुए भक्तगण बमलू-धाम की बाडी के दर्शन करने अवश्यमेव पधारते हैं।

(२) इनका विस्तृत वर्णन आगे दिया गया है।

की कनिष्ठिका (चिन्टली) अंगुली पकड़ली। अंगुली पकड़ते ही श्री हारोजी को समाधि के समय निर्दिष्ट सिद्धाचार्य की वाणी की स्मृति आई। पर श्री हारोजी के मन में दुविधा ही रही कि कहीं काकतालिक न्याय से ही अंगुली न पकड़ी गई हो!

कुशल सम्वाद पूछने के बाद श्री हारोजी ने सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी की सेवा-सामग्री 'माला-मेखली' प्रदान करने की आज्ञा श्री हाँसोजी से कह सुनाई। पर निश्छल हृदय हारोजी ने साथ में यह भी निवेदन कर दिया कि मैं गुरु (समाधि) की साक्षी में ही यह भेंट अर्पित करूँगा। श्री हाँसोजी ने इसे स्वीकार कर लिया और दोनों कतरियासर की ओर चल पड़े।

श्री हाँसोजी और श्री हारोजी सिद्धाचार्य की समाधि पर आये। श्री हारोजी ने समाधि का ओं नमो आदेश करके समाधि पर 'माला-मेखली' रख दी और सिद्धाचार्य से प्रार्थना की कि "हे देव यदि श्री हाँसोजी में आप की ज्योति प्रकट हो गई है तो यह सेवासामग्री (माला मेखली) उनके पास स्वत ही चली जाय। मैं अल्पज्ञ हूँ। मुझे किसी परीक्षा में न डालें।

जैसे ही श्री हारोजी ने 'माला-मेखली' सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी की समाधि पर रखी वैसे ही सबके देखते २ स्वत ही उड़कर श्री हाँसोजी के पास चली गई। यह आश्चर्यजनक चमत्कार देखकर उपस्थित जन-समुदाय और श्री हारोजी विस्फारित नेत्र हो जय जयकार कर उठे।

इस प्रकार 'माला-मेखली के उड़कर स्वत' ही श्री हाँसोजी के पास चले आने से सिद्धाचार्य के सेवक उन्हें सिद्धाचार्य का प्रतिनिधि रूप मानकर गुरुपद' से ही सम्बोधित करने लगे।

श्री हाँसोजी कतरियासर ही विराजमान रहे और श्री हारोजी सिद्धाचार्य की समाधि को 'आदेश-वंदना करके पुन' बमलू लौट आये।

श्री हारोजी महाराज सिद्धाचार्य के समाधिस्थ होने के बाद लगभग १२ वर्ष तक इस भौतिक देह से अनेकों धर्म-कार्य करते हुए गुरु प्रतिपादित छत्तीस धर्म-नियमों का पालन एवं प्रचार करते रहे। श्री हारोजी ने वि सं १५८५ आश्विन शुक्ला सप्तमी रविवार को अपनी तपोभूमि (बाड़ी) में

जीवित समाधि देने के लिए बमलू गाँव के निवासियों का आह्वान किया किन्तु ग्रामवासियों ने जमीन खोदकर जीवित समाधि देना उचित नहीं समझा। इससे श्री हारोजी निराश नहीं हुए। निदान उन्होंने वि० स० १५७५ की आश्विन शुक्ला एकादशी शुक्रवार को पृथ्वी माता से प्रार्थना की कि हे माता! समाधिस्थ होने के लिए मुझे अपने अन्दर स्थान दो। श्री हारोजी की प्रार्थना पर पृथ्वी माता प्रसन्न हो वहाँ से विदीर्ण हो गई और हारोजी भूगर्भ में सदा के लिए समाधिस्थ हो गये।

'जसनाथी–सम्प्रदाय' में श्री हारोजी के समाधिस्थल बमलू धाम का बड़ा महत्व है। बमलू की बाडी में श्री हारोजी की समाधि के अतिरिक्त ६ अन्य जीवित समाधियाँ हैं। जिनका परिचय निम्नाङ्कित है—

(१) वीणोजी— ये श्री हारोजी महाराज के इकलौते पुत्र थे। इनकी समाधि श्री हारोजी की समाधि के पास मन्दिर में ही है। इन्होंने किस सम्वत् में समाधि ली, यह अभी तक ज्ञात नहीं हो पाया है। वीणोजी भी अपने पिता श्री हारोजी के बताये हुए मार्ग पर चलने वाले सिद्ध पुरुष थे।

(२) रायनाथजी— ये भी वीणोजी के इकलौते पुत्र थे। रायनाथजी ने अपने जीवन काल में बडे बडे यज्ञ आदि पवित्र कृत्य भी किये थे।

(३) दूवोनाथजी— ये श्री हारोजी की चौथी पीढी में उत्पन्न हुए डावानाथजी के पुत्र थे।

(४) हूमानाथजी— ये भी सिद्ध पुरुष थे। इन्होंने १५० वर्ष तक एक ही झाडी के नीचे रहकर तप किया था।

(५) मेघाईजी सती— ये सती सावासर के तरड सिद्धों की लडकी थी तथा बमलू के कृष्णा सिद्धों की दादी थीं।

(६) रामाई सती – इनके विषय में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी है।

नोरंगदसर —

यहाँ भामोजी सिद्ध की जीवित समाधि है। ये बमहू की परम्परा में अष्ठ सिद्ध हुए हैं। भामोजी वचन सिद्ध थे जो बात इनके मुख से निकलती थी वह सत्य होती थी। भामोजी के अनेक संस्मरण जसनाथ-सम्प्रदाय में बड़ी रोचकता से स्मरण किये जाते हैं।

एक बार भामोजी सिद्ध सींथल ग्राम में से होकर कहीं जा रहे थे। उस समय वहाँ के एक चारण ने इनके सम्प्रदाय की हीनता प्रकट करते हुए कहा —

रळमळ पंथ चलायियो, जाँभै ने जसनाथ।
बरस थोड़ा ही चालसी, तीनसै'र साठ।

प्रत्युत्तर में सिद्ध भामोजी ने कहा—

कूड़ी कैग्यो कूलिया, मन में राख्यो पाप।
पूत डोंगरी सैंचसी, आँधो होसी आप।
निराकार सूँ जोत प्रगटि, प्रगटी आपो आप।
बरस अनन्ताँ चालसी, चलायियो जसनाथ।

× × ×

एक बार मार्ग में चलते समय सिद्ध भामोजी ने एक ऊँट पर स्त्री सहित चढ़े हुए राजपूत सवार से कहा— मुझे भी ऊँट पर चढ़ाओ।"

सवार यह कहकर चलता बना कि 'आक वृक्ष पर चढ़ जाओ "

पीछे से एक और ऊँट सवार जो ब्राह्मण था आया। उसके साथ भी उसकी स्त्री थी। उसने भी भामोजी से मजाक में कहा— चढ़ोगे?"

भामोजी ने कहा — 'हाँ"।

वह भी उनको आक वृक्ष पर चढ़ने का संकेत कर ऊँट को सरपट दौड़ाकर चलता बना।

(१) यह ग्राम दिल्ली बीकानेर-रेल्वे लाइन की नापासर स्टेशन से चार कोस उत्तर में स्थित है।

धानोजी ने अपने हाथ को ऊँट की गर्दन की तरह अभिनीत किया और दौड़कर उन्हें जा पकड़ा और कहा —

ठाकर मर ठुकराणी मरसी, मरसी ऊँट मजीठो।
वामण मर व्रामणती मरसी, (पाँचारों) होसी एक अंगीठो।

धानोजी का इतना कहना था कि आकाश में भयानक गरजना करती हुई विजली आ गिरी और वे पाँचों मर गये। केवल एक ऊँट वचा।

× × × ×

एक वार धानोजी सिद्ध को वीकानेर महाराजा ने बुलाया और बीगोड़ी (भूमि कर) देने को कहा। धानोजी ने उसी क्षण उत्तर दिया—

परगो ल्यो परारगी ल्यो, रळमिळ होगी सारगी
धानो सिद्ध धणी नै ध्यावै, घोड़ी मरै हजारगी

ऐसा कहने पर तुरन्त ही राजा की घोड़ी मर गई। इसी प्रकार से इनके वचन सिद्धि के वहुत से उदाहरण मिलते हैं।

इनकी जीवित समाधि का सन् सम्वत् अज्ञात है।

लिखमादेसर[1]—

श्री हाँसोजी, सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के पिता हमीरजी के छोटे भाई राजोजी के लड़के थे। राजोजी सिद्धाचार्य के सासारिक पितृव्य थे।

---

(१) यह ग्राम श्रीडूंगरगढ तहसील में श्रीडूंगरगढ से सात कोस पूर्व की ओर है। दिल्ली-बीकानेर-रेल्वे लाइन की बिग्गा स्टेशन से ५ कोस उत्तर की ओर स्थित है। लिखमादेसर के निवासियों का रहन-सहन बडा ही पवित्र है। इसका कारण समस्त ग्रामवासी जसनाथ मतानुयायी हैं। यहाँ भी कतरियासर की तरह वर्ष में तीन वार जागरण पर्व मनाये जाते है। यहाँ की वाडी वडी ही रमणीय है। वाडी के पीछे गोचर भूमि भी है। जिसमें गाँव के पशु चरते है। श्री हाँसोजी महाराज के समाधिस्थल पर पुराने ढग का गुम्वदनुमा मन्दिर वना हुआ है। यह मन्दिर दक्षिणाभिमुख है। इस मन्दिर के पास ही पश्चिम की ओर एक मन्दिर और भी है। वाडी का मुख्य द्वार भी दक्षिण की ओर खुलता है। दरवाजे के वाहर 'सगीत चौकी' वनी हुई है। जिस पर पर्वों के समय वैठ कर सिद्ध लोग रात्रि-जागरण मनाया करते हैं। सगीत-चौकी के ठीक सामने एक वरामदा (निवारा) वना हुआ

कतरियासर आकर श्री हांसोजी ने सिद्धाचार्य की समाधि पर उनकी दी हुई सेवा सामग्री 'माला-मेखळी' रखदी और श्री हाँसजी से कहा— महाराज, यदि आप में सचमुच ही गुरुदेव की ज्योति प्रकट हुई है तो यह 'सेवा सामग्री' स्वत आपके पास चली आयेगी। सिद्धाचार्य के प्रताप से वह श्री हाँसोजी की गोद में चली गई।[२]

सिद्धाचार्य द्वारा प्रदत्त सेवा सामग्री 'माला-मेखळी' पाकर श्रीहाँसोजी महाराज कतरियासर में कितने दिन रहे यह निश्चयात्मक नहीं कहा जा सकता केवल इतना ही कहा जा सकता है कि 'माला-मेखळी' के मिलते ही वे वहाँ से रवाना हो गये। इस घटना से सम्बन्धित कूँपोजी का यह 'सबद' जसनाथ-सम्प्रदाय में बडा प्रसिद्ध है—

सुण खींया हाँसो कह, वेगो माण्ड पिलाण।
वगसी 'माळा मेखळी', स्यामी आप सुजाण।
रिण में सुरळो खेरडो, वै साचा सै'नाण।
माहि रा मेळा मँडै, आवै खलक जिहाण।
आवै देई देवता, हिन्दू मुसळमान।
हिन्दू वाँचै पोथिया, काजी पढ़ै कुराण।
मेळा होसी मनसुवाँ, ईंट चढ़ै पाखाण।
रोगी आवैं रिणकता, हँसता पाछा जाय।
हंस गुरु फरमाइया, 'कूँपै' किया वखाण।

उस समय 'रिण' से सम्बन्धित लिखमादेसर का जगल था, जहाँ के 'सुरळो खेजडो' के नीचे 'मावलियों' का निवास था। और उससे कुछ दूर ही विकट 'ढुँढ राक्षस' का आवास था। वहाँ लोग जाते तक घबराते थे। श्री हाँसोजी ने लोकहित की भावना से वहीं पहला डेरा लगाने का आदेश दिया।

उपरोक्त 'सबद' का भावार्थ है— हे खिया, सुनो, शीघ्रतापूर्वक ऊँट पर जीन कसो, स्वय श्री जसनाथजी ने 'माला तथा मेखळी' देदी है। जिस

---

(२) देखो वमलू प्रसग में

भरवय में शमी का खोलसा पेड़ हो वहीं चलो और उसी शमी के नीचे अपना डेरा लगाओ।

खिलमावेसर के सिरों की मान्यता के अनुसार श्री हाँसोजी महाराज कपरियासर से चलकर ताखियासर पधारे। ताखियासर के पुरोहितों ने श्री-हाँसोजी महाराज से इसी स्थान पर बाड़ी बनाकर सदैव के लिए निवास करने की सादर प्रार्थना की। परन्तु उसे उन्होंने स्वीकार नहीं किया। उन्हें तो रिख नामक स्थान के खोलसे खेजड़े के नीचे निवास-स्थल बनाना था। परन्तु अपने सेवकों और पुरोहितों के अनुरोध को सर्वथा टाल भी न सके। कुछ काल तक वहाँ निवास करना स्वीकार कर लिया।

जनश्रुति है कि श्री हाँसोजी महाराज ने वहाँ ६ मास तक निवास किया। ६ मास के निवास काल में श्री हाँसोजी महाराज के पास बकरे और मींढे काफी इकट्ठे हो गये थे। क्योंकि हाँसोजी महाराज का उपदेश होता था कि जीव हिंसा नहीं करनी चाहिये और न ऐसे जीवों को व्यापारी (कसाई) के हाथ ही बेचना चाहिए जो आगे जाकर छुरी के घाट उतारे जाँय।

इन्हीं सदुपदेशों के कारण समीपवर्ती गाँवों के लोगों ने बकरों एवं मींढों को कसाइयों के हाथ बेचना सर्वथा बन्द कर दिया और उन्हें वे श्री-हाँसोजी के पास ले जाकर छोड़ने लगे। बकरों एवं मींढों की आपात संख्या बढ़ती देखकर श्री हाँसोजी ने अपने शिष्य कूँपोजी को बाट का बकरे चराने का काम सौंप दिया। कूँपोजी ने सहर्ष इस सेवा-कार्य के उत्तरदायित्व को अपने कल्याण का प्रशस्त मार्ग समझकर सम्भाला।

तोखियासर के पुरोहित कुछ समय तक श्री हाँसोजी की सेवा करते रहे और बकरों की बाट को भी निःशुल्क पानी पिलाते रहे। पर बाट के बकरों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती ही रही। अन्त में उन्होंने निःशुल्क पानी

(१) तोखियासर में अब भी श्री हाँसोजी महाराज की बाड़ी है। इस ग्राम में ठाकुरजी का एक बहुत ही सुन्दर प्राचीन मंदिर है जिसकी मूर्ति बड़ी ही भव्य है। मन्दिर में एक शिलालेख भी है। ठाकुर-मन्दिर के अतिरिक्त इस ग्राम में भैरवजी का भी बहुत प्रसिद्ध मन्दिर है। जिसकी बाहरदिवारी कोटनुमा बनी हुई है। बीकानेर राज्य में जिसकी खूब मान्यता है।

पिलाना बन्द कर दिया। कूंपोजी ने थाट को पानी न पिलाने की शिकायत की जिस पर श्री हॉसोजी ने ग्राम-पंचों को कहा, पर वे उदासीन ही रहे।

धर्म कार्य में गाँववालों की ऐसी विपरीत मनोवृत्ति देखकर श्री-हॉसोजी ने तोलियासर के कूओं का पानी सूख जाने का शाप दे दिया और आप वहाँ से उठकर खोखले खेजडे वाले 'रिण' में आ गये। जहाँ अब लिखमादेसर है। लिखमादेसर की 'रिण' में खोखले खेजडे के नीचे उन्होंने अपना आसन जमा दिया। उस स्थान पर बालग्रहरूप देवियों (मावलियों) का अधिकार था। लेकिन श्री हॉसोजी ने अपने सिद्धयोग बल से 'मावलियों' को निकाल दूर कर दिया। जब 'मावलियों' ने अपना पूर्व अधिकृत स्थान को छोडने में बहुत आनाकानी की तब श्री हॉसोजी ने एक बडे भारी रोहित (रोहिड़े) के पेड को उखाड कर उन पर आक्रमण कर दिया। 'मावलियों' ने श्री हॉसोजी की सामर्थ्य के सामने अपनी शक्ति स्वल्प समझ कर वहाँ से प्रयाण करने में ही अपना लाभ समझा। जाते २ 'मावलियाँ' कूए की चाठ और सफेद चींटियों के बिल (कीडी नगरा) को भी अपने साथ लेती गयीं। श्री हाँसोजी ने जिस भारी रोहित वृक्ष को उखाड कर 'मावलियों' पर आक्रमण किया था, वह 'रोहिडे' का वृक्ष आज भी 'बायला'[1] ग्राम के जगल में पडा है।

'मावलियों' के चले जाने के बाद श्री हॉसोजी ने वहीं अपना स्थायी आसन जमा दिया। पर इतने ही से उन्हें सन्तोष नहीं मिला। 'मावलियाँ' तो चली गयीं पर 'ढुँढ राक्षस' अभी वहीं मौजूद था, जो रह रहकर उत्पात किया करता था। श्री हॉसोजी ने उसे भी मन्त्रपाश में बाँध (कील) दिया। अब वह स्थान निष्कण्टक एव निरापद बन गया था।

श्री हॉसोजी महाराज के अलौकिक चमत्कारों की प्रशसा चारों ओर

---

(१) यह ग्राम सरदारशहर के पास पश्चिम की ओर है। मावलियों के स्थान के लिए बायला बीकानेर डिवीजन का प्रसिद्ध ग्राम है। श्री हाँसोजी द्वारा 'रिण' से निकाले जाने पर मावलियों ने अपना स्थान इसी ग्राम को बनाया। वह चाठ अब तक बायला ग्राम के कूए के पास पडी है।

फैल गई। अब तो आसपास के लोग उन्हें अलौकिक, अभूतपूर्व और असीम सिद्धि-सम्पन्न चमत्कारिक पुरुष मानने लगे।

श्री हाँसोजी की प्रशंसा से आकृष्ट होकर 'विग्गा' ग्राम का अधिपति रामसी श्री हाँसोजी का शिष्य हो गया। उसने उन्हें एक घोड़ी भेंट की। श्री हाँसोजी महाराज के चमत्कार के विषय में अनेक उपाख्यान हैं—

एक बार बड़ा भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। जिसमावेसर के आसपास की जनता 'मरू मालवे' की ओर चल पड़ी। यह देखकर श्री हाँसोजी ने जनता से कहा— 'मरू मालवे' जाने की कोई जरूरत नहीं। गुरुदेव की कृपा हुई तो यहीं सब प्रबन्ध हो जायेगा।

जनता श्री हाँसोजी के चमत्कारों से पूर्व ही परिचित हो चुकी थी। उन्होंने 'मरू-मालवे' जाने का अपना निश्चय बदल दिया। श्री हाँसोजी अपनी गुदड़ी के नीचे से भूखी जनता को ढेरों अनाज निकाल कर देने लगे और अपनी बाड़ी के चारों ओर चौरासी बीघा में परकोटा और मरत का मालिया[1] बनाने लगे। यह देखकर विग्गा का रामसी चौंका। उसने सोचा कि यह कोई सिद्ध एवं महात्मा नहीं है—यह कोई राजवी है जो गुप्तरूप से गढ़ का निर्माण करवा रहा है। उसने श्री हाँसोजी से लड़ाई करने के विचार से अपने द्वारा प्रदान की गई घोड़ी वापिस माँगी। पर श्री हाँसोजी ने वह घोड़ी देने से साफ इन्कार कर दिया। इससे भड़क कर रामसी ने श्री हाँसोजी पर चढ़ाई करदी। इस घटना से सम्बन्धित झूँपोजी का यह सबद बहुत ही प्रसिद्ध है—

मेछ मछ्न पर भीतरया, बैठा खरै'अ ध्यान।
साय पुकारया मेछ नै, स'रै सुणाइ कान।
पापी दाणू कीलियो, गुरु री संख्या मान।
किला चिणावै भरत रा, पोळ चिणा (वै) पारखान।

(१) वास्तुकला की प्राचीन पद्धति पर बना हुआ एक विशाल चबूतरा जो ऊपर से नीचे तक भरती किया हुआ है। यह विशेषतया तोप के गोलों से सुरक्षित रहने के लिए बनाया जाता था।

दाणू उठियो कोपकर, हस्त पलाण्यो छात ।
साँझ पड़ी पैंडै थुवा, बरती माँझळ रात ।
कई माता कई ऊँघता, कई ऊजड़ कई वाट ।
सूता जागो देवजी .. .. ।
पो फाटी पगड़ो भयो, दीवि नगारै डाक ।
सूता जागो देवजी, आवै दाणू साथ ।
बाहर आवो हँसराजजी, द्योनी डाण जगात ।
डाण्या बामण वाणियाँ, डाण्या साह दलाल ।
म्हारो डाण कुण झेलसी, इसड़ी कूण मजाल ।
धरती भार न झेलवै, कोनी भराँ जगात ।
चान्द सुरज, साँसै पड़ै, ध्याँकू वरतै रात ।
सत् को दीवो भोगवाँ, धरम सुणावाँ कान ।
जा दाणूँ घर आपणैं, वचन हमारो मान ।
दाणू उठियो कोप कर, घाल्यो मुकट नै हाथ ।
हँसराजजी झटकारियो, हस्त पड्यो दृढ़ छात ।
गुरु सरणैं कूँपो भणै, गुराँ री अवछळ जात ।

इस 'सबद' का भावार्थ है कि दानव-प्रकृति के रामसी ने हाथी पर बैठ कर हाँसोजी पर हमला किया। पहले तो उसने श्री हाँसोजी से कहा कि तुम्हें यहाँ रहने का कर देना पड़ेगा। उत्तर में राजा मे श्री हाँसोजी ने कहा कि ऐसा तो नहीं होगा। अन्य वर्गों की तरह हम किसी प्रकार का कर नहीं दे सकते, क्योंकि हम तो भगवान् का दिया हुआ भोगते हैं। इसलिए हे दानव! हमारी बात मानकर अपने घर चले जाओ। ऐसा सुनकर दानव क्रोधित हो उठा और उसने श्री हाँसोजी के जटा-मुकुट में हाथ डाला। उसने उनकी जटा को पकड़ना चाहा, पर श्री हाँसोजी ने अपने हाथ का ऐसा झटका दिया कि वह हाथी सहित पृथ्वी पर आ गिरा और ढेर हो गया।

रामसी के मर जाने की खबर जब उसकी स्त्री लिखमा को मिली तो वह रानी क्षत्रपती श्री हाँसाजी के पास आई और भविष्य में अपने परिवार पर दया दृष्टि रखने की प्रार्थना करने लगी।

श्री हाँसाजी ने लिखमा से कहा—"तुम्हारे पति के श्राद्ध के दिन हमारा चेला आयेगा। तुम उसे प्रेम पूर्वक भोजन कराना। वह प्रसन्न होकर तुम्हें आशीर्वाद देगा।

रामसी के श्राद्ध पर फूँपोजी जिमाने गये। वहाँ भोजन करने के लिए उनको किसी ने पात्र नहीं दिया; निदान फूँपोजी कुम्हार के घर से एक मिट्टी का पात्र ले आये और रामसी के घर भोजन करने बैठ गये। जब रानी ने फूँपोजी को देखा तो उसने परोसने वालों से कहा— यह श्री हाँसाजी महाराज का 'थाट वालिया' चेला है। अतः इन्हें अच्छी प्रकार से भोजन करवाना। ऐसा न हो कि ये भूखे रह जाँय'। भोजन परोसने वालों ने फूँपोजी को २-७ बार परोसा परन्तु फूँपोजी फिर भी तृप्त नहीं हुए और वहीं बैठे रहे। ऐसा देखकर लोगों ने फूँपोजी को तिरस्कार पूर्वक पाली पर से उठा दिया। ऐसा करने से फूँपोजी रुष्ट हो गये। उन्होंने उस मिट्टी के पात्र को फोड़ते हुए कहा— अब तो कुँवर के तीसरे में ही तृप्त होंगे अर्थात् रानी का बालक मर जायेगा तब कहीं हमारी तृप्ति होगी।' ऐसा कह कर फूँपोजी रिख' आ गये।

रानी लिखमा को जब यह मालूम हुआ कि फूँपोजी नाराज होकर मेरे पुत्र के मरने का शाप देकर श्री हाँसोजी के पास चले गये हैं, तब वह भी श्री हाँसोजी के पास आई और रोती हुई बोली—'महाराज! आपके चेले ने मेरा वंश नष्ट होने का ही शाप दे दिया है। किसी प्रकार हमारा नाम चले ऐसी दया-दृष्टि कीजिये। रानी को बुरी तरह विलाप करते देखकर श्री हाँसोजी ने कहा – नाम हमारा और नाम तुम्हारा। कहते हैं तभी से उस ग्राम का नाम लिखमादेसर पड़ गया।

श्री हाँसोजी सिद्धाचार्य के अन्तर्ध्यान होने के पश्चात् लगभग बत्तीस वर्ष तक इस धराधाम को पवित्र करते हुए विचरण करते रहे। विक्रम

स० १७६६ में लिखमादेसर में ही अपने आसन स्थान पर जीवित समाधि ले ली।

'जसनाथी साहित्य' में श्री हँसोजी की प्रशंसा एवं स्तुति में अनेक 'सबद' उपलब्ध हैं, जिनमें 'गुरु हँसराजा' आदि विशेषणों से विभूषित किया गया है, जिनका सविस्तार प्रकाशन किसी स्वतन्त्र लेख में ही सम्भव है।

लिखमादेसर की बाडी में श्री हाँसोजी के अतिरिक्त ६ अन्य जीवित समाधियाँ हैं —

(१) गरीबदासजी— यह महात्मा 'नाथ-सम्प्रदाय' की बोहर गद्दी के महात्मा थे। लिखमादेसर के लोगों के कथनानुसार ये श्री हाँसोजी के सगे भाई थे और बोहर में जाकर योगी हो गये। लिखमादेसर के सिद्धों का मत है कि जसनाथ-सम्प्रदाय में इन्हीं के द्वारा 'भगवे वस्त्र' का प्रचलन हुआ था। इनकी समाधि का सम्वत् ठीक ज्ञात नहीं है।

(२) रामदासजी— ये लिखमादेसर के ब्राह्मण बताये जाते हैं। ये सिद्धाचार्य श्री देव जसनाथजी के अनन्य भक्त थे। इनकी समाधि पर दूध का भोग लगाया जाता है।

(३) छत्तूनाथजी— ये माँडे जाति के सिद्ध थे। इन्होंने लिखमादेसर में रहकर ही अपना तपस्यामय जीवन व्यतीत किया।

(४) कुम्भनाथजी— ये विरक्त महात्मा थे। इन्होंने लिखमादेसर की बाड़ी में अपना आध्यात्मिक जीवन बिताया था। ये विद्वान होने के साथ ही सिद्ध पुरुष भी थे। इनकी मान्यता राजघरों तक थी। कहा जाता है कि जिस दिन इन्होंने जीवित समाधि लेने का निश्चय किया, उसकी प्रथम रात में ही गाँववालों को बाडी में हँसों के विमान जगमगाहट करते हुए उतरते दिखलाई पड़े थे।

(५) श्री लालनाथजी ये अट्ठारवीं सदी में उत्पन्न हुए थे। लालमदेसर (बीकानेर) आपकी जन्मभूमि थी। इनके विषय में प्रसिद्ध है कि ये सत्तासर से मुकलावा करके आ रहे थे। लिखमादेसर बीच में पड़ता था। जसनाथ-सम्प्रदाय के महात्मा कुम्भनाथजी इस गाँव में रहते थे और उस समय

जीवित समाधि लेने की सोच रहे थे। लालनाथजी संग वालों से मिलकर उनके दर्शनार्थ गये। कुम्भनाथजी समाधि में बैठकर 'मतीरा-प्रसाद' वितरण करने लगे और बोले 'है कोई लेनवाला' लालनाथजी ने यह प्रसाद ग्रहण किया तभी से इनको वैराग्य हो गया। विलम्ब होता देखकर साथ वाले वहाँ गये और कहा कि यदि विरागी ही बनना था तो विवाह क्यों किया। लालनाथजी ने उत्तर दिया—

बेहदा लिखिया ना टळै, दीया अंट बुळाय।

अर्थात् विधि का विधान टल नहीं सकता फेरे (भाँवर) लेना तो भाग्य में बदा था। पति के वैराग्य धारण करने पर उनकी पतिपरायणा स्त्री ने भी वैराग्य ले लिया और लिखमादेसर में ही सिद्ध के यहाँ (अखाड़े में) रहकर तपस्या करने लगी। लालनाथजी की ऐतिहासिक कसौटी पर खरी उतरने वाली अनेकों जीवन-घटनायें हैं। श्री लालनाथजी के निम्नलिखित ग्रंथ जसनाथी साहित्य में प्रसिद्ध हैं—

(१) *हरि रस (दोहा-चौपाइयाँ)*

(२) परण विधा (नीति रचना)

(३) हर लीला (भक्ति विषयक)

(४) सिकलींग परवाण (कल्कि अवतार सम्बन्धी भविष्यवाणी)[1]

(५) जीव-समझोतरी (आध्यात्मिक)[2]

(६) फुटकर सबद वाणी इत्यादि

(६) खेतनाथजी— ये जसनाथ-सम्प्रदाय में बजने वाली डुम्बाहारी मंडली के प्रमुख महात्मा थे, पर इनके विषय में अधिक विवरण अब तक उपलब्ध नहीं हो सका है।

---

(१) यह ग्रंथ स्वयं सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के श्रीमुख से प्रस्फुटित हुआ था पर लिपिबद्ध न होने के कारण काल-गति से नष्ट हो गया। जिसको सिद्धाचार्य की दैविक प्रेरणा से ही श्री लालनाथजी ने पुनः प्रकाशित कर दिया। जसनाथ सम्प्रदायवालों का ऐसा ही मत है।

(२) पारीक-सदन रतनगढ़ (राजस्थान) द्वारा प्रकाशित और इस लेखक द्वारा सम्पादित।

घिंटाळ[1]—

यहाँ दो वाडी हैं— एक 'धाडीवाल' और दूसरी 'जाणी' सिद्धों की है। 'धाडीवालों' की वाडी में दो जीवित समाधियाँ हैं। दोनों ही वाड़ियों में श्री जसनाथजी के सुन्दर मन्दिर बने हुए हैं। प्रात -सन्ध्या दोनों समय मन्दिरों में विधि-विधान से पूजा होती है। जीवित समाधियों में एक श्रीमै'चन्दजी की है तथा दूसरी का वृत्त अभी अज्ञात है।

मै'चन्दजी धाड़ीवाल—

ये सिद्ध श्री हाँसोजी महाराज के शिष्य थे। इससे पूर्व मै'चन्दजी माताजी (देवी) के उपासक थे, इसलिए देवी के नाम पर जीवों की बलि चढाकर तथा 'भोपा'[2] बनकर अनेकों प्रकार के पाखण्ड-युक्त प्रदर्शन किया करते थे।

---

(१) यह ग्राम बीदासर (बीकानेर) से दक्षिण-पश्चिम में लगभग डेढ कोस की दूरी पर बसा हुआ है। यहा सिद्धों के दो वास हैं।

(२) देवी का उपासक जो पीले तथा लाल रग का बागा पहनते हैं तथा हाथ में त्रिशूल भी रखते हैं और अनेक प्रकार के प्रदर्शन करते हैं।

(३) किम्वदन्ति है कि मै'चन्दजी ने श्री हांसोजी को प्रभावित करने के लिए सफाई के कई हाथ दिखाये थे, जैसे बहुधा 'भोपा' लोग दिखाया करते हैं। जब उन्होंने लकडी की साधना के सहारे थाळी को रोकने के लिए आकाश में थाली उछाली तो वह श्री हांसोजी के सिद्ध योगबल से ऊपर की ऊपर ही रह गई।

ऐसा भी कहा जाता है कि मै'चन्दजी को हृदयपरिवर्तन के लिए श्री हांसोजी ने उनकी आँखें मुदवाकर स्वर्ग दिखलाया था। वहाँ मै'चन्दजी को प्यास लगी, श्री हांसोजी ने वहाँ पवित्र त्रिवेणी बहती दिखा कर जल पी लेने के लिए कहा— मै'चन्दजी ने पानी पीना चाहा, परन्तु अजलि मे नाना प्रकार के बाल, हाड और निकृष्ट मांस-पिण्ड दिखाई पडे। ऐसा देखकर मै'चन्दजी ने श्रीहांसोजी से निवेदन किया। श्री हांसोजी ने इसका असली कारण जानने के लिए मै'चन्दजी को अपनी उपास्यादेवी के पास भेजा। देवी ने मै'चन्दजी को वक्र दृष्टि से देखते हुए कहा— अरे ! पापात्मा, मास-लोलुप जिव्हा-स्वाद के लिए मेरा नाम लेकर लाखो निरपराध जीवो की हत्या की फिर भी तुझे स्वर्ग में आने का अवसर कैसे मिल गया। भाग यहाँ से। ऐसा कह माता ने मै'चन्द को तिरस्कृत किया। यह रोमहर्षक वृत्तान्त सुनकर मै'चन्द का पाप आँसूओं के जल से धुल गया और आँख खुलते ही उसने अपने आप को वाडी में श्री हांसोजी के समक्ष बैठा पाया।

मैं'चन्दजी द्वारा रचित कुछ स्फुट रचनायें भी मिलती हैं।[1]

टीलोजी—

ये बडे सिद्ध पुरुष महात्मा हुए हैं। इन्होंने प्रारम्भ में 'जाणी' सिद्धों की बाडी वाले स्थान पर तप किया था और दडीबा (बीदासर के पास एक गाँव) के कुम्हारों को चमत्कृत कर जसनाथी बनाया। कहा जाता है कि बीकानेर महाराजा श्री रायसिंहजी को भी इन्होंने अपनी सिद्धि का परिचय दिया था। इसी बाबत 'घिटाल' के सिद्धों को राज्य की ओर से जमीन प्रदान की गई।[2] इनकी जीवित समाधि 'दडीबा' में है।

हाँसेरा[3]—

यहाँ तीन जीवित समाधियाँ हैं.—

(१) मनोहरनाथजी—इनके विषय का अब तक कोई विशेष वृत्त प्राप्त नहीं हो सका, पर 'जसनाथी साहित्य' में इनका प्रशंसात्मक रूप से अनेकों जगह नाम आता है। ये हाँसोजी की परम्परा में बहुत ही श्रेष्ठ सिद्ध पुरुष माने जाते हैं।

(२) झुम्फारजी—इनके विषय में ऐसा कहा जाता है कि इन्होंने गौ-रक्षा के हित मुसलमानों से युद्ध किया था। रणस्थल मे ही इनकी गर्दन धड से अलग हो गई, फिर भी ये आततायियों से लडते ही रहे और उन्हें परास्त

---

(१) मैं'चन्द अखल सरेविया, तन कर दीज दान।
दीजै तन का कापड़ा, का दूजन्ती धान (धेनु)।
खडहड खेड हुवै इण घर पर,
इस शीर्षक का सबद भी मैं'चन्दजी द्वारा ही रचित है।

(२) यहाँ सिद्धों की अधिकृत जमीन १५०० बीघा के लगभग है। पट्टों में जसनाथजी के आसण' का दाखला है तथा १८०० सौ सदी के सम्वत् अंकित है। कहा जाता है कि उस समय टीलोजी के साथ मैं'चन्दजी के सुपुत्र लाखोनाथजी भी थे। सम्भव है मैं'चन्दजी की बाडी में दूसरी जीवित समाधि इन्ही की हो।

(३) यह ग्राम बीकानेर-भटिण्डा-रेल्वे लाइन की दुलमेरा स्टेशन से केवल एक कोस उत्तर में स्थित है। यहाँ की बाडी की निराली शोभा समस्त जसनाथ-सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है। बाड़ी में मीठे जाल के पेड चारों ओर लता की भाँति फैले हुए हैं, जहाँ मयूरादि पक्षी आनन्दविभोर कुहुकते चहकते रहते है।

सिद्ध रुस्तमजी का जन्म तहसील सरदारशहर से उत्तर की ओर चौदह कोस दूर बसे थेड़ी ग्राम में हुआ था। इनके पिता साँवलदास चौहान किसी नवाब के यहाँ दीवान थे। किसी कारण से नवाब साँवलदास पर इतना रुष्ट हो गया था कि वह उसके परिवार को ही समूल नष्ट करने पर तुल गया। साँवलदास व उनके सम्बन्धियों को तलवार के घाट उतार कर भी उसका दिल न भरा तो उसने बालक रुस्तम को भी खत्म कर देने की एक गुप्त योजना बनाई।

कहा जाता है कि थेड़ी ग्राम मे साँवलदास चौहान का एक मित्र रहता था। उसने चुपचाप बालक को उसके ननिहाल पहुँचाने की व्यवस्था की। बालक की रक्षा का भार साँवलदास की एक स्वामीभक्ता सेविका ने सभाला। सेविका गुप्तरूप से बालक को उसकी ननिहाल[१] ले गई। किन्तु नवाब के भय से ननिहाल वालों ने भी बालक को अपने पास रखने में विवशता प्रकट की। स्वामीभक्ता सेविका घबराई नहीं। वह रुस्तमजी को लिए इधर उधर भटकती रही।

एक दिन भटकती-भटकती वह आलसर ग्राम में पहुँची और चौधरी 'सुखा" के घर रात्रि-निवास किया। प्रात जब वह चलने लगी तो सुखा की दृष्टि उस बालक के अरुणिममुख मण्डल पर पडी। उसे बालक में कुछ आकर्षण लगा। उसके हृदय में जिज्ञासा जागृत हुई, उसने सेविका से पूछा— 'क्या यह बालक तुम्हारा है?'

सुखा का यह प्रश्न सुनते ही सेविका फूट फूटकर रोने लगी। वह कुछ कहना, चाहते हुए भी कुछ कह न सकी। केवल आँखों से आँसू बहाती रही। बड़ी देर बाद कुछ सान्त्वना दिलाने पर सेविका ने अपनी और बालक की दु खभरी कहानी कह सुनाई।

सुखा ने रुस्तम की व्यथाभरी कहानी सुनकर अपने भाग्य को पलटते हुए देखा। उसके कोई सन्तान न थी। उसने सोचा यदि इसे सन्तान के रूप

(१) सिद्ध रुस्तमजी की ननिहाल के विषय में मतैक्य नहीं है। कुछ लोग फतेहपुर को ननिहाल बतलाते हैं तो कुछ फतेहपुर के समीपवर्ती 'रोळ' को।

में पालूँ तो ठीक रहे। मुला अपने दिल की बात सेविका को सुनाने लगा 'बहिन मैं आज से तुम्हे अपनी धर्म-बहिन बनाता हूँ। मैं चाहता कि तू इस बालक को लिए कहाँ-कहाँ भटकती फिरेगी। मेरे सन्तान का अभा है और तुम्हें इसकी रक्षा की आवश्यकता है। यदि तुम मेरी मनुहार मा तो तुम दोनों मेरे घर रहो। तुम मेरी बहिन हो और यह मेरा पुत्र"

सेविका को एक दृढ़ आश्रम की आवश्यकता थी। वह उसे सहज मिल गया।

चौधरी मुला ने बालक का औरसपुत्र की तरह एवं सेविका को अपन सगी बहिन की भाँति रखा। परम्पराश्रुत है कि आठ वर्ष के बाद सेविका देहान्त हो गया। मुला ने अपनी बहिन की तरह उसके अन्तिम संस्कार किये

—— बालक रुस्तम भी गाँव के अन्य बालकों की तरह बकरियाँ चरा जाने लगे। एक दिन रुस्तमजी एक शमीवृक्ष (खेजड़ी) पर बैठे बैठे उसकी टहनियों को काट-काटकर बकरियों को डाल रहे थे। उस समय उस खेजड़े नीचे से तीन बार निषेधात्मक मा-ना-मा की आवाज आई। रुस्तमजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने नीचे उतर कर देखा तो कुछ दिखाई नहीं दिया रुस्तमजी ने इसे केवल भ्रम ही समझा। वे पुन खेजड़ी पर चढ़कर टहनियाँ को काटने लगे। ज्योंही उन्होंने खेजड़े की टहनियों पर कुल्हाड़ी की चोट की त्योंही फिर वही मा-ना-ना की तीन ध्वनियाँ सुनाई पड़ीं। रुस्तमजी फिर नीचे उतरे देखा तो कुछ नहीं। रुस्तमजी ने सोचा अब की बार अच्छी प्रकार से सावधानी रखनी है—देखें यह आवाज कहाँ से आ रही है और कौन कर रहा है। वे फिर खेजड़े पर चढ़ गये और कुल्हाड़ी से खेजड़ा काटने (छाँगने) लगे। जैसे ही पहली चोट की आवाज हुई। अब की बार आवाज कुछ निकट-सी प्रतीत हुई। बालक रुस्तमजी नीचे उतरे तो सामने एक अति वृद्ध साधु को खड़े देखा। वह साधु रुस्तमजी को खेजड़े की ओर अंगुली कर के कहने लगा— "इस कलियुग की तुलसी को क्यों काट रहा है? जैसे तुम्हारे शरीर में पीड़ा होती है वैसी प्रकार क्या इसके पीड़ा नहीं होती? देखो इस खेजड़े की टहनियों से खून चू रहा है।"

बालक रुस्तम ने देखा, सचमुच ही खेजड़े की टहनियों से खून चू रहा था। खेजडे की टहनियों से खून चूता देख कर बालक काँप उठा। अपने कृत्य पर उसे पछतावा होने लगा। न जाने कितनी देर वह आँखों में आँसू भरे खेजड़े की खून चूती टहनियों को देखता रहा।

जब प्रकृतिस्थ होकर उसने साधु को जी भर कर देखना चाहा तो कुछ नहीं दीख पडा। निदान बालक रुस्तम ने इसे खेजड़ी न काटने का एक ईश्वरीय संकेत समझा और वहीं प्रण कर लिया कि 'मैं भविष्य में कभी खेजड़ी नहीं काटूँगा।' सन्ध्या तक बालक रुस्तम अनमना-सा फिरता रहा, पर खेजड़े से खून चूने और साधु के दर्शन की बात किसी से न बताई। साथ वालों ने अनमने रहने का कारण जानना चाहा और उसके लिए अनेक प्रयत्न किये पर, बालक रुस्तम इस ओर से सर्वथा उदासीन रहा।

दूसरे दिन दोपहर ढलते-ढलते एक छायादार खेजड़ी के नीचे बालक रुस्तम को नींद आगई। पर सहसा वह नादी-नाद[१] सुनकर चौंक उठा-देखा तो वही कल वाला साधु खडा है। साधु ने रुस्तम से कहा— "बच्चा! प्यास बडे जोर की लग रही है, थोडा-सा जल पिलाओ न।"

रुस्तम ने कहा—'महाराज, अब जल कहाँ? मैं तो अभी २ अपनी दीवड़ी (मसक) का पानी समाप्त कर चुका हूँ। जरा पहले आते तो पिला देता।'

साधु ने कहा—'झूठ न बोलो बच्चे! तुम्हारी दीवडी तो अब भी जल से भरी हुई है।'

रुस्तमजी ने जाकर देखा, तो सचमुच ही खेजड़े की डाल में टँगी दीवड़ी पानी से आमुख भरी हुई थी। जैसे ही रुस्तम दीवडी लेकर साधु को पानी पिलाने आया, साधु न मिला।

गत दो दिनों मे घटी घटना से बालक रुस्तम बहुत ही चकित हो रहा था। सहसा तीसरे दिन फिर वही साधु आता दीख पडा। निकट आते ही साधु ने बालक रुस्तम से बकरी का दूध पिलाने के लिए कहा। रुस्तमजी ने

(१) नाथ सम्प्रदाय के साधु काले धागे में एक प्रकार का छोटा-सा वाद्य पिरोकर गले में पहिनते हैं।

में पालखूँ तो ठीक रहे। सुला अपने दिल की बात सेविका को सुनाने लगा—

"बहिन मैं आज से तुझे अपनी धर्म-बहिन बनाता हूँ। मैं चाहता हूँ कि तू इस बालक को लिए कहाँ-कहाँ भटकती फिरेगी। मेरे सन्तान का अभाव है और तुम्हें इसकी रक्षा की आवश्यकता है। यदि तुम मेरी मनुहार मानो तो तुम दोनों मेरे घर रहो। तुम मेरी बहिन हो और यह मेरा पुत्र।"

सेविका को एक दृढ़ आश्रय की आवश्यकता थी। वह उसे स्वतः ही मिल गया।

चौधरी सुला ने बालक को औरसपुत्र की तरह एवं सेविका को अपनी सगी बहिन की भाँति रखा। परम्परागत है कि आठ वर्ष के बाद सेविका का देहान्त हो गया। सुला ने अपनी बहिन की तरह उसके अन्तिम संस्कार किये।

बालक रुस्तम भी गाँव के अन्य बालकों की तरह बकरियाँ चराने जाने लगे। एक दिन रुस्तमजी एक शमीवृक्ष (खेजड़ी) पर बैठे बैठे उसकी टहनियों को काट-काटकर बकरियों को डाल रहे थे। उस समय उस खेजड़े के नीचे से तीन बार निषेधात्मक 'ना-ना-ना' की आवाज आई। रुस्तमजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने नीचे उतर कर देखा तो कुछ दिखाई नहीं दिया। रुस्तमजी ने इसे केवल भ्रम ही समझा। वे पुनः खेजड़े पर चढ़कर टहनियों को काटने लगे। ज्योंही उन्होंने खेजड़े की टहनियों पर कुल्हाड़ी की चोट की त्योंही फिर वही 'ना-ना-ना' की तीन ध्वनियाँ सुनाई पड़ीं। रुस्तमजी फिर नीचे उतरे देखा तो कुछ नहीं। रुस्तमजी ने सोचा अब की बार अच्छी प्रकार से सावधानी रखनी है—देखें यह आवाज कहाँ से आ रही है और कौन कर रहा है। वे फिर खेजड़े पर चढ़ गये और कुल्हाड़ी से खेजड़ा काटने (छाँगने) लगे। जैसे ही पहली चोट की आवाज हुई। अब की बार आवाज कुछ स्पष्ट-सी प्रतीत हुई। बालक रुस्तमजी नीचे उतरे तो सामने एक अति वृद्ध साधु को खड़े देखा। यह साधु रुस्तमजी को खेजड़े की ओर अंगुली कर के कहने लगा— "इस कलियुग की तुलसी को क्यों काट रहा है? जैसे तुम्हारे शरीर में पीड़ा होती है उसी प्रकार क्या इसके पीड़ा नहीं होती? देखो इस खेजड़े की टहनियों से खून चू रहा है।"

बालक रुस्तम ने देखा, सचमुच ही खेजड़े की टहनियों से खून चू रहा था। खेजडे की टहनियों से खून चूता देख कर बालक कॉप उठा। अपने कृत्य पर उसे पछतावा होने लगा। न जाने कितनी देर वह आँखों मे आँसू भरे खेजडे की खून चूती टहनियों को देखता रहा।

जब प्रकृतिस्थ होकर उसने साधु को जी भर कर देखना चाहा तो कुछ नहीं दीख पडा। निदान बालक रुस्तम ने इसे खेजडी न काटने का एक ईश्वरीय सकेत समझा और वहीं प्रण कर लिया कि 'मैं भविष्य म कभी खेजड़ी नहीं काटूँगा।' सन्ध्या तक बालक रुस्तम अनमना-सा फिरता रहा, पर खेजड़े से खून चूने और साधु के दर्शन की बात किसी से न बताई। साथ वालों ने अनमने रहने का कारण जानना चाहा और उसके लिए अनेक प्रयत्न किये पर, बालक रुस्तम इस ओर से सर्वथा उदासीन रहा।

दूसरे दिन दोपहर ढलते-ढलते एक छायादार खेजडी के नीचे बालक रुस्तम को नींद आगई। पर सहसा वह नादी-नाद सुनकर चौंक उठा-देखा तो वही कल वाला साधु खडा है। साधु ने रुस्तम से कहा— "बच्चा! प्यास बड़े जोर की लग रही है, थोडा-सा जल पिलाओ न।"

रुस्तम ने कहा—'महाराज, अब जल कहाँ? मैं तो अभी २ अपनी दीवड़ी (मसक) का पानी समाप्त कर चुका हूँ। जरा पहले आते तो पिला देता।'

साधु ने कहा—'झूठ न बोलो बच्चे! तुम्हारी दीवड़ी तो अब भी जल से भरी हुई है।'

रुस्तमजी ने जाकर देखा, तो सचमुच ही खेजडे की डाल में टॅगी दीवड़ी पानी से आमुख भरी हुई थी। जैसे ही रुस्तम दीवडी लेकर साधु को पानी पिलाने आया, साधु न मिला।

गत दो दिनों में घटी घटना से बालक रुस्तम बहुत ही चकित हो रहा था। सहसा तीसरे दिन फिर वही साधु आता दीख पडा। निकट आते ही साधु ने बालक रुस्तम से बकरी का दूध पिलाने के लिए कहा। रुस्तमजी ने

(१) नाथ सम्प्रदाय के साधु काले धागे में एक प्रकार का छोटा सा वाद्य पिरोकर गले में पहिनते हैं।

कहा— साधु महाराज ! मेरे रेवड़ में कोई दुधारू बकरी नहीं है। इस हालत में मैं आपको दूध कैसे पिलाऊँ ?'

साधु ने कहा— बच्चा ! जो बकरी तुम्हारे अधिकार में है वह दुधारू है। अत उसी का दूध निकाल कर पिलाओ।'

बालक रुस्तम ने कहा—'वह तो महाराज अभी ब्याई ही नहीं है।' फलत: महात्मा के अत्यधिक आग्रह पर रुस्तमजी अपनी बकरी के पास गये जाकर देखा तो बाल-बकरी के स्तन दुग्धप्लावित हो रहे हैं। बालक रुस्तम ने आक के पत्तों का एक दौना बनाया और उसमें बकरी का दूध निकाला। दूध से दौना भरकर साधु के पास ले आया।

साधु ने कहा—'बच्चे ! थोड़ा दूध तुम भी पीओ।

पर बालक रुस्तम किसी अज्ञात-आशंका से वैसा न कर सका। साधु ने दौना अपने हाथ में लिया दूध के ऊपर के झाग भूर या सरकंडे के 'मूंजे' (घनीभूत जड़ों के गुच्छ) पर बिखरा दिये और शेष दूध साधु ने पी लिया।

साधु के चले जाने के बाद रुस्तम को बड़े जोर की भूख लगी। रुस्तम दौड़े-दौड़े बकरी के पास गये किन्तु बकरी के दूध कहाँ ? भूख की ज्वाला क्षण-क्षण बढ़ने लगी। भूख जब असह्य हो गई तो बालक रुस्तम ने मूंजे पर बिखराये हुये दूध के झागों को चाटा और दौने के अवशिष्ट बचिखुत दूध को पिया। दूध की बूँद जैसे ही बालक रुस्तम की जिह्वा पर पहुँची कि अन्तरपट खुल गये अन्तःकरण पर पड़ा अज्ञान का पर्दा हट गया, आत्म ज्योति जागृत हो गई और बालक रुस्तम वहीं पद्मासन लगाकर बैठ गये। उन्हें अनुभव होने लगा कि यह सब गुरु गोरखनाथजी की कृपा है। उन्होंने ही मुझे सावधान करने के लिए तीन बार अलौकिक चमत्कार दिखाये हैं—

गोरख रूपी गोमयो, वन में नाद बजायो।
सूतो मन में ओझक्यो, गुरु गोरख आय जगायो।
रीती सागळ जळ भरी, अद म्हे परचो पायो।
दूही बाळी बाकरी, खिण री दूध पिलायो।
उजड़े बैठो पयाळियो, गुरु म्हानें राह बतायो।

धरती पगला नहीं टिकै, जद म्हे (गुरु) दरसण पायो ।[1]

अर्थात् मैं भेड बकरी चरानेवाला गडरिया था, जो आत्म-तत्त्व के रास्ते को छोड कर भटक रहा था। उसे गुरु ने सत्य-मार्ग बता दिया है। रुस्तमजी कहते हैं, जिस समय मुझे गुरु के दर्शन हुए[1] उस दिन आनन्दातिरेक से मेरे

---

(१) रुस्तमजी का बनाया हुआ पूरा पद्य इस प्रकार है —

सतगुरु सिंवरो मोवण्या, जिण ससार उपायो।
मनस्या सिरजी धरपती, वचना (सूँ) आम थमायो।
पून'र पाणी गुरु म्हारै सिरज्या, नंचळ तखत रचायो।
वासक राजा गुरु म्हारै सिरज्या, (वासो) छपन पियाळ वसायो।
धवळो धोरी गुरु म्हारै सिरज्या, धरती भार सभायो।
सातूँ सायर गुरु म्हारै सिरज्या, नदियाँ नीर हलायो।
अटकळ परवत गुरु म्हारै सिरज्या परवत मेर सवायो।
चान्दो सुरज गुरु म्हारै सिरज्या, तारामडळ छायो।
बिरमा, विसन महेस'र ईसर, जिण ससार उपायो।
सुर नर सिरज्या, देई-देवता, ग्यानी ग्यान सुणायो।
मनस्या देवी ऊपनो, अत कोई बिरला पायो।
गोरख रूपी गोमदो, बन में नाद बजायो।
सूतो बन में ओझक्यो, (गुरु) गोरख आय जगायो।
रीती सागळ जळ भरी, जद म्हे परचो पायो।
दूही बाळी बाकरी, जिण रो दूध पिलायो।
वजडे बैं'तो एवाळियो, गुरु म्हानै राह बतायो।
धरती पगला नहिं टिकै, जद म्हे (गुरु) दरसण पायो।
म्हैं बळिहारी गुरुदेव री, भूलाँ राह बतायो।
दसवन्त खरचो देव रै, थानैं गुरु फरमायो।
रै'यो विछेवो देव रो, (म्हानैं) सुर नर लेवण आयो।
रुस्तम गावै जुग सुणै, फळ सचियारा पायो।

(१) गुरु गोरखनाथजी के दर्शनों की तिथि मिती का रुस्तमजी ने अपने 'सबदो' में कही कोई उल्लेख नही किया है। पर यशोनाथ पुराण में लिखा है—

सम्वत सतरा बरस अठाई, माघ सुदी एकम दिन आई
याँ दिन गोरखनाथ मिलाया, रुस्तमनाथ नाम गुरु दाया

(वही, पृ० १०१-१०२)

रुस्तमजी ने तत्काल ही कहा "इस नाले में गोहिड़ा फँस गया है, जिससे पानी रुक गया है।"

नाले को खोदने से रुस्तमजी की बात सत्य निकली।

सिद्ध धनराजजी ने बड़ी प्रसन्नता से उसे दीक्षा प्रदान की। दीक्षा पा लेने के बाद रुस्तमजी ने पुन आलसर के उसी धोरे पर जाने की इच्छा प्रकट की और धनराजजी से कहा—'सिद्धजी, जब आवश्यकता पड़े तो सेवक को याद कर लेना।' और रुस्तमजी आलसर[1] आकर वहीं धोरे पर तप करने लगे।

रुस्तमजी की तपस्या की ख्याति सब ओर फैलने लगी। इसे औरंगजेब जैसा कट्टर धार्मिक बादशाह सहन न कर सका। मुल्ला और मोलवियों ने उसे समझाया कि जहाँपनाह, सिक्खों और विश्नोइयों की तरह बीकानेर रियासत में भी सिद्धों का सगठन बल पकड़ता जा रहा है, जो आगे चलकर मुमकिन है, मुस्लिम मजहब को नुकशान पहुँचा दे।

औरगजेब ने सिद्ध धनराजजी के पास 'परवाना' लिख भेजा कि या तो यहाँ आकर अपनी सिद्धि दिखाओ, अन्यथा अपने ढोंग को समेटलो। नहीं तो बरबाद कर दूँगा।[2]

---

(१) आलसर— यह स्थान बीकाने-दिल्ली रेल्वे लाइन की परसनेऊ स्टेशन से दक्षिण में लगभग चार कोस की दूरी पर है और आलसर का यह घोरा 'रुस्तम घोरा' के नाम से प्रसिद्ध है, जो गाँव से चार कोस पश्चिम में है। जुम्मे की छात' के नाम से भी यह घोरा पुकारा जाता है। यहाँ साल में दो बार आसोज सुदी ७ एव शिवरात्रि पर मेला लगता है जिसमें हजारों आदमी इकट्ठे होते हैं। घोरे पर स्तमजी की स्मृति में एक छोटा सा मन्दिर बना हुआ है और यात्रियो की सुविवाथ पानी के दो कुण्ड भी बने हुए हैं। यहाँ एक त्रिवारा तथा एक छोटी कोठरी भी है। घोरे से पूर्व की ओर वह खेजडी है, जिसकी टहनियो में से खून चूता दीख पड़ा था, इसे 'गोरख खेजडी' कहते हैं। घोरे से पश्चिम में 'घाबारिया-घोरा है 'रुस्तम घोरे' पर कोई असाधारण व्यक्ति ही अकेला रह सकता है। यहाँ कई सौ बीघा का बड़ा भयकर ओयण भी है।

(२) रुस्तम सिद्ध हेत कर बोल्या, देव कळा सूँ जागै।
आलाणैं सिद्ध पीर प्रगट्या, लिखमादेसर आगै।

जब बादशाह का परवाना मिला, तो सिद्ध धनराजजी चिन्ता मग्न हो गये। उन्होंने बादशाह को सिद्धों की सिद्धि का 'परचा' (परिचय) देने के लिए कई मानसिक संकल्पविकल्प किये। पर मनःस्थिति किसी पर सुदृढ़ न हो सकी। *निकट बैठे कई सिद्धों से विचार-विनिमय किया पर कोई भी सिद्ध* दिल्ली जाकर बादशाह के सम्मुख परिचय देने को उद्यत न हुआ।

धनराजजी की चिन्ता उत्तरोत्तर बढ़ने लगी कि उन्हें सहसा या सिद्धेश्वर की आन्तरिक प्रेरणा से भी रुस्तमजी के शिष्यत्व ग्रहण करते समय के वे वचन याद आये कि सिद्धजी, जब आवश्यकता पड़े तो सेवक को याद कर लेना।'

आजिया बकरी पकड़ बुहारै भरी कटोरी आगे।
दिल्ली सूँ परवाणा आया, परचा परचो माँगे।
नाटक चेटक परचो नाहीं, हाजर परचो माँगे।
रुस्तम सिद्ध दिल्ली नै चढ़िया, संफर किया इस सागे।
दिल्ली चौहटे तम्बू तणाया जस री नौबत बाजे।
रुस्तम सिद्ध तख्त में चढ़िया चेली बैठ्या आगे।
पो पीली सिद्ध डेरै मंडी, जोत जती री जागे।
गारख बाबो जती निवाज्या रमया सिद्धाँ रै सागे।
अजीता भर काया पड़िया झुम-झुम नाचै आगे।
हूँ मांगे मिजाज गुसाई बैठा आगे सागे।
मक्के हूँता चोर मँगाया, सूत्रो मैनां सोंगे।
सम्मत सतरो साल बतीसो, (जेठ तपतो) सावण हूँतो आगे।
मर करम्मे सीर्थां रो स्याया हरया मतीरे सागे।
तोबा-तोबा करे तुरकड़ा, देव हिन्दू रा आगे।
सायण चोंयण बोड़ा मगसो बेबी मेलो आगे।
गुरु टुकड़ो बाबेरो दीनो माया (री) भूख न लागे।
पीळे पाट री दगली दीनी जिण सूँ बिन लागे।
आ दगली म्हारे गुरवाँ (नै) सोंपी जिलसारेसर आगे।
महर हुई सिद्ध रुस्तम बोल्या, गावत्या पावे लागे।

फिर क्या था, उन्होंने वही बादशाह का 'परवाना' रुस्तमजी के पास भेजकर कहलवाया कि 'आज सिद्धों पर विपद्-घड़ी मंडरा रही है। इसे तुम ही दूर कर सकते हो।'

रुस्तमजी धनराजजी द्वारा प्रेषित बादशाह का 'परवाना' पाकर लिखमादेसर की ओर चलने को तैयार हुए। साथ में अनेकों सिद्ध, जो उनके पास निवास करते थे, तैयार हो गये।

सिद्ध रुस्तमजी ने लिखमादेसर आकर अपने गुरु सिद्ध धनराजजी के प्रति 'आदेश वन्दना' करते हुए दिल्ली जाकर परिचय देने का दृढ़ आश्वासन दिया।[1] सिद्ध धनराजजी ने रुस्तमजी की मंगलकामना करते हुए दस लफरों[2]

---

(१) आलाणों रळियावणों, जाग्या रुस्तम पीर।
लिखमाणो सुबस बसै, बैठे सिद्धाँ रो सीर।
सतगुरु पूरो पातस्या, सब पीरॉसर पीर।
पगलो डोही धरपती, आभै डायो नीर।
बिन जीम्याँ काँई जाणियै, किसड़ो भोजन खीर।
बिन पीयाँ क्या जाणियै, किस्यो गँगाजळ नीर।
बिन ओढ्यॉ कॉई जाणियै, किस्यो पाटम्बर चीर।
बिन खॉचे कॉई जाणियै, किस्यो कबाणी तीर।
बिन बतळायॉ क्या जाणियै, किस्यो पकम्बर पीर।
गेलड़िया रळियावणो, गमलो गै'र गँभीर।
रुस्तम गावै जुग सुणै, गुरु वन्धवै धीर।

(२) दस लफरो के नाम इस प्रकर है— (१) खेतोजी (भरपाळसर) (२) विरमोजी (लिखमणसर) (३) पांचोजी (प्रारेवड़ा) (४) सुरवोजी, ठुकरोजी (झझेक) (५) भारमलजी, बीजोजी (बीनादेसर) (६) रतनोजी (सत्तासर), (७) पेमोजी (लिखमादेसर) (८) मीमोजी, तथा रतनोजी (मूमोजी और रतनोजी कौनसे थे यह अभी अज्ञात है। सम्भव है ये चाक वाले हो। भारमलजी का दिल्ली जाना संदिग्ध है। यशोनाथ पुराण में दिल्ली जाने वाले लफरो की संख्या १२ लिखी है पर हमारे अनुमान से इनके अतिरिक्त और भी कई व्यक्ति रुस्तमजी के साथ दिल्ली गये थे।

जब बादशाह का परवाना मिला, तो सिद्ध धनराजजी चिन्ता मग्न हो गये। उन्होंने बादशाह को सिद्धों की सिद्धि का 'परचा' (परिचय) देने के लिए कई मानसिक संकल्पविकल्प किये। पर मनःस्थिति किसी पर सुदृढ़ न हो सकी। निकट बैठे कई सिद्धों से विचार-विनिमय किया पर कोई भी सिद्ध दिल्ली जाकर बादशाह के सम्मुख परिचय देने को उद्यत न हुआ।

धनराजजी की चिन्ता उत्तरोत्तर बढ़ने लगी कि उन्हें सहसा या सिद्धेश्वर की आन्तरिक प्रेरणा से ही रुस्तमजी के शिष्यत्व ग्रहण करते समय के वे वचन याद आये कि सिद्धजी, जब आवश्यकता पड़े तो सेवक को याद कर लेना।'

आजिया बकरी पकड़ दुहाई भरी कटोरी आगी।
दिल्ली सूँ परवाणा आया पतस्या परचो माँगे।
नाटक चेटक परचो नाहीं हाजर परचा माँगे।
रुस्तम सिद्ध दिल्ली में चढ़िया, संकर लिया बस सागे।
दिल्ली चौहटे, तम्बू तणाया जस री नौबत बाजे।
रुस्तम सिद्ध तख्त में चढ़िया, चौकी बैठ्या आगे।
पो पीजी सिद्ध डेरे माँही जोत जती री जागे।
गोरख बाबा जती सिधाया, रमण्या सिद्धों रे सागे।
अमीरा भर भरया चढ़िया झुम-झुम नाचे आगे।
कूपो मार्ये निवाज गुजारी बैठा काबे लागे।
मक्के हूँता मोर मँगाया सूवो मैना सागे।
सम् सतरे साल बतीसो, (जेठ तपतो) सावण हूँतो आगे।
भर करम्भे सीटाँ रो स्यापा हरयो मतीरो सागे।
तोबा-तोबा करे तुरकणी, देव हिन्दू रो जागे।
साबत चौपग घोड़ा बगसो बेली मेलो आगे।
गुरु टुकड़ो बहुतेरो दीनो माया (री) भूख न लागे।
पीठी पाट री दगली सीडी बिन सुई बिन तागे।
आ दगली म्हारे गुरवाँ (नै) सोपै निरामारेसर आगे।
महर हुई सिद्ध रुस्तम बोल्या, पातस्या पाये लागे।

फिर क्या था, उन्होंने वही बादशाह का 'परवाना' रुस्तमजी के पास भेजकर कहलवाया कि 'आज सिद्धों पर विपद्-घडी मडरा रही है। इसे तुम ही दूर कर सकते हो।'

रुस्तमजी धनराजजी द्वारा प्रेषित बादशाह का 'परवाना' पाकर लिखमादेसर की ओर चलने को तैयार हुए। साथ में अनेकों सिद्ध, जो उनके पास निवास करते थे, तैयार हो गये।

सिद्ध रुस्तमजी ने लिखमादेसर आकर अपने गुरु सिद्ध धनराजजी के प्रति 'आदेश वन्दना' करते हुए दिल्ली जाकर परिचय देने का दृढ़ आश्वासन दिया।[1] सिद्ध धनराजजी ने रुस्तमजी की मंगलकामना करते हुए दस लफरों[2]

---

(१) आलाणों रळियावणों, जाग्या रुस्तम पीर।
लिखमाणो सुवस वसै, बैठे सिद्धाँ रो सीर।
सतगुरु पूरो पातस्या, सब पीराँसर पीर।
पगलो डोही धरपती, आभै डायो नीर।
बिन जीम्याँ काँई जाणियै, किसड़ो भोजन खीर।
बिन पीयाँ क्या जाणियै, किस्यो गंगाजळ नीर।
बिन ओढ्याँ काँई जाणियै, किस्यो पाटम्बर चीर।
बिन खाँचे काँई जाणियै, किस्यो कबाणी तीर।
बिन बतळायाँ क्यां जाणियै, किस्यो पकम्बर पीर।
गेलडिया रळियावणों, गमलो गै'र गँभीर।
रुस्तम गावै जुग सुणै, गुरु बन्धवै वीर।

(२) दस लफरो के नाम इस प्रकार है— (१) खेतोजी (भरपाळसर) (२) विरमोजी (लिखमणसर) (३) पाँचोजी (प्रारेवडा) (४) सुरतोजी, ठुकरोजी (झझेऊ) (५) मारमलजी, बीजोजी (बीनादेसर) (६) रतनोजी (सत्तासर) (७) पेमोजी (लिखमादेसर) (८) मीमोजी, तथा रतनोजी (मूमोजी और रतनोजी कौनसे थे यह अभी अज्ञात है। सम्भव है ये चाऊ वाले हो। मारमलजी का दिल्ली जाना संदिग्ध है। यशोनाथ पुराण में दिल्ली जाने वाले लफरो की संख्या १२ लिखी है पर हमारे अनुमान से इनके अतिरिक्त और भी कई व्यक्ति रुस्तमजी के साथ दिल्ली गये थे।

और अनेकों सिक्खों को साथ जाने की आज्ञा दी। रुस्तमजी के साथ भेजने के लिए नगारा-निशान भी ऊँटों तथा घोड़ों पर लगवा दिये।

रुस्तमजी दस सफ्फों' और अनेकों सिक्खों को साथ लिये दिल्ली की ओर चल पड़े। सहसा लाडूसर पहुँचते ही नगारे और निशान ऊँटों पर से उलटे गिर पड़े।

साथ के सिक्खों ने इसे अपशकुन समझा और रुस्तमजी से निवेदन किया कि दिल्ली मत जाओ वहाँ राक्षसों का वास है वे हमें मारे बिना नहीं छोड़ेंगे।

रुस्तमजी ने लोगों से कहा कि यदि आप लोग शकुन-अपशकुन का विचार करते हैं तो प्रसन्नता से वापस जा सकते हैं। नगारे-निशान उलटा गिरने का कारण तो और ही है—'यहाँ हमारे पूर्वजन्म की धूनी (तपस्थली) है। नगारे-निशान ने नीचे गिरकर 'धूनी' को 'आदेश अभिवादन' किया है।

साथ के लोगों का इस पर विश्वास न हुआ। पर रुस्तमजी के विशेष बल पर खोद कर देखा गया तो वहाँ सचमुच ही धूनी निकली। (इस जगह पर उस घटना की स्मृति में 'नगारों का ओटिया' आज भी बना हुआ है।) फिर भी लोगों का साहस दिल्ली जाने का नहीं हुआ। साथ के कई लोग वापस लौट गये। केवल दस सफ्फर' और दो चार दृढ़ विश्वासी भक्त ही साथ रहे।

इस सम्बन्ध में रुस्तमजी का निम्नांकित 'सबद' भी उल्लेखनीय है—

दिल्ली मत जाज्यो मोवण्या, दिल्ली ओघट घाट।
दिल्ली गया न बावड़्या, जिनसी जिसड़ा साथ।
दिल्ली असुराँ (रो) बैसणूँ, वो तुरकाँ रो वास।
परचो माँगै पातस्या, सिर सोनै रो छात।
परचो दे, का मारस्याँ, आलम आखै बात।
परचो जद ही आपस्याँ, (गुरु) आज्ञा देसी हाथ।'

---

(१) पद्य की पूर्ति के लिए इतना पद्य और है—
अरजाँ सत गुरु ओलख्या दीन भवन रा नाथ।
आया आगम परेखवा लीला भगवाँ साथ।
कँगरे कँगरे जागी हुआ चौपड़ियाँ (दुरमाँ) रै साथ।
गुरुमुखने .... मिलरी मिलर ......।

हे सुन्दर मानव! तुम दिल्ली मत जाओ, दिल्ली सिद्धों के योग्य स्थान नहीं है। रिणसीजी[1] जैसे साधु पुरुष भी दिल्ली जाकर लौटे नहीं। दिल्ली राक्षसों का निवासस्थान है। बादशाह परिचय माँग रहा है। सिद्धों की शक्ति का पूर्ण चमत्कार दिखाओ, अन्यथा मौत के घाट उतार दिये जाओगे।

वि० स० १७३६ के जेठ की कडकडाती धूप में सिद्ध रुस्तमजी दस 'लफरों' को साथ लिए दिल्ली पहुँचे। दिल्ली में प्रविष्ट होते ही नगारे पर बडे

परचो पूरयो मन रळ्यो, नौरंगस्या रै साथ।
जाओ रुस्तम घर आपरै, थानैं तूठा (गुरु) जसनाथ।
गाँव लेवो घोडा लेवो, लेवो पंजाबी छाप।
कमी नहीं किण बात री, खीसै खैर खुदाय।
जसनाथी पंथ प्रगट्यो (म्हारी(चाहाँ, जुगाँरी बात।
रुस्तम गावै जुग सुणै, अलख गुरा री छाप।

(१) सुना जाता है कि सुप्रसिद्ध देव पुरुष श्री रामदेवजी तँवर के ये दादा थे और सिद्ध पुरुष माने जाते थे। पर दिल्ली में ये अपनी सिद्धी दिखाने में असफल ही रहे। अत तत्कालीन बादशाह ने इनका सिर तलवार से उड़ा दिया था। किन्तु किम्वदन्ती के अनुसार यह चमत्कार अवश्य हुआ कि इनका सिर उडाने के वक्त रक्त की जगह दूध की धाराए फूट पडी।

सिद्ध रुस्तमजी की दिल्ली यात्रा सम्बन्धी निम्न दोहे भी उपलब्ध है—

दिलडी मत जाज्यो मोवण्याँ, दिलडी ओवट घट्ट।
दिलडी गया न बावड्या, रिणसी जिमड़ा भट्ट॥
कर मत भोळी बातड्याँ, कायर मताँ दिखाय।
कायर काचो काँठलो, म्हाँ गुरु गोरख भाय॥
म्हे जास्याँ रैस्याँ नहीं, औरंग करणी बूझ।
के वीं लास्याँ मारगाँ, के म्हे जास्याँ जूझ॥
उठ! उठ! भीमा नोरता, करवो करो पिलाण।
रातूँ दिलडी पूगस्याँ, ऊगण थाँनी भाण॥
करवा वेग पलाणिया, पाँगळिया तानील।
वे हरड़ाटाँ, हालिया, सौवाँ'ज कोसाँ मील॥

जोर से डंका दिया गया। सहसा दिल्ली के सिपाही चौंक पड़े। श्री रुस्तमजी ने दिल्ली के चौराहे पर अपने तम्बू तनवा दिये। जब बादशाह को पता चला कि जिस सिद्ध को अपनी सिद्धता का परिचय देने का परवाना भेजा था वह आ गया है, तो बादशाह ने उसकी शक्ति की थाह लेने उस कारागार में बन्द करवा दिया। पहरे पर पूर्ण सावधानी रखने के लिए पहरेदार नियुक्त कर दिये। प्रात होते ही सिद्ध रुस्तमजी उसी चौराहे पर अन्य सिद्धों के साथ अपने आराध्य की सेवा करते हुए मिले। इसे देखकर दिल्ली के अनेक काजी आ आकर सिद्ध रुस्तमजी के पैरों पड़ने लगे।

बादशाह ने सिद्ध रुस्तम से अन्य चमत्कार दिखलाने की प्रार्थना की। उन्होंने बादशाह को अनेकों चमत्कार दिखलाये जिनमें मुख्य ये हैं—

(१) कूएँ पर कच्चा धागा तनवा कर उस पर बैठकर नमाज पढ़ी।[1]

(२) सुग्गा और मैना के द्वारा मक्का-मदीना से ताजे बेर मँगवा कर बादशाह को दिखलाये।[2]

---

(१) बादशाह के पता परवा' माँगने पर सिद्ध रुस्तमजी ने कूएँ पर कच्चा धागा तनवा कर और उस पर बैठ कर नमाज पढ़ने का अभिनय किया।

(२) बादशाह ने रुस्तम से कहा— हम अपनी करामात से मक्का के बेर मँगाते हैं। रुस्तम ने कहा— मँगवाइये। बादशाह मैना बनकर मक्का की ओर उड़ा। जब रुस्तम ने देखा कि बादशाह ने मैना का रूप धारण किया तो मुझे सुग्गा बनना चाहिए ताकि मैना रूपधारी बादशाह को खूब छकाया जाय। वह जिस झाड़ी से बेर प्राप्त करना चाहे उस पर मैना को बैठने ही नहीं दिया जाय। मैना जिस झाड़ी से बेर लेना चाहती सुग्गा वहीं जाकर मैना को तंग करता था। अंत में मैना नीचे गिरे बेर लेकर वापस लौटी और साथ साथ सुग्गा भी ताजा बेर लेकर मैना के पीछे पीछे उड़ा। दिल्ली में आकर मैना ने बादशाह का रूप धारण कर रुस्तम को मक्का का बेर दिखलाया पर रुस्तमजी ने बेर देखकर कहा— "यह तो पक्षियों का जूठा बेर है और अपने पास से निकाल कर कहा— असली बेर तो ये है।" बादशाह ने रुस्तम से पूछा— तुम कहाँ से लाये?' रुस्तम ने कहा— जब उतने जल्दी ही भूल गये।" सुग्गा से तंग आकर नीचे गिरा हुआ बेर लेने वाली मैना मुझे भूल जायेगी तो याद भी कौन रखेगा।

(३) जेठ के दिनों में भी बाजरे के सिट्टों का गुच्छा और हरा मतीरा लाकर दिखलाया।[3]

(४) बादशाह के महल के प्रत्येक कँगूरे पर विभिन्न वेशधारी साधुओं का जमघट दिखलाया।[4]

इन चमत्कारों से बादशाह बहुत प्रभावित हुआ और अपने किये पर पछताने लगा। अन्त में सिद्ध रुस्तमजी से क्षमा-प्रार्थना करते हुए कुछ स्वीकार करने की याचना की। सिद्ध रुस्तमजी ने अपने गुरु के लिए बिना सूई और धागे से सिली हुई रेशम की गुदड़ी' मॉगी। बादशाह ने खुश होकर वह 'गुदडी', 'नगारे-निशान'[5] और अनेक वाहन प्रदान किये। सारे भारत में

---

(३) बादशाह ने एक बडा लम्बा चौडा गढ्ढा खुदवाकर उसे अग्नि से पटवा दिया और रुस्तम को उसमें कूदने की आज्ञा दी। रुस्तम ने अपने साथियो से कहा— कि मैं जब तक इस अग्नि-कुण्ड से बाहर न निकलूँ तब तक नगारो को बजाते रहना भूल कर भी बीचमें बन्द न कर देना। ऐसा कह कर रुस्तमजी धक् धक् करती अग्नी में कूद पडे। थोडी देर बाद लोगो ने देखा वे अग्निदेव की तरह 'टोप' तथा 'बागा' पहने हुए प्रकट हुए। उनके हाथ में एक मतीरा तथा बाजरे के सिट्टो का गुच्छा था।

(४) इतने चमत्कार देख कर भी जब बादशाह रुस्तम से प्रभावित न हुआ, तब रुस्तमजी ने गुरु गोरखनाथ को याद किया। गोरखनाथ के स्मरण मात्र से बादशाह के महलों के प्रत्येक कँगूरो पर विभिन्न वेशविभूषित साधु ही साधु दिखलाई पडने लगे। ऐसा सिद्ध युक्त दृश्य देखकर बादशाह की बेगमें घबरा कर "तोबा" "तोबा" करने लगीं। उन्होंने बादशाह से निवेदन किया कि इस चमत्कारी सिद्ध को रथ घोडा आदि वाहन तथा धन की थैलियाँ देकर प्रसन्न करो। अन्यथा यह तुम्हें तबाह कर देगा। इस पर बादशाह ने रुस्तम को प्रसन्न करने के लिए उपरोक्त चीजें प्रदान कीं। पर रुस्तम ने अस्वीकार करते हुए कहा— "मुझे गुरु ने बहुत कुछ दे रखा है। मैं माया का भूखा नहीं हूँ यदि तुम देना ही चाहते हो तो वह दगली (गुदडी) दो, जो पीले रग के रेशमी जैसे कपडे की तथा बिना सूई धागे के सिली हुई है। वह गुदडी हमारे गुरु (सिद्ध धनराजजी) को लिखमादेसर में अच्छी लगेगी। किंवदन्ती है कि यह गुदडी 'बावन पीरो' की करामात से युक्त थी।

(५) इससे पूर्व जसनाथी सिद्ध मृदग आदि वाद्यो पर ही अपने 'सबद' गाया करते थे। लेकिन इसके पश्चात् ही सम्प्रदाय मे नगाडे का प्रचलन हुआ और अब

ओर से डंका दिया गया। सहसा दिल्ली के निवासी चौंक पड़े। श्री रुस्तमजी ने दिल्ली के चौराहे पर अपने तम्बू तनवा दिये। जब बादशाह को पता चला कि जिस सिद्ध को अपनी सिद्धता का परिचय देने का परवाना भेजा था वह आ गया है; तो बादशाह ने उसकी शक्ति की थाह लेने उसे कारागार में डलवा दिया। पहरे पर पूर्ण सावधानी रखने के लिए पहरेदार नियुक्त कर दिये। प्रातः होते ही सिद्ध रुस्तमजी उसी चौराहे पर अन्य सिद्धों के साथ अपने आराध्य की सेवा करते हुए मिले। इसे देखकर दिल्ली के अनेक काजी आ आकर सिद्ध रुस्तमजी के पैरों पड़ने लगे।

बादशाह ने सिद्ध रुस्तम से अन्य चमत्कार दिखलाने की प्रार्थना की। उन्होंने बादशाह को अनेकों चमत्कार दिखलाये जिनमें मुख्य ये हैं—

(१) कूएँ पर कच्चा धागा तनवा कर उस पर बैठकर नमाज पढ़ी।[1]

(२) सूआ और मैना के द्वारा मक्का-मदीना से ताजे बेर मँगवा कर बादशाह को दिखलाये।[2]

---

(१) बादशाह के ऐसा "परचा" माँगने पर सिद्ध रुस्तमजी ने कूए पर कच्चा धागा तनवा कर और उस पर बैठ कर नमाज पढ़ने का अभिनय किया।

(२) बादशाह ने रुस्तम से कहा— हम अपनी करामात से मक्का के बेर मँगाते हैं। रुस्तम ने कहा— मँगवाइये। बादशाह मैना बनकर मक्का की ओर उड़ा। जब रुस्तम ने देखा कि बादशाह ने मैना का रूप धारण किया तो मुझे सूआ बनना चाहिए ताकि मैना रूपधारी बादशाह को खूब छकाया जाय। वह जिस झाड़ी से बेर प्राप्त करना चाहे उस पर मैना को बैठने ही नहीं दिया जाय। मैना जिस झाड़ी से बेर लेना चाहती सूआ वहीं जाकर मैना को तंग करता था। अंत में मैना नीचे गिरे बेर लेकर वापस लौटी और साथ साथ सूआ भी ताजा बेर लेकर मैना के पीछे पीछे उड़ा। दिल्ली में आकर मैना ने बादशाह का रूप धारण कर रुस्तम को मक्का का बेर दिखलाया पर रुस्तमजी ने बेर देखकर कहा— "यह तो पक्षियों का जूठा बेर है और अपने पास से निकाल कर कहा— असली बेर तो यह है।" बादशाह ने रुस्तम से पूछा— "तुम कहाँ से लाये?" रुस्तम ने कहा— "आप इतने जल्दी ही भूल गये।" सूआ से तंग आकर नीचे गिरा हुआ बेर लेने वाली मैना मुझे भूल जायेगी तो याद भी कौन रखेगा।

(३) जेठ के दिनों में भी बाजरे के सिट्टों का गुच्छा और हरा मतीरा लाकर दिखलाया।[3]

(४) बादशाह के महल के प्रत्येक कँगूरे पर विभिन्न वेशधारी साधुओं का जमघट दिखलाया।[4]

इन चमत्कारों से बादशाह बहुत प्रभावित हुआ और अपने किये पर पछताने लगा। अन्त में सिद्ध रुस्तमजी से क्षमा-प्रार्थना करते हुए कुछ स्वीकार करने की याचना की। सिद्ध रुस्तमजी ने अपने गुरु के लिए बिना सूई और धागे से सिली हुई रेशम की 'गुदड़ी' माँगी। बादशाह ने खुश होकर वह 'गुदड़ी', 'नगारे-निशान'[5] और अनेक वाहन प्रदान किये। सारे भारत में

---

(३) बादशाह ने एक बडा लम्बा चौडा गढ्ढा खुदवाकर उसे अग्नि से पटवा दिया और रुस्तम को उसमें कूदने की आज्ञा दी। रुस्तम ने अपने साथियो से कहा— कि मैं जब तक इस अग्नी-कुण्ड से बाहर न निकलूँ तब तक नगारों को बजाते रहना भूल कर भी बीचमें बन्द न कर देना। ऐसा कह कर रुस्तमजी धक् धक् करती अग्नी में कूद पडे। थोडी देर बाद लोगो ने देखा वे अग्निदेव की तरह 'टोप' तथा 'बागा' पहने हुए प्रकट हुए। उनके हाथ में एक मतीरा तथा बाजरे के सिट्टों का गुच्छा था।

(४) इतने चमत्कार देख कर भी जब बादशाह रुस्तम से प्रभावित न हुआ, तब रुस्तमजी ने गुरु गोरखनाथ को याद किया। गोरखनाथ के स्मरण मात्र से बादशाह के महलो के प्रत्येक कँगूरो पर विभिन्न वेशविभूषित साधु ही साधु दिखलाई पडने लगे। ऐसा सिद्ध युक्त दृश्य देखकर बादशाह की बेगमें घबरा कर "तोबा" "तोबा" करने लगीं। उन्होंने बादशाह से निवेदन किया कि इस चमत्कारी सिद्ध को रथ घोडा आदि वाहन तथा धन की थैलियाँ देकर प्रसन्न करो। अन्यथा यह तुम्हें तबाह कर देगा। इस पर बादशाह ने रुस्तम को प्रसन्न करने के लिए उपरोक्त चीजें प्रदान कीं। पर रुस्तम ने अस्वीकार करते हुए कहा— "मुझे गुरु ने बहुत कुछ दे रखा है। मैं माया का भूखा नही हूँ यदि तुम देना ही चाहते हो तो वह दगली (गुदडी) दो, जो पीले रग के रेशमी जैसे कपडे की तथा बिना सूई धागे के सिली हुई है। वह गुदडी हमारे गुरु (सिद्ध धनराजजी) को लिखमादेसर में अच्छी लगेगी। किंवदन्ती है कि यह गुदडी 'बावन पीरों' की करामात से युक्त थी।

(५) इससे पूर्व जसनाथी सिद्ध मृदग आदि वाद्यो पर ही अपने 'सबद' गाया करते थे। लेकिन इसके पश्चात् ही सम्प्रदाय मे नगाडे का प्रचलन हुआ और अब

बेरोक रोकटोक फिरने का ताम्र-पत्र दिया। जिसमें लिखा है कि हिन्दुस्तान के इस ओर से उस ओर तक जसनाथी सिद्ध अपने नक्कारे निशान' सहित बेरोक टोक घूम-फिर सकते हैं।

किम्वदन्ती के अनुसार सिद्ध रुस्तमजी ने बादशाह को बावन परचे दिखलाये थे।

सिद्ध रुस्तमजी की दिल्ली यात्रा विषयक रतनोजी रचित एक पद्य इस प्रकार भी है। इस सबद' में गुरु गोरखनाथ के सम्मिलन से लेकर बादशाह औरंगजेब का परवाना प्राप्त करने एवं दिल्ली जाकर चमत्कार दिखलाने तक का पूर्ण विवरण मिलता है—

रुस्तम छाळी चारता, आय मिल्या रहमाण।
बाबो मिलसो बाँसळी, सरस पूरै निसाण।
पंचा देर्या परगट्या, पच ममीजै न्याव।
पूरै गुर परगट किया, इळ जुग पो रै आव।
जुग मोह्या झुम्या किया, मिळिया गोरख राव।
पतस्या लग परगट किया, परवाणा पोंचाय।
परवाणा पतस्याह रा, सिद्ध कर लिया सा'य।
माता मीठी लापसी, (तनै) काळल करूँ कढ़ाय।
छतरी चढ़िया स्योंव कर, लाग गुरां रै पाय।
अणमे खड़े डँणखिळा, बाछ दमामा बाव।
सिद्ध पै'ली स्यामी मिल्या, (बे) दरसण आवै दाय।
कवले घ' कर जोड़सां, सासो सास सहाय।
साचाणा सुणता भया, नौरंग नेड़ा आय।
साह सुणतां समसो कर, इसरो रूप सुहाय।

तक नगारे पर ही व अपने सबद गाते हैं। बीकानेर रियासत के राज्य द्वारा प्रदत्त परवानों में भी सिद्धों के लिए नक्कारे निशान रखने की छूट का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार का उल्लेख जोधपुर तथा जयपुर आदि राज्यों के परवानों में भी यह उल्लिखित है। सिद्धों एवं सामीजी दरबारों के अतिरिक्त साधारण जनता को नगाड़ा और निशान रखकर नहीं चल सकता था।

रूमी चढ़ियो रीस कर, (का) राजा पैठी राय।
खबर मँगावो खान री, मदन झरोखा आय।
माथै मैंमद मोळियो, ऊपर घणूँ बणाय।
गरज पड़ै तो गाँवल्यो, पीर परगना खाय।
मो'र चढ़ावै मेदनी, रूपो आवै राय।
माया मत कर गीरवो, लेखो देवो लुटाय।
ताँता राखो त्याग रा, निरगुण जीता जाय।
लसगर ल्यावो नाम धर, गुरु री ग्यान सुणाय।
आसण आयो ओलियो, पतस्या नै परचाय।
रतनो(जी) गावै रीझ सूँ, स्वामी सबद सुणाय।

सिद्ध रुस्तमजी दिल्ली विजय के पश्चात् सीधे लिखमादेसर अपने गुरु श्री धनराजजी के पास लौट आये। गुरुजी ने प्रसन्न होकर उन्हें गले लगाया। रुस्तमजी ने बादशाह की पीली गुदड़ी गुरुजी को भेंट की और अपने स्थान पर आ गये। इसके बाद सिद्ध रुस्तमजी विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते रहे और लोगों को धर्मोपदेश देते रहे।

छाजूसर[1]

अन्तिम दिनों में सिद्ध रुस्तमजी अपने प्राचीन तपस्थल छाजूसर में आकर रहने लगे थे। यहीं इनकी समाधि है।

सिद्ध रुस्तमजी ने यहाँ अपने जीवन काल में ही अपना मन्दिर बनवा लिया था। इस मन्दिर के निर्माण का समस्त व्यय बादशाह औरंगजेब ने

(१) यह ग्राम रतनगढ़ शहर से लगभग चार कोस की दूरी पर पश्चिम की ओर बसा हुआ है। जसनाथ-सम्प्रदाय में यह ग्राम 'रुस्तमपुरा' के नाम से भी प्रसिद्ध है। यहाँ की बाड़ी बड़ी रमणीय है, जिसमें सुन्दर ७ मकान बने हुए हैं। मन्दिर के चारों ओर पक्की चाहर दिवारी बनी हुई है, जिसका मुख्य द्वार दक्षिण की ओर खुलता है। दरवाजे के बाहर संगीत चौकी बनी हुई है। रुस्तमजी की यात्रा के लिए अब भी दूर दूर से अनेकों यात्री 'जागरण पर्वों' पर आते हैं। रुस्तमजी के मन्दिर और यात्रियों के सम्बन्ध में यह पद्य प्रचलित है—

अणत कळा सूँ रुस्तम जाग्या, हिरदै भळक्यो हीरो।
नौरंगस्या नै परचो दीन्यो, पटै लिखायो चीरो।

बेरोक टोक फिरने का ताम्र-पत्र दिया। जिसमें लिखा है कि हिन्दुस्तान के इस छोर से उस छोर तक जसनाथी सिद्ध अपने नक्कारे निशान सहित बेरोक टोक घूम-फिर सकते हैं।

किम्वदन्ती के अनुसार सिद्ध रुस्तमजी ने बादशाह को बावन परचे दिखलाये थे।

सिद्ध रुस्तमजी की दिल्ली यात्रा विषयक रतनोजी रचित एक पद्य इस प्रकार भी है। इस सबद' में गुरु गोरखनाथ के सम्मिलन से लेकर बादशाह औरंगजेब का परवाना प्राप्त करने एवं दिल्ली जाकर चमत्कार दिखलाने तक का पूर्ण विवरण मिलता है—

रुस्तम छाळी चारता, आय मिल्या रहमाण।
बाबो मिलतो बाँसळी, सरस धूरै निसाण।
पंथा देवाँ परगट्या, पंथ मभीखे न्याव।
पूरै गुर परगट किया, छळ जुग पोरैं आव।
जुग मोह्या जुम्मा किया, मिलिया गोरख राव।
पतस्या लग परगट किया, परवाणा पाँ'थाव।
परवाणा पतस्याह रा, सिद्ध कर लिया सा'थ।
माता मीठी लापसी, (सनै) काळस करू कढाय।
छतरी चढिया स्वाँग कर, लाग गुराँ रै पाय।
अपमें खड़े उँतावळा, घाल दमामा धाव।
सिद्ध पै'ली स्वामी मिल्या, (बै) दरसण आवै दाय।
कवलै सूँ कर जोड़ताँ, सासो सास सहाय।
साधाणा सुणता मया, नौरंग नेड़ा आय।
साह सुणंताँ समझो कह, इसड़ो कृष्ण सुदाय।

तक नगारे पर ही न बजने लगा थी है। बीकानेर रियासत के राज्य द्वारा प्रदत्त परवानों में भी सिद्धों के लिए नक्कारे निशान रखने की छूट का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार का उल्लेख जोधपुर तथा उदयपुर आदि राज्यों के परवानों में भी यह उल्लिखित है। सिद्धों एवं जागीरी सरदारों के अतिरिक्त साधारण प्रजा-जन तो नगाड़ा और निशान लेकर नहीं चल सकता था।

रूमी चढ़ियो रीस कर, (का) राजा पैठी राय।
खबर मँगावो खान री, मदन झरोखा आय।
माथै मैंमद मोळियो, ऊपर घणूँ बणाय।
गरज पड़ै तो गाँवल्यो, पीर परगना खाय।
मो'र चढ़ावै मेदनी, रूपो आवै राय।
माया मत कर गीरबो, लेखो देवो लुटाय।
ताँता राखो त्याग रा, निरगुण जीता जाय।
लसगर ल्यावो नाम घर, गुरु रो ग्यान सुणाय।
आसण आयो ओलियो, पतस्या नै परचाय।
रतनो(जी) गावै रीझ सूँ, स्यामी सबद सुणाय।

सिद्ध रुस्तमजी दिल्ली विजय के पश्चात् सीधे लिखमादेसर अपने गुरु श्री धनराजजी के पास लौट आये। गुरुजी ने प्रसन्न होकर उन्हें गले लगाया। रुस्तमजी ने बादशाह की पीली गुदड़ी गुरुजी को भेंट की और अपने स्थान पर आ गये। इसके बाद सिद्ध रुस्तमजी विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते रहे और लोगों को धर्मोपदेश देते रहे।

छाजूसर[1]

अन्तिम दिनों में सिद्ध रुस्तमजी अपने प्राचीन तपस्थल छाजूसर में आकर रहने लगे थे। यहीं इनकी समाधि है।

सिद्ध रुस्तमजी ने यहाँ अपने जीवन काल में ही अपना मंदिर बनवा लिया था। इस मन्दिर के निर्माण का समस्त व्यय बादशाह औरंगजेब ने

---

(१) यह ग्राम रतनगढ़ शहर से लगभग चार कोस की दूरी पर पश्चिम की ओर बसा हुआ है। जसनाथ-सम्प्रदाय में यह ग्राम 'रुस्तमपुरा' के नाम से भी प्रसिद्ध है। यहाँ की बाड़ी बड़ी रमणीय है, जिसमें सुन्दर २ मकान बने हुए हैं। मन्दिर के चारों ओर पक्की बाहर दिवारी बनी हुई है, जिसका मुख्य द्वार दक्षिण की ओर खुलता है। दरवाजे के बाहर सगोल चौकी बनी हुई है। रुस्तमजी की यात्रा के लिए अब भी दूर दूर से अनेकों यात्री 'जागरण पर्वों' पर आते हैं। रुस्तमजी के मन्दिर और यात्रियों के सम्बन्ध में यह पद्य प्रचलित है—

अणत कळा सूँ रुस्तम जाग्या, हिरदै भळक्यो हीरो।
नौरगस्या नै परचो दीन्यो, पटै लिखायो चीरो।

दिया था। समाधि लेते समय सिद्ध रुस्तमजी ने इस मन्दिर में अपने हाथ का चिह्न (छापा) लगाया था जो अब तक मौजूद है। मन्दिर में एक भित्तिलेख भी है पर वह अच्छी तरह पढ़ने में नहीं आता है। केवल इतना ही स्पष्ट पढ़ा जा सकता है कि बीकानेर-नरेश रतनसिंहजी ने सिद्ध रुस्तमजी के आसन चढ़ाया था।

सम्भव है कि महाराजा रतनसिंहजी ने सिद्ध रुस्तमजी की मनौती के लिए लालूसर की यात्रा की हो और उस समय रुस्तमजी की समाधि पर कोई विशेष भेंट की हो। स्यात् इसी प्रकार की कोई भेंट का उल्लेख इस भित्तिलेख में हो।

रुस्तमजी केवल सिद्ध योगी ही नहीं थे, अपितु वे एक श्रेष्ठ कवि भी थे। इनके द्वारा रचित अनेकों स्फुट रचनाओं के अतिरिक्त दो ग्रंथ (१) शिव ब्यावलो (एक सौ अस्सी कड़ी में शिव पार्वती के परिणय की सुन्दर कथा है।) और (२) किसन ब्यावलो (लगभग १६० कड़ियों के इस ग्रन्थ में श्री कृष्ण के विवाह का वर्णन बहुत ही आकर्षक ढंग से किया गया है।)

सिद्ध रुस्तमजी के समाधिस्थ होने के सम्वत् का उल्लेख सबदों में नहीं पाया जाता है। पर यशोनाथ पुराण में लिखा है—

पिछत्तर के जेठ में, बीज सुदी दिन पाय।
सम्वत सतरा बरतते, रुस्तम सुरग सिधाय॥

धिन धिन हो कारीगर पूरा देवरो धार बणायो।
कली मंगायो रंग चढ़ायो सोवन कलस सिन्दूरो।
दस दस रा आवो आवैं ज्यौं री आसा पूरो।
सतजुग में पैधारो सीधो देवा हरपैद स्फूरो।
नवा किरोड़ाँ राव अपूठम, ज्यौं री आसा पूरो।
मेरी माया नहीं मसान रा भंडारे भर पूरो।
गुरु परसाद गोरख रै सरणैं सिद्ध रुस्तम है पूरो।

लालूसर स्थित रुस्तमजी की समाधि पर बना मन्दिर मुस्लिम शैली पर निर्मित है। मन्दिर की बनावट देखने से ऐसा पता चलता है कि बादशाह औरंगजेब ने इसे बनाने के लिए कारीगरों को दिल्ली से ही भिजवाया था। यही कारण है कि यह मन्दिर उच्चकोटि की स्थापत्य कला से परिपूर्ण है।

सिद्ध रुस्तमजी की जीवित समाधि के अतिरिक्त छाजूसर में निम्न-लिखित समाधियाँ और पाई जाती हैं—

(१) रुस्तमजी की घोड़ी की समाधि (२) सतीजी की समाधि ।

लेकिन इन समाधियों के विषय में कोई विशेष विवरण प्राप्त नहीं हो सका है।

पारेवड़ा[1]—

सिद्ध रुस्तमजी के साथ दिल्ली जानेवाले 'लंफरों' में पाँचोजी का भी प्रमुख स्थान था। ये वीतराग तथा उच्चकोटि के संत पुरुष थे। पाँचोजी का पूर्ण परिचय अभी तक उपलब्ध नहीं हो सका है। कुछ लोग इन्हें ब्राह्मण भी बताते हैं पर इस सम्बन्ध में ऐतिहासिक तथ्य नहीं मिल सका है। पाँचोजी सिद्ध तो थे ही साथ साथ कवि भी थे।[2] पारेवड़ा की सिद्ध परम्परा से सम्बन्धित पाँचोजी के ऐतिहासिक वृत्त में पुष्ट प्रमाण तो नहीं मिलता, पर इतना निःसन्देह कहा जा सकता है कि पारेवड़ा में श्री जसनाथजी की बाड़ी की स्थापना

(१) यह ग्राम बीकानेर डिवीजन के सुप्रसिद्ध गाँव साडवा से तीन कोस पश्चिम में स्थित है तथा बीकानेर से दिल्ली जाने वाली मोटर सड़क की बम्बू स्टेशन से २ कोस दक्षिण में है। पाँचोजी से पूर्व भी यहाँ जसनाथजी की बाड़ी थी, १८००सौ के आस-पास के बने पट्टों में जसनाथजी के 'आसण' का दाखला है। बाड़ी में सुन्दर मन्दिर है तथा जाल के अनेकों सुन्दर पेड़ हैं।

(२) कहते हैं पाँचोजी ने अनेक कविताए गुम्फित की थी, पर वे आज सब कालकवलित हो गई हैं। कुछ फुटकर पद्य अवश्य उपलब्ध है—

गई सील मुरजाद, गई सब लाज बड़ाई।
मन्दा बरसै मेह, घटी देवाँ सँकळाई।
बिरमा बचन गया'क कुबध कळजुग में आई।
झूठ, कपट, अन्याय अरथ, रत लोग लुगाई।
गया हँस गई पदमणी, गया गिवरा सिर मोती।
गई बासग सिर-मणी था, मोल अमोलक होती।
जोधा गया बाणावळी, देता दान होती दया।
पाँचोजी कह रे परमगुरु, कळजुग में ऐता गया।

पाँचोजी ने ही की थी और पाँचोजी की समाधि पर प्रतिवर्ष वैशाख शुक्ला षष्ठी को रात्रि जागरण होता है तथा सप्तमी को हवन किया जाता है। इससे यह प्रमाणित होता है कि पाँचोजी ने इस विधि का जीवित समाधि ली थी।

इस बाड़ी से सम्बन्धित एक ऐतिह्य घटना भी है जिसका यहाँ उल्लेख अप्रासंगिक न होगा।

पारेवड़ा के रूपोजी नामक व्यक्ति ने सर्व प्रथम जसनाथी धर्म स्वीकार किया था, पर वे गृह सत्ता में ही रहे। रूपोजी की स्त्री कसुमासती तथा उनके पुत्र धनदोजी और राघाजी ने खिलमादेसर जाकर सिद्ध धमराजजी से दीक्षा ग्रहण की। सिद्ध हो जाने के कारण इन्होंने ठाकुर को जमीन का कर देने से इन्कार कर दिया, पर ठाकुर कर प्राप्त करने के लिए यथा सम्भव उचित अनुचित उपाय कार्यरूप में लाने पर उतर आया। तब इन्होंने ठाकुर से कहा कि हम अपने हाथों किसी भी स्थिति में आपको कर नहीं देंगे। तुम भले ही अपने हाथ से धान (अन्न) निकाल कर ले जावो। उस समय भूमि-कर के रूप में अन्न ही दिया जाता था।

ठाकुर की आज्ञा से ठाकुर के कामदार धनदोजी और राघाजी के घर जाकर, उनकी 'कोठी' में से अन्न निकाल-कर लेजाने लगे। अचानक ही ठाकुर का इकलौता लड़का तथा घोड़ी बेहोश होकर गिर पड़े। ठाकुर घबराया अपने कामदारों को अन्न लाने से रोक दिया और सिद्धों से अपने पुत्र तथा घोड़ी को स्वस्थ कर देने की प्रार्थना की।

सिद्धों ने कहा यदि आप पारेवड़ा के समस्त सिद्धों से अन्न वसूली की छूट आज से कर दें तो आपका पुत्र और घोड़ी जीवित हो सकती है। कहते हैं जैसे ही ठाकुर ने अन्न-वसूली निषिद्ध करने के लिए पट्टा[1] लिखकर दिया, पुत्र और घोड़ी दोनों ही पूर्ण स्वस्थ हो उठ बैठे।

यहाँ पारेवड़ा में पाँचोजी के अतिरिक्त सावोजी की एक और समाधि है। सावोजी के विषय में इस प्रकार कहा जाता है कि एक बार सावोजी 'जसनाथजी के जागरण' में सम्मिलित होने के लिए ऊँटासर, ग्राम जा रहे थे। रास्ते में भूतों से लड़ने पर उनका हृदय विदीर्ण हो गया। लोगों ने उनकी

(१) पारेवड़ा के सिद्धों के पास उक्त पट्टा अब भी मौजूद है।

समाधि वहीं ऊँटालड में देदी। कहते हैं छै मास के बाद सादोजी ने अपनी सोती हुई दादी को दर्शन देकर कहा कि 'मेरी समाधि पारेवड़ा में होनी चाहिए, क्योंकि मैं जीवित हूँ।' दादी ने कहा—'तुम्हारा शरीरान्त हुए तो छै मास हो गये हैं। अब तक तो तुम्हारी हड्डियाँ भी गल चुकी होंगी। अब पारेवडा में समाधि कैसे दी जा सकती है?' प्रत्युत्तर में सादोजी ने कहा बताते हैं कि 'मैं मुर्छित अवस्था में अवश्य हूँ, पर मेरे शरीर में खून का दौरा अब भी हो रहा है। छै महीनों में मेरी हजामत खूब बढ़ गई है। तुम 'ऊँटलड' आओ, और मुझे खोदकर निकालो। जिस समय तुम मुझे खुदवाओगी, उस समय मेरी बाँई कनपटी पर फावडा लगेगा और उसमें खून निकलेगा। कहते हैं ऐसा ही हुआ। वहाँ से उन्हें पारेवडा लाया गया और उनकी हजामत बनवा कर स्नान कराया गया तथा समाधि दे दी गई। उनकी समाधि पर अब भी एक छोटा-सा मन्दिर है जो मुख्य मन्दिर के ठीक सामने है।

बीनादेसर[1]—

इस सुन्दर ग्राम में तीन जीवित समाधियाँ हैं। यहाँ श्री जसनाथजी महाराज की सुन्दर बाडी है तथा श्री नाथजी का एक सुन्दर मन्दिर भी है। बाड़ी के चारों ओर परकोटा तथा आगे दरवाजा बना हुआ है। बाडी में जाल के कई सुरम्य पेड भी हैं।

जीवित समाधियाँ इस प्रकार हैं—

(१) बींजोजी (बींजनाथजी) इन्होंने बीनादेसर ग्राम में एक बहुत ही संगीन कूआ बनवाया था, जब कूआ बनकर पूर्ण रूप से तैयार हो गया तो बींजोजी ने श्री रुस्तमजी को कूँआ दिखलाने के हेतु आमन्त्रित किया। कूएँ

(१) यह ग्राम बीकानेर-दिल्ली रेल्वे लाइन की राजलदेसर स्टेशन से लगभग ३ कोस उत्तर की ओर स्थित है।

बादशाह औरंगजेब द्वारा रुस्तमजी को प्रदत्त की गई पीले पाट की वह 'गुदड़ी' रुस्तमजी के पहनने का टोप और बागा आजकल इसी ग्राम की जसनाथजी की बाडी में रखा हुआ है, जिसका दर्शन जागरण आदि पर्वों पर ही करवाया जाता है। जसनाथ-सम्प्रदाय में माने जाने वाले मुख्य जसनाथी धामों में बीनादेसर भी एक धाम माना गया है।

को देखकर श्री रुस्तमजी ने कहा — इसका पानी तो खारा है।' ऐसा कहने मात्र से ही सचमुच पानी जहर-सा कडुवा हो गया। यह देख भीलोजी को बड़ा दुःख हुआ। श्री रुस्तमजी ने उनको दुःखी देखकर कहा—'भाई! दुःख करने की कोई बात नहीं, तुम मुझ से छिपाकर दिल्ली से द्रव्य लाये थे और उसी द्रव्य से यह कूँआ बनवाया लेकिन तुम्हें समझना चाहिए कि ऐसी माया से किया हुआ कार्य सुफलदायक नहीं हो सकता; ऐसा तामसिक द्रव्य सत् कार्यों के उपयोग में नहीं लाया जा सकता। इसीलिए तो मैंने भी केवल गुरुजी के लिए गद्दी और नारियल मात्र ही स्वीकार किया था और यही कारण था कि हम बादशाह के समक्ष सफलता पूर्वक चमत्कार दिखा सके।'

भीलोजी की समाधि वि० सं० १७७५ के बाद हुई है; क्योंकि भीला देसर की जमीन के पट्टों में उपरोक्त सम्वत् ही अंकित मिलता है, जो भीलोजी के नाम से बने हुए हैं।

(२) रामनाथजी — ये विरक्त महात्मा थे।

(३) लालनाथजी — ये सारण जाति के सिद्ध थे तथा इनकी एक अलग से बाड़ी भी है। लालनाथजी के नाम पर यहाँ एक कच्चा तालाब भी है जिसकी मिट्टी निकालने से तथा यहाँ भाड़ू लगाने से बवासीर का रोग शांत होजाता है।

मरपालसर[1]—

यहाँ खेतोजी परम तपस्वी सिद्ध पुरुष हो चुके हैं। रुस्तमजी के साथ दिल्ली जानेवाले दस सम्पर्कों में खेतोजी प्रमुख थे। इनका जन्म मंडावासणी (डीडवाना) में हुआ था। राजलदेसर तथा मूर्णों इनके विशेष तपस्या क्षेत्र रहे हैं। इनके नानकजी तथा नारायणजी नाम के दो लड़के हुए। खेतनाथजी ने जब जीवित समाधि लेने का निश्चय किया तो उनकी स्त्री ने जाजूसर का

---

(१) यह ग्राम रतनगढ़ शहर से चार कोस पश्चिम में बसा हुआ है। राजलदेसर से भी निकट पड़ता है। उपरोक्त जीवित समाधियाँ रावाना गाव के तालाब के पास हैं जो राजलदेसर रतनगढ़ की रेल्वे लाइन के पास हैं यहाँ पर खेतोजी की समाधि पर एक छोटासा मन्दिर भी है। निश्चित तिथियों पर मरपालसर के सिद्धों द्वारा यहाँ जागरणादि पर्व मनाये जाते हैं।

कर सिद्ध रुस्तमजी से निवेदन किया कि महाराज ! कुछ काल के लिए आप उन्हें (खेतोजी) समाधि लेने से रोक दें तो उचित होगा, क्योंकि बच्चे अभी छोटे हैं।

रुस्तमजी ने आकर खेतनाथजी को समाधि लेने से रोका, पर खेतोजी ने अस्वीकार करते हुए कहा—'यह बात किसी के वश की नहीं है। समाधि लेने के लिए मालिक ने हुक्म दे दिया है, जो अब रोका नहीं जा सकता। फलतः रुस्तमजी के इन्कार करने पर भी खेतनाथजी ने समाधि ले ली।

भरपाळसर में खेतनाथजी की समाधि के अतिरिक्त तीन जीवित समाधियाँ और हैं—

(१) धनानाथजी (२) सिम्भूनाथजी (३) सुन्दरनाथजी।

इनका विशेष परिचय प्राप्त नहीं हो सका है।

झँझेऊ[1]—

यहाँ तीन जीवित समाधियाँ बताई जाती हैं —

(१) सुरतोजी— ये सिद्धराज रुस्तमजी के साथ दिल्ली गये थे। दस 'लफरों' में इनका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है।

यशोनाथ पुराण में लिखा है कि सिद्ध पालोजी ने सुरतोजी के झँझेऊ में प्रकट होने की भविष्यवाणी की थी।[2]

सुरतोजी ने झझेऊ में कूँआ बनवाया।

---

(१) यह ग्राम सूडसर स्टेशन से लगभग ३ कोस की दूरी पर उत्तर की ओर स्थित है।

(२) सुरतनाथ सिद्ध प्रकट हुवेला,
झझेऊ के वास वसैला,
जागी जोत जुगो जुग जागै,
रुस्तम सिद्ध प्रगटे आगे,

(वही पृष्ठ स० ९३)

एक बार जेसोजी[1] जो खिसमादेसर के सिद्ध पुरुष बताये जाते हैं खिसमादेसर जाते हुए मैंमेड में सुरतोजी के पास आ ठहरे और उन्होंने सुरताजी द्वारा निर्मित कूआ देखने के लिए कहा। सुरताजी ने वह कूँआ जेसोजी को दिखलाया। सराहना करते हुए जब जसाजी ने सुरताजी से कूएँ का नाम पूछा तो सुरताजी ने कहा— इसका नाम सुरतसागर है।

सुरतोजी की महत्त्वाकाँक्षा पूर्ण बात सुनकर जेसोजी ने उसी प्रकार कहा— 'सुरतसागर, राख को आगर"

जसोजी के ऐसा कहने से कूएँ में पानी की जगह राख हो गई।

कुछ दिन बाद जेसोजी के पुत्र हरनाथजी मैंमेड आये। सुरतोजी ने उनको पिछला वृत्तान्त सुनाकर जब कूँआ दिखाया तब हरनाथजी ने कहा— सुरतसागर जल को आगर महल मारो जेसियो[2] सागर।"

हरनाथजी के ऐसे कथन से कूआ पानी से भर गया।

सुरतोजी के द्वारा रचित सारगर्भित स्फुट रचनाएं भी प्राप्त होती हैं। इनका समाधि काल और अन्य दो जीवित समाधियों का विवरण अब तक उपलब्ध नहीं हो सका है।

---

(१) सम्भव है ये जेसोजी बाऊ वाले ही हों क्योंकि इनका भी सुरतोजी के समकालीन होना सिद्ध है।

(२) जेसोजी एवं हरनाथजी का खिसमादेसर में समागम हुआ वहाँ जेसोजी न सम्मेड की बात मालूम होने पर अचानक ही हरनाथजी से कहा— 'हरनाथजी! मरो बाबा (हरनाथजी नाड़ियाँ भर दीजिये।

हरनाथजी ने कहा— किस चीज से?

जेसोजी न कहा— कीड़ मकोड़ छत्तीस प्रकार के वायु विकार आदि से।"

ऐसा कहने से हरनाथजी रोग ग्रसित हो गये।

थोड़ी देर बाद जब जसोजी पेशाब करने गये। तब हरनाथजी ने कहा— "छोड्या कपाट! (मूत्र की धार लगातार बहती ही रहे।)

ऐसा कहने पर जसोजी की पेशाब की धार बन्द नहीं हुई। अन्त में दोनों को समझौता ही करना पड़ा।

कल्याणसर[१]—

यहाँ केवल एक ही जीवित समाधि है—

(१) ठुकरोजी—ये उक्त सुरतोजी के सगे भाई थे। रुस्तमजी के साथ दिल्ली जानेवाले 'दस लफरों' में इनका नाम भी बड़े आदर के साथ याद किया जाता है। इन्होंने कल्याणसर से कुछ दूर जगल में जीवित समाधि ली। इनकी भी कुछ स्फुट रचनायें प्राप्त होती हैं।

लिखमणसर[२]—

यहाँ विरमोजी की जीवित समाधि है। दिल्ली जानेवाले 'दस लफरों' में ये अग्रगण्य थे। इनके पवित्र समाधिस्थल पर सुन्दर मन्दिर और बाड़ी है। यहाँ परम्परानुसार जागरणादि पर्व मनाये जाते हैं।

बेरासर[३]—

यहाँ दो जीवित समाधियाँ हैं—

(१) डावोजी—गाँव के लोगों के कथनानुसार ये भी रुस्तमजी के साथ दिल्ली गये थे पर इनका दिल्ली जाना संशयास्पद ही है। इनके समाधिस्थ होने की तिथि अज्ञात ही है।

(२) दूसरी समाधि के बारे मे भी कोई विवरण प्राप्त नहीं हो सका है।

बम्बू[४]—

यहाँ दो जीवित समाधियाँ हैं—

(१) पदमनाथजी—बम्बू निवासियों के कथनानुसार ये सिद्ध रुस्तमजी के साथ दिल्ली गये थे पर 'दस लफरों' मे इनका नामोल्लेख नहीं मिलता। यह भी अज्ञात ही है कि इन्होंने कब जीवित समाधि ली।

(२) मादोजी—ये उक्त पदमनाथजी के भाई थे। बम्बू में उक्त दोनों

---

(१) यह ग्राम बणीसर स्टेशन से चार कोस दक्षिण की ओर बसा हुआ है।

(२) यह ग्राम लाडनू से पश्चिम दिशा मे स्थित है।

(३) यह ग्राम सांडवा से एक कोस की दूरी पर उत्तर की ओर है।

(४) यह ग्राम बीकानेर डिविजन के प्रसिद्ध ग्राम सांडवा के पास मोटर सड़क पर स्थित है।

एक बार खेसोजी[1] जो सिलमादेसर के सिद्ध पुरुष बताये जाते हैं सिलमादेसर जाते हुए मैंमेऊ में सुरतोजी के पास आ ठहरे और उन्होंने सुरतोजी द्वारा निर्मित कूँआ देखने के लिए कहा। सुरतोजी ने वह कूँआ खेसोजी को दिखलाया। सराहना करते हुए जब खेसोजी ने सुरतोजी से कूँए का नाम पूछा तो सुरतोजी ने कहा — इसका नाम सुरतसागर है।'

सुरतोजी की महत्वाकाँक्षा पूर्ण बात सुनकर खेसोजी ने उसी प्रकार कहा— 'सुरतसागर राख को आगर"

खेसोजी के ऐसा कहने से कूँए में पानी की जगह राख हो गई।

कुछ दिन बाद खेसोजी के पुत्र हरनाथजी मैंमेऊ आये। सुरतोजी ने उनको पिछला वृत्तान्त सुनाकर जब कूँआ दिखाया तब हरनाथजी ने कहा— सुरतसागर जल को आगर मरस मारो खेसिया[2] सागर।"

हरनाथजी के ऐसे कथन से कूआ पानी से भर गया।

सुरतोजी के द्वारा रचित सारगर्भित स्फुट रचनाएं भी प्राप्त होती हैं। इनका समाधि काल और अन्य दो जीवित समाधियों का विवरण अब तक उपलब्ध नहीं हो सका है।

---

(१) सम्भव है ये खेसोजी बाऊ वाले ही हों क्योंकि इनका भी सुरतोजी के समकालीन होना सिद्ध है।

(२) खेसोजी एवं हरनाथजी का सिलमादेसर में समागम हुआ वहां खेसोजी ने मझेऊ की बात मालूम होने पर अचानक ही हरनाथजी से कहा— 'हरनाथजी! मरो गाली' (हरनाथजी बाल्यकाल भर जीवित।

हरनाथजी ने कहा— 'किस चीज से ?

खेसोजी ने कहा— "कोढ़ कलंक छत्तीस प्रकार के वायु विकार आदि से।"

ऐसा कहने से हरनाथजी रोग ग्रसित हो गये।

थोड़ी देर बाद जब जसोजी पेशाब करने गये। तब हरनाथजी ने कहा— "होज्या जबूद! (मूत की धार लगातार बहती ही रहे।)

ऐसा कहने पर जसोजी की पेशाब की धार बन्द नहीं हुई। अन्त में दोनों को समझौता ही करना पड़ा।

नहीं है, पूनरासर वालों का तो यह साधिकार कहना है कि—सिद्ध पालोजी सिद्धाचार्य से ही योग दीक्षित हुए थे, किन्तु कुछ लोग इस बात को युक्ति संगत नहीं मानते, पर अब तक यत्किंचित 'जसनाथ सम्प्रदाय' के प्रकाशित साहित्य इतिहास में पालोजी को सिद्धाचार्य का शिष्य ही माना है। यशोनाथ पुराण में तो इस मत का स्पष्ट उल्लेख है ही, इसके अतिरिक्त 'सिद्ध जाति वर्णन'[1] 'चमत्कार को नमस्कार'[2] आदि मुद्रित परचों में भी उक्त मत की पुष्टि हुई है। वैसे बीकानेर-मण्डल के चार मुख्य 'जसनाथी धामों' में पूनरासर भी एक मुख्य धाम माना गया है।

पूनरासर के सिद्धों के कथनानुसार पालोजी को बचपन में गुरु गोरखनाथजी का साक्षात्कार हुआ था।[3] गोरखनाथजी के साक्षात्कार के बाद

'पूनरा' नामका गोदारा जाट था। इससे पूर्व यहाँ 'जाणियों का वास' हुड्डो का वास' और 'साँखलो का वास' था। पालोजी के पिता चूहडजी जाणियो के वास के मुखिया थे। बहुत समय बाद यहाँ पर हनुमानजी के मन्दिर की स्थापना हुई।

यहाँ जसनाथजी की बाडी में प्रतिवर्ष चैत्र, आश्विन तथा माघ के पर्व बड़ी धूमधाम के साथ मनाये जाते हैं। इन अवसरो पर हवन आदि शुभ कार्य सम्पन्न होते हैं तथा पालोजी की समाधि के दर्शनों के लिए अनेको यात्री यहाँ आते रहते हैं। पूनरासर की बाडी में वे चारो जाल के वृक्ष अब भी विद्यमान हैं, जिन्हें पालोजी ने अपने बैल बाँधने के लिए सूखे खूँटे के रूप में रोपे थे। यहाँ खेमा खाती का बनाया हुआ पालोजी की समाधि पर एक सुन्दर मन्दिर भी है तथा जीवित समाधियो पर और भी छोटे २ देवालय हैं। मुख्य मन्दिर का जीर्णोद्धार पिछले दिनो करवाया गया था। बाडी के पीछे काफी गोचर भूमि छोडी हुई है, जिसमें एक कच्चा तालाब भी बना हुआ है।

(१) राव शिवनाथसिंह, हिन्द सन्देश प्रेस सोजती गेट, जोधपुर।

(२) सिद्ध गुणेशनाथ, महन्त पाँचला सिद्धो, का सम्वत् २००९ भादवा सुदी १४ को प्रकाशित, जो हमारे संग्रह में है।

लिखमादेसर के सिद्धों व उनकी परम्परा के लोगों का कथन है कि पालोजी हासोजी से दीक्षित हुए थे।

(३) धिन-धिन वेळा, धिन घडी, धिन म्हारा नाथ निकळगजी आया।
भगवीं टोपी भूर कामळियो गुरु गोरख आय जगाया।
अतरा दिन म्हे भरमें में भूल्या, सत रो मारग पाया।

देकर कहा—'पालोजी को ठहराना।' जब जीयोजी ने विशेष आग्रह किया तो पालोजी वहीं ठहर गये और इसी स्थान पर बारह वर्ष तक तप करते रहे।[1]

इस तपस्या के बाद वे दक्षिण की ओर बसे मूँडमर गये। वहाँ अब भी जसनाथजी की बाड़ी है।

वहाँ से पालोजी 'सींणीवाले' गाँव पहुँचे। वहाँ उन्होंने 'लेधा' तथा 'बिसू' जाति के जाटों को जसनाथी बनाया। उस समय लेधा में हासो नाम का व्यक्ति मुख्य था पर वह कोढ़ी था, जिसे पालोजी ने निरोग कर दिया। सींणीवाला एवं बस्त्या ग्राम होते हुए सिद्ध पालोजी माल गाँव पहुँचे। माल गाँव का धीरा गहोलिया बड़ा धनवान् था। उसके विशेष आग्रह पर पालोजी ने अपना पहला चतुर्मास वहीं पर किया। कहते हैं एक दिन धीरा गाडी तथा बैलों की जोड़ी खरीद कर लाया और पालोजी से कहने लगा—'गुरुदेव! मेरी गाडी तथा बैलों की जोडी तो देखो।' इस पर पालोजी ने कहा—'आगामी वर्ष से बडा भयंकर दुष्काल पडेगा।[2] अतः तुम्हारे बैल और गाडी का खरीदना मुझे उचित नहीं जान पडता।' इस कथन को सुनकर भी धीरा सचेत न हो सका, पर सरकारी कामदार लोढा महाजन (नागौर) सतर्क हो गया। उसने अन्न तथा घास का पर्याप्त संग्रह कर लिया।

---

(१) वहाँ अब भी इस तपस्या की स्मृति में बाडी बनी हुई है। यह बाडी पूनरासर ग्राम में पश्चिम की ओर है।

(२) इकावनो, बावनो तेपनो चोपन की चाल।
गाधर रै'सी घूमता, हड्ड जड़ी हठ नाल॥
गाडीं होसी गाडली, ओवण होसी ईंम।
बाँका नर बिकावसी, मतमानी तू रीस॥
अन साँचो'र घास पछेटो, पीयो दूधो भागो।
मिरा-मिरियाँ को तेज हवैलो, रूठो ईसर बावो॥
आद सिद्ध पालोजी बोलै (धीरा) जाग सको तो जागो।

उपरोक्त पद्य तथा कथानक ऐतिहय से दूर पडता है, पाठक इस पर विशेष तर्क न करें।

पाल्होजी परिवार से विरक्त होकर तपस्या करने लगे। कहते हैं कि तपस्याकाल में प्रतिदिन उनकी माता उनको भोजन देकर आती थी। एक दिन पाल्होजी की माता किसी विशेष कारणवश भोजन न ला सकी और अपनी पुत्रवधू (सुरजनजी की स्त्री) को भोजन देकर भेज दिया। सास की आज्ञानुसार सुरजनजी की स्त्री उपेक्षित भाव से भोजन लेकर पाल्होजी के पास गई और रास्ते में सोचती गई कि जब यह विरक्त ही हो गया है तो फिर घर आकर भोजन क्यों न कर जाया करे? क्यों ढोंग करता है। इसे इस प्रकार कब तक भोजन दिया जा सकेगा? सुरजनजी की स्त्री भोजन देकर आ गई। इधर समय पाकर जैसे ही पाल्होजी की माता रसोईघर में घुसी तो उसे उन बर्तनों में भोजन वैसे ही परोसा हुआ मिला जिनमें वह सदैव पाल्होजी के लिए भोजन परोसकर ले जाया करती थी। माता ने सुरजनजी की स्त्री से पूछा—'क्या तू भोजन देकर नहीं आई?' बहू ने कहा—'मैं तो अभी २ पाल्होजी को भोजन देकर आई हूँ।' माता ने कहा— तो! इन बर्तनों में यह भोजन कहाँ से आया? बहू ने सासजी को विश्वास दिलाने के कई प्रयत्न किये पर माता को विश्वास न हो सका। वह पुनः भोजन लेकर पाल्होजी के पास स्वयं गई पर पाल्होजी भोजन लेकर आती हुई माता को देखते ही आगे दौड़ पड़े पाल्होजी को दौड़ते देखकर माता ने पाल्होजी के बालमित्र (बाद में शिष्य) वील्होजी को आवाज

छोडै कुम्भ तारण दत सिधारण गुरु गहाय केशाँ सूँ सिर झुलाया।
अम्मम बीज लियो अनूपा, मेघा अम्बर छाया।
अमस्या पून दिखावै दिखे इन्द बधावै पाया।
कीड़ी रे ज्यूँ राह सुभैता कोगज सत रो पाया।
बाप विराण के पासे अस्यो दाता मैं सीस निवाया।
गोंदक हाथै साई गाया सरस गुराँ रै आया।
गुरु जसनाथ दाता न्याय करे अन्याय मे मारे भूखा पाखी आये।
गुरु जसनाथ रै फरमाइये, पाल्होजी गुरु रो ग्यान बतायौ।

उक्त 'सबद' में गुरु जसनाथजी के दर्शनोपरान्त सिद्ध पाल्होजी ने अपने भावों के उद्गार प्रकट किये हैं।

हो गये। समीपवर्ती क्षेत्र की भूखी जनता जब पालोजी के पास आई, तब उन्होंने कहा—'मुझे तो अन्न कहीं दिखाई नहीं पड़ता है, फिर भी भगवान् रक्षा करेंगे।'

सिद्ध पालोजी भूखी जनता की उदरपूर्ति के लिए अपनी गुदड़ी के नीचे से सबको आवश्यकतानुसार अन्न वितरण करने लगे। यह क्रम कुछ समय तक चलता रहा। एक दिन धीरा गहोलिया तथा दूसरे लोगो ने पालोजी से निवेदन किया कि 'महाराज ! हमें कोई काम धन्धा बतलाइये—बिना श्रम के आपका अन्न खाना हमें उचित नही जँचता।"

तब पालोजी ने लोगों की श्रम निष्ठा देखकर कहा—"तालाब खोदना शुरु करदो।"

धीरा गहोलिया तथा अन्य लोगों ने कहा—"बिना उपकरणों के तालाब कैसे खोदें ?"

लोगों की विवशता देखकर पालोजी ने अपने वशीभूत प्रेतों को जागृत करके कहा—"अब तुम्हारी मोक्ष का समय आ गया है। तुम तालाब खोदने के साधन जुटाओ तथा लोगों के लिए छाया की व्यवस्था करो।"

आज्ञा पाकर प्रेतों ने जालोर से सत्ताईस जाल (पीलू) के पेड़ लाकर वहाँ लगा दिये और तालाब खोदने के अन्य साधन भी जुटा दिये।

लोग दिन भर जितनी मिट्टी खोदते, रात में प्रेत उसे 'हरी-म्हैं-मदाणा' ग्राम के पास लेजाकर डाल देते।

तालाब[1] के सम्पूर्ण होने पर सिद्ध पालोजी ने अपने योग-बल से

---

(१) गाँव के समीप ही पश्चिम की ओर यह तालाब है। तालाब की लम्बाई उत्तर-दक्षिण ४७½ पावडा है। इस नाप से तालाब की गहराई २३¾ पावडा होती है। तालाब के बीचो बीच बम्बी है, जिस पर पानी रुके रहने के लिए पक्का चबूतरा (दडदूम्बा) है। तालाब के तल में बडे बड विशाल पत्थर जडे हुए हैं। तालाब चारों ओर पत्थरो से मजबूती के साथ बडे कलापूर्ण ढग से बन्धा हुआ है। एक पत्थर तालाब की पूर्व-दक्षिण स्थित सीढियो में लगा हुआ है, जो ग्यारह फुट लम्बा, ग्यारह फुट चौडा और छै फुट मोटा है। इस एक ही पत्थर पर नौ सीढियां बनी हुई हैं, जिनकी कटाई एक फुट की है। इस पत्थर का वजन सैकडों मन से कम नहीं।

इस चतुर्मास के बाद सिद्ध पाबोजी भादवाद तथा कोडीट ग्रामों से होते हुए बापरासर पधारे। बापरासर निवासियों ने पाबोजी का बड़ा स्वागत सत्कार किया और अपने जलाभाव के कष्ट को दूर करने की प्रार्थना की। अत: पाबोजी ने अपनी दिव्य दृष्टि से भूमि में पाँच पुरुष (पुरुषायाम) नीचे इसी कूएँ की सुदृढ़ नाल बताकर कहा कि— उस नाल पर एक शिला रखी हुई है उसे हटा देने पर कूएँ की नाल निकल आवेगी। इस कूएँ का पानी मीठा है।'

यहाँ से सिद्ध पाबोजी पाऊ[1] आये। पाऊ ग्राम से पूर्व की ओर एक टीबा है। टीबे की ढलान में खेजड़ी के नीचे आकर पाबोजी बैठ गये। यहाँ विचरने वाले ग्वालों ने देखा कि सूरज के काफी ढलने पर भी खेजड़ी की छाया आगे नहीं बढ़ पाई है—साधु के ऊपर ही हो रही है। ग्वालों को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ!

ग्वालों से असम्भव तथा विलक्षण बात सुनकर ग्रामवासी भी वहाँ गये। उन्हें भी यह देखकर अचम्भा हुआ। पाबोजी वहाँ से उठकर पाऊ के उस स्थान पर पहुँचे जहाँ वर्तमान में पाबोजी की बाड़ी है। उस समय पाऊ ग्राम यहाँ से कुछ दूर पर बसा हुआ था। गाँव वालों ने पाबोजी से कहा— महाराज यहाँ तो प्रेत रहते हैं यदि आप यहाँ रहेंगे तो आप पर कोई विपत्ति आजायेगी अत: आप ग्राम में पधारें। सिद्ध पाबोजी ने उत्तर दिया कि— हमारा आसन तो इसी जगह पर रहेगा। गुरुदेव की ऐसी ही अन्त:प्रेरणा है।

रात होते ही प्रेतों ने अपने मायिक चमत्कार दिखाने शुरु कर दिये और सारी रात दिखाते रहे पर पाबोजी उन भयंकर दृश्यों से तनिक भी विचलित नहीं हुए। अपितु सिद्ध पाबोजी ने अपने योगबल से प्रेतों को अपने वश में कर लिया।

× × × ×

पाबाजी की भविष्यवाणी के अनुसार अकाल पर अकाल पड़ने आरंभ

---

(१) यह ग्राम नागौर शहर से पूर्वोत्तर दिशा में स्थित है। चूनरावर के बाद सिद्ध पाबोजी का कार्यक्षेत्र पाऊ ग्राम ही रहा था जिसका पूर्ण परिचय पाबोजी के पाऊ प्रवास में तथा यथास्थान दिया गया है।

उसी दिन से उक्त तालाव 'हॉसोव्याव' नाम से पुकारा जाने लगा। तालाब पर स्थित कीर्ति-स्तम्भ को देखने से जाना जाता है कि सिद्ध पालोजी ने तालाव की प्रतिष्ठा पर अनेकों सिद्धां एव सतपुरुषों को आमन्त्रित किया था।

कुछ काल तक चाऊ मे रहने के बाद जब पालोजी, हॉसोजी आदि वहाँ से प्रस्थान करने लगे तो चाऊ निवासियों ने उनसे वहीं रहकर धर्म-साधना करने की विनती की। इस पर पालोजी ने कहा—"सत किसी की बपौती नहीं होते, वे विचरते ही भले हैं। आप लोगों की मेरे प्रति निष्ठा है तो आप पाँच निषेधों और तीन प्रेरणाओं का पालन कर अपने जीवन मार्ग को प्रशस्त बना लेवें।"

चाऊ निवासियो ने कृतज्ञता पूर्वक पॉचों निषेधो और तीनो प्रेरणाओ के पालन करने की प्रतिज्ञा की।

निषेध —

(१) न्हाई—का कार्य गॉव की सीमा मे न किया जाय।

(२) चूने की भट्टी न जलाई जाय।

(३) शराब न निकाली जाय।

(४) नील का माट न चढ़ाया जाय।[1]

(५) गाँव की सीमा मे शिकार न खेली जाय।

प्रेरणा —

(१) वर्षा होने पर पहली बार हल जोतने जाओ तो हमारी बाडी मे पक्षियों के लिए चुग्गा अवश्य डालना।

(२) खेत की उपज मे से सवा मन अन्न पक्षियों के चुग्गे के लिए बाड़ी मे प्रदान करना।

(३) पहली मथनी का घृत हवन निमित्त बाडी में देना।

पालोजी गॉव वालों को आत्मोन्नति के अनेक उपदेश देकर लिखमा-देसर की तरफ चल पडे। उनके साथ बाघरासर वाला खेमा खाती आदि सैकड़ों

---

(१) रगरेज लोग एक विशेष क्रिया से मिट्टी की एक बडी मटकी में नील को गलाते हैं जिसमें असख्य जीवो की हत्या होती है।

चारों ओर गंगाजल की वर्षा करके इसे ऊपर तक भर दिया और प्रेतों को इस तालाब में स्नान करने की आज्ञा दी। स्नान करने से प्रेत तो मुक्त हो ही गये पर सबत्र सुखद वर्षा हो जाने से लोग भी अपने अपने गाँवों को चले गये।

तालाब के निर्माण की बात सुनकर सिद्ध हाँसोजी भी इसे देखने के लिए आये।[1] हाँसोजी रास्ते में जब 'जायोषा' नाम के कुएं पर अपने बैलों को पानी पिलाने लग गये तब जायोषा वासियों ने सिद्ध हाँसोजी से उपहास करते हुए कहा— 'बाबोजी कुएं का पानी तो खारा है।"

हाँसोजी अपने बैलों को बिना पानी पिलाये ही वापस ले आये।

पाऊ में प्रविष्ट होते ही जब दक्षिण की ओर के कुएं पर अपने बैलों को पानी पिलाने लगे तब लोगों ने विनम्रतापूर्वक कहा— सिद्धजी महाराज! अपने बैलों को पानी तो भले ही पिलाइये पर पानी खारा और विपैला (विषाइमणा) है।

श्री हाँसोजी ने कहा— 'सारा खारा पानी तो जायोषा में रह गया है इस कुएं का पानी तो मीठा ही है।'

सिद्ध हाँसोजी के वचनों से जायोषा के मीठे पानी का कुआ खारे पानी का और पाऊ के कुएं का खारा पानी मीठा हो गया।

' सिद्ध हाँसोजी का आगमन सुनकर पाबोजी आदर सत्कार के लिए उनके सम्मुख गये और उन्हें तालाब पर लिवा लाये। सिद्ध हाँसोजी ने सुन्दर और सुदृढ़ तालाब को देख अत्यन्त हर्ष प्रकट करते हुए पाबोजी को तीन बार धन्यवाद दिया। सिद्ध पाबोजी ने उल्लसित होकर हाँसोजी से कहा— इस ग्राम के सेवक तो हमारे हैं और तालाब आपका है।"

आश्चर्य है कि आधुनिक काल के साधन सुलभ न होने पर भी यह पत्थर किस प्रकार मंगाया गया। तालाब के पूर्व की ओर एक कीर्ति स्तम्भ अपनी विशालता लिए खड़ा है जिस पर पच देवों की सुन्दर कलापूर्ण आकृतियां अंकित हैं। कीर्ति स्तम्भ पर लेख भी खुदा हुआ है जिसमें 'पाबू' ही स्पष्ट पढ़ा जाता है। कीर्ति स्तम्भ का पत्थर जोधपुर के पत्थर जैसा है।

(1) ऐसा भी मत है कि उस समय हारोजी भी पाऊ आये थे। पाऊ में हारोजी की बाड़ी भी है।

करने पर खेमा से पालोजी ने कहा—"बन्ध तोडने के लिए, जिसे अचिन्त्य शक्ति का निर्देश होगा, वही तोड़ेगा।"

मन्दिर बन चुकने के बाद खेमा खाती पालोजी की आज्ञा पाकर कलई का पत्थर लाने के लिए नागौर चला गया। पीछे से 'जूण' तोड़ने के लिए दैविक प्रेरणा हुई। पालोजी ने सोचा खेमा तो यहा नहीं है। उन्होंने ऊँचे स्वर से तीन बार खेमाको आवाजें दी।

खेमा नागौर के माही दरवाजे[1] में प्रवेश कर ही रहा था कि उसे पालोजी की पुकार सुनी। खेमा किसी अज्ञात शक्ति द्वारा प्रेरित होकर तत्काल कतरियासर आ पहुँचा पर इससे पहिले ही पालोजी ने सिद्धाचार्य की झौंपडी के 'जूण' तोड डाले।

'जूण' तोडते ही पालोजी पर अकस्मात 'गैबी' छुरी का प्रहार हुआ। पालोजी विक्षत होकर गिर पडे। लोगों ने पालोजी को समाधि वहीं देने का निश्चय प्रकट किया पर खेमा ने यह कह कर विरोध किया कि सिद्ध पालोजी ने पूनरासर में ही समाधि देने के लिए मुझ से कहा था।

समाधि को लेकर परस्पर विवाद खडा होगया अन्त में आकाशवाणी[2] के अनुसार पालोजी को पूर्व निश्चित स्थान पर समाधि देने के लिए उनकी देह गाडी में रख कर पूनरासर में ले आये[3]।

रास्ते मे 'बींजेरा बास, के लोगों ने अपने गॉव के बीच से शव को ले

(१) कुण्डिया सारस्वत समाज के आदि पुरुष सरसजी महाराज की माही नामकी एक सांड(ऊँटनी) "तत्कालीन नागौर के नागवशी क्षत्रिय राजा की ओरसे उन्हें भेंट की गई थी" के नाम पर ही इस दरवाजे का नाम माही दरवाजा पडा। माही सांड की मृत्यु इसी स्थान पर हुई थी।

(२) वाणी एक आकाश सुणाई, पूनरासर ले जाओ भाई।
चार जाळ ऊगी सुभकारी, जाके मध्य समाधी सारी॥
(यशोनाथ पुराण पृ० ९८)

(३) पूनरासर में सिद्ध को लाया, दीवी समाधी वास वासाया।
खेमो खाती सगमें आओ, पालोजी को मिन्दर चिणायो॥
(वही पृ० ९८)

सेवक शिष्य थे।

पालोजी के चले जाने के बाद चाऊ ठाकुर अनूपसी ने ग्राम के लोगों को इकट्ठा करके कहा— 'यह तालाब मेरे गाँव में है, इसलिए इस तालाब को 'अनूप सागर' कहकर पुकारा जाय। मैं ग्राम का ठाकुर हूँ, अतः आज से सब को चेतावनी दी जाती है कि यदि कोई भी इस तालाब को 'हाँसोलाव' कहेगा तो उसे सजा मिलेगी। ठाकुर लोगों को ऐसा कह ही रहा था कि तालाब का पानी भयंकर विस्फोटक शब्द के साथ पाताल फोड़कर नीचे जाने लगा। जब का भयंकर निनाद सुनकर सब लोग तालाब पर इकट्ठे हो गये देखा तो सारा का सारा पानी जमीन में समा गया।

इस अतर्कित दुघटना से ठाकुर अनूपसी और ग्रामवासी घबरा गये। वे दौड़े दौड़े पालोजी के पास क्षमा प्रार्थना एवं उचित मार्ग प्रदर्शन की खोज के लिए खिलमादेसर जा पहुँचे।

पालोजी ने उन्हें देखते ही कहा— भविष्य में तालाब में केवल छै मास ही पानी रहा करेगा। कभी भी गायों को तालाब में पानी पीने से मत रोकना चाहे वे किसी भी गाँव की क्यों न हों। यदि उन्हें रोक दिया गया तो तालाब में पानी का रहना कठिन हो जायेगा।"

खिलमादेसर में निवास करते एक एक बार श्री पालोजी के मन में आया कि सिद्धाचार्य की समाधि पर एक मन्दिर बनवाया जाय। इसी संकल्प से प्रेरित होकर वे कतरियासर की ओर अपने शिष्यों के साथ चल पड़े जिसमें खेमा खाती का नाम मुख्य है।

उन्होंने पहला विश्राम पूनरासर में किया। अपने बैलों को बाँधने के लिए उन्होंने जाल के चार सूखे खूँटे रोपे जो उनकी तपश्चर्या के सामर्थ्य से सुबह तक हरे भरे हो गये। भूमि की पवित्रता तथा रमणीयता देखकर सिद्ध पालोजी ने खेमा खाती से कहा— खेमा मेरा समाधि स्थल यही होगा।"

कतरियासर पहुँच कर अपने पूर्व निश्चयानुसार उन्होंने सिद्धाचार्य के पवित्र समाधिस्थल पर मन्दिर के निर्माण का कार्य प्रारम्भ कर दिया। सिद्धाचार्य की समाधि पर बनी घास की झोंपड़ी को यथावत रखते हुए उसके चारों ओर मन्दिर निर्माण के पश्चात झोंपड़ी के थम्भ (थूँणा) तोड़ने के विचार व्यक्त

करने पर खेमा से पालोजी ने कहा—"वन्ध तोडने के लिए, जिसे अचिन्त्य शक्ति का निर्देश होगा, वही तोड़ेगा।"

मन्दिर बन चुकने के बाद खेमा खाती पालोजी की आज्ञा पाकर कलश का पत्थर लाने के लिए नागौर चला गया। पीछे से 'जूण' तोडने के लिए दैविक प्रेरणा हुई। पालोजी ने सोचा खेमा तो यहा नहीं है। उन्होंने ऊँचे स्वर से तीन बार खेमाको आवाजें दी।

खेमा नागौर के माही दरवाजे[1] में प्रवेश कर ही रहा था कि उसे पालोजी की पुकार सुनी। खेमा किसी अज्ञात शक्ति द्वारा प्रेरित होकर तत्काल कतरियासर आ पहुँचा पर इससे पहिले ही पालोजी ने सिद्धाचार्य की झौंपड़ी के 'जूण' तोड डाले।

'जूण' तोडते ही पालोजी पर अकस्मात् 'गैबी' छुरी का प्रहार हुआ। पालोजी विक्षत होकर गिर पड़े। लोगों ने पालोजी को समाधि यहीं देने का निश्चय प्रकट किया पर खेमा ने यह कह कर विरोध किया कि सिद्ध पालोजी ने पूनरासर में ही समाधि देने के लिए मुझ से कहा था।

समाधि को लेकर परस्पर विवाद खडा होगया अन्त में आकाशवाणी[2] के अनुसार पालोजी को पूर्व निश्चित स्थान पर समाधि देने के लिए उनकी देह गाडी में रख कर पूनरासर में ले आये[3]।

रास्ते में 'बींजेरा वास, के लोगों ने अपने गॉव के बीच से शव को ले

---

(१) कुण्डिया सारस्वत समाज के आदि पुरुष सरसजी महाराज की माही नामकी एक सांड(ऊँटनी) "तत्कालीन नागौर के नागवशी क्षत्रिय राजा की ओरसे उन्हें भेंट की गई थी" के नाम पर ही इस दरवाजे का नाम माही दरवाजा पडा। माही सांड की मृत्यु इसी स्थान पर हुई थीं।

(२) वाणी एक आकाश सुणाई, पूनरासर ले जाओ भाई।
चार जाळ ऊगी सुभकारी, जाके मध्य समाधी मारी ॥
(पणोनाथ पुराण पृ० ९८)

(३) पूनरासर में सिद्ध को लाया, दीवी समाधी वास वासाया।
खेमो खाती सगमें आओ, पालोजी को मिन्दर चिणायो ॥
(वही पृ० ९८)

जाने से रोका तो कहा जाता है कि पाबोजी ने अपना एक पैर खड़ा कर लिया। इससे 'बीजेरा वास' के लोग बड़े चकित हुए और प्रभावित हो पाबोजी की देह के साथ पूनरासर की ओर चल पड़े।

पूनरासर में सिद्ध पाबोजी को विधि पूर्वक समाधि दे दी गई। पाबोजी की समाधि के सम्बन्ध में जसोनाथ पुराण में लिखा है—

> संवत् सोळै तेसठे, चेत सुदी सपताय ।
> या दिन पालमनाथजी, निरमै सुरग सिधाय ॥

पूनरासर की मैं बाड़ी में सिद्ध पाबोजी की जीवित समाधि के अतिरिक्त पाँच और जीवित समाधियाँ हैं—

(१) खेमा चारी—यह बापरासर का निवासी था और सिद्ध पाबोजीके के प्रिय शिष्यों में से एक था।

(२) सती जसोदा—यह पूनरासर के जाणी सिद्धों की दादी थी जिसने पति के देवलोक होजाने पर विक्रम संवत १८०४ वैसाख शुक्ला पूर्णिमा को जीवित समाधि ली।

तीन अन्य समाधियों के विषय में अब तक कोई विवरण प्राप्त नहीं होसका है।

पूनरासर की बाड़ी को अनेक सिद्ध पुरुषों ने गौरवान्वित किया है जिनमें जियोजी सौंखला प्रमुख हैं। ये सिद्ध पाबोजी के बाल मित्र व तथा बाद में उनके शिष्य होगये थे। इनकी फुटकर रचनाएँ आज भी प्राप्त हैं जिनमें सिद्धाचार्य का 'जसममूसरा' तो बहुत ही प्रसिद्ध है।

पूनरासर की बाड़ी के वर्णन में मानकजी के बनाए हुए कूएँ का वर्णन करना अप्रासंगिक न होगा इस कूएँ के विषय में कहा जाता है कि जिस कूएँ से मानकजी (पाबोजी के भाई सुरजनजी का पुत्र) पानी लाया करते थे। एक दिन उस कूएँ पर बहुत भीड़ थी और मानकजी ने दूसरों की बारी (क्रम) के बीच में ही जल भरना चाहा। यह देख कर किसी व्यक्ति ने मानकजी को ताना मार दिया कि आप तो अब सिद्ध होगये हैं अपना कूआँ अलग क्यों नहीं बनवा लेते हो।"

नानकजी को यह बूरा लगा पर उनके पास कूप निर्माण के लिए धना-भाव था। उन्होंने सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी से प्रेरणा-प्राप्ति के लिए अनशन आरम्भ कर दिया। रात्रि में सिद्धाचार्य ने नानकजी को दर्शन देकर कहा—"सुबह पूर्व की ओर जाने पर, जहाँ 'गौरी गाय' (कपिला) अपने बछडे को दूध पिलाती हुई मिले, जहाँ खडाऊ का निशान हो वहीं कूआँ खुदवाना उसमें मीठा पानी निकलेगा।"

नानकजीने सिद्धाचार्य से धनाभाव की बात कही। प्रत्युत्तर में सिद्धाचार्य ने कहा—'तुम प्रात पश्चिम को बाडी में जाना और वहाँ पक्षियो को चुग्गा डालना, जहाँ मोर पक्षी अपने पैरों से "खुराळी" (भूमि कुरेदन) करता मिले वह जगह खोदने पर तुम्हें धन प्राप्ति होगी, पर ध्यान रखना कि इस धन का उपयोग केवल कूप निर्माण के लिए ही करना। नहीं तो सम्पूर्ण धन नष्ट हो जायेगा।"

नानकजी ने कूआँ बनवाना आरम्भ कर दिया। जब कूएँ की नाल बन कर तैयार होगई तो उनके पास एक याचक (ढाढी) आया। नानकजी ने भूल से उसे एक रुपया दे दिया। ऐसा करते ही सारा धन लुप्त होगया।

नानकजी ने पूर्ववत् अनशन प्रारम्भ किया। और सिद्धाचार्य ने पुन दर्शन देकर कहा—"अब तुम्हे इस कार्य के लिए धन प्राप्ति नहीं होगी। यह कार्य तुम्हारी भावी पीढियों में ही सम्पन्न होगा।"

कूआँ वैसे ही अधूरा पडा रहा। नानकजी की तीसरी पीढी में उत्पन्न रतनोजी सिद्ध ने कूएँ का पूर्ण निर्माण करवाया।

चाऊ—

गत प्रसग में यह लिखा जा चुका है कि सिद्ध पालोजी ने चाऊ में सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी की बाडी की स्थापना कर अकाल पीडित जन-समुदाय को अन्न वितरित करते हुए वहाँ 'हॉमोळाव' तालाव का निर्माण करवाया था।

सिद्ध पालोजी के चाऊ निवास-काल में यहाँ के मूमोजी तथा रतनोजी

जाने से रोक तो कहा जाता है कि पाबोजी ने अपना एक पैर खड़ा कर लिया। इसस 'बीकेर बास' के लोग बड़े चकित हुए और प्रभावित हो पाबोजी की देह क साथ पूनरासर की ओर चल पड़े।

पूनरासर में सिद्ध पाबोजी को विधि पूर्वक समाधि दे दी गई। पाबोजी की समाधि के सम्बन्ध में यशोनाथ पुराण में लिखा है—

> संवत् सोळै तेसठे, चेत सुदी सपताय।
> वा दिन पाळमनाथजी, निरमै सुरग सिधाय॥

पूनरासर की में बाड़ी में सिद्ध पाबोजी की जीवित समाधि क अतिरिक्त पाँच और जीवित समाधियाँ हैं—

(१) खेमा जाटी— यह बापरासर का निवासी था और सिद्ध पाबोजीके के प्रिय शिष्यों में स एक था।

(२) सती जसादा—यह पूनरासर क जाटी सिद्धों की बाड़ी थी, जिसने पति के देवलोक होजाने पर विक्रम संवत १६ ४ वैसाख शुक्ला पूर्णिमा को जीवित समाधि ली।

तीन अन्य समाधियो के विषय में अब तक कोई विवरण प्राप्त नहीं होसका है।

पूनरासर की बाड़ी को अनेक सिद्ध पुरुषों न गौरवान्वित किया है जिसमें जियोजी सोंखला प्रमुख हैं। ये सिद्ध पाबोजी क बाल मित्र थे तथा बाद में उनके शिष्य होगये थे। इनकी फुटकर रचनायें आज भी प्राप्त हैं जिनमें सिद्धाचार्य का 'जसमभूझरा' तो बहुत ही प्रसिद्ध है।

पूनरासर की बाड़ी के वर्णन में नानकजी के बनाए हुए कूएं का वर्णन करना अप्रासंगिक न होगा इस कूएं के विषय में कहा जाता है कि जिस कूएं से नानकजी (पाबोजी क भाई सुरजनजी का पुत्र) पानी लाया करते थे। एक दिन उस कूएं पर बहुत भीड़ थी और नानकजी ने दूसरों की बारी (क्रम) के बीच में ही जल भरना चाहा। यह देख कर किसी व्यक्ति ने नानकजी का ताना मार दिया कि आप तो अब सिद्ध होगये हैं अपना कूआँ अलग क्यों नहीं बनवा लेते हो।

ग्रहण कर लिया था। किंवदन्ती भी है कि—लम्बे समय के बाद तपोजी को दैवी वाणी में सिद्ध पालोजी ने आन्तरिक प्रेरणा दी थी। यही कारण है कि तपोजी पालोजी के शिष्य माने जाते हैं। तपोजी ने अपने घर पर ही एक वर्ष तक तप किया, पर घरवालों को यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने तपोजी से कहा—"यदि तप ही करना है तो अलग हो जाओ, निरर्थक तुम्हें रोटियाँ कौन खिलाता रहेगा?" पर तपोजी नहीं माने। अन्त में घरवालों ने चाऊ ठाकुर अनूपसी को उन्हें समझाने के लिए उनके पास भेजा। ठाकुर को आते देखकर साल भर की मौन तोड़ते हुए कहा—"आओ अनोपा!"

ठाकुर अपने लिए "अनोपा" जैसा छोटा शब्द सुनकर भी दुःखी न हुआ। वह श्रद्धालु था अतः उसने विनम्र शब्दों में कहा-"हाँ, महाराज आया।"

तपोजी ने कहा—"तुम हासिल लेने की विशेष लालसा रखते हो, किन्तु सिद्ध-सम्प्रदाय में लोगों के दीक्षित होने पर तुम्हारी यह लालसा क्षीण हो जायेगी। मेरे घरवालों ने तुम्हें जिस कार्य के लिए भेजा है उसका तुम्हें पूर्ण ज्ञान नहीं है, अतः इस सम्बन्ध में मेरी स्त्री से पूछ ताछ करो कि मैंने साल भर में घरवालों का कितना अन्न खाया है?"

ठाकुर के पूछने पर तपोजी की स्त्री ने उपस्थित जन-समुदाय के सामने ही कहा—"मैं इनके लिए प्रतिदिन दो रोटियाँ लाया करती थी, परन्तु ये सिर्फ एक ही रोटी रखते और दूसरी रोटी लौटा देते थे।"

तपोजी रोटी तो ले लेते थे, पर खाते नहीं थे। वे उस रोटी को 'ओबरी' में डाल देते थे। उन्होंने वे समस्त रोटियाँ 'ओबरी' में से निकाल कर सबके सामने रख दीं। रोटियाँ गणना के हिसाब से साल भर की पूरी निकलीं। इस दिन के बाद तपोजी ने घर छोड़कर बाहर जाने का निश्चय कर लिया। पर ठाकुर के विशेष अनुनय विनय करने पर वे चाऊ में ही रहने लगे और ठाकुर के विशेष आग्रह पर दूध पीना स्वीकार कर लिया। तपोजी के दूध पीने का लौटा अब भी उनकी बाडी के मन्दिर में रखा है।

तपोजी २४ वर्ष तक अपनी बाडी में तप करते रहे। वहाँ प्रतिदिन गंगाजी प्रकट होती और तपोजी उसमें स्नान करते। इसके चिन्ह अब भी वहाँ

के कृपा ने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया था।[1] ये दोनों सगे भाई और सिद्ध पुरुष थे। तत्कालीन जोधपुर नरेश गजसिंहजी इनका पूर्ण सम्मान किया करते थे। इन्होंने सिद्ध पाबाजी के नाम सम्राट् अकबर के दिये हुए ताम्रपत्र के आधार पर पट्टा[2] बनाकर इनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की थी।

इस पट्टे से यह भी प्रमाणित होता है कि वि० सं० १६६० तक मूसोजी और रतनाजी विद्यमान थे। इन्होंने जीवित समाधि कब ली इसके विषय में इतिहास मौन है। यदि रुस्तमजी के साथ नामवाले यही मूसोजी और रतनोजी थे तब तो इन्होंने वि० सं० १७२६ के बाद ही समाधि ली होगी?

बाड़ू में इन दोनों भाइयों की समाधियाँ हैं। मूसोजी बड़े थे अतः इन दोनों भाइयों का समाधिस्थल मूसोजी की वाड़ी के नाम से प्रसिद्ध है। वाड़ी में चारों ओर मीठे जाल के पेड़ लगे हुए हैं। यहाँ प्रतिदिन पक्षियों को चुग्गा डाला जाता है और निश्चित तिथियों पर जागरण एवं हवनादि शुभ कार्य किये जाते हैं।

तपोजी—

ये बाड़ू के रहने वाले और ईसराम शाखा के थे। ये बड़े ही सिद्ध एवं भजनानन्दी पुरुष हुए हैं। इनके विषय में प्रसिद्ध है—

सिद्ध पाबाजी के निवास काल में समग्र बाड़ू ने ही इनका शिष्यत्व

---

(१) पाबसनाथ सिद्ध शुद्ध कहिये, विरक्त आप अकेला रहिये।
मूसोजी रतनाजी चेला बाड़ू के मिल वास अकेला॥
(यतीनाथ पृ १७)

(२) पट्टे का अविकल रूप इस प्रकार है—

स्वारूप श्री महाराजाधिराज श्री जसवंतसिंहजी वचनायतु तथा सिद्ध मूसा, रतना पाबारा गाँव बाड़ू में छे सु पाबारा वाड़ी खेत मर तकीयारी करती हुकमा १ दोय दीधी सिद्ध सोमनाथ रतननाथनु दीया सु वड़सी मैं वावसी हमों कर्न हजरत सन् ९७९ हीजरी साल ५७ रै मुलक रो ताम्रपत्र पातसाही श्री अकबरसाही रो मकाम नागोर रो सिद्ध पासे रै गाँव री छे देख सही कर दीनी छे सु वरती हुकमा १ वाह (बाड़) में नै वरती। दीना १५१ बामसर (बामरावट) री छै सु पाबा रा चेला चाटी भोगविमा वावसी हजूर रो हुकम छै सम्वत १६९ रा वाह सुदी ९ म० जोधपुर मुम परवानगी रावतीप लीखावत।

ग्रहण कर लिया था। किंवदन्ती भी है कि—लम्बे समय के बाद तपोजी को दैवी वाणी में सिद्ध पालोजी ने आन्तरिक प्रेरणा दी थी। यही कारण है कि तपोजी पालोजी के शिष्य माने जाते हैं। तपोजी ने अपने घर पर ही एक वर्ष तक तप किया, पर घरवालों को यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने तपोजी से कहा—"यदि तप ही करना है तो अलग हो जाओ, निरर्थक तुम्हें रोटियाँ कौन खिलाता रहेगा?" पर तपोजी नहीं माने। अन्त में घरवालों ने चाऊ ठाकुर अनूपसी को उन्हें समझाने के लिए उनके पास भेजा। ठाकुर को आते देखकर साल भर की मौन तोड़ते हुए कहा—"आओ अनोपा!"

ठाकुर अपने लिए "अनोपा" जैसा छोटा शब्द सुनकर भी दुःखी न हुआ। वह श्रद्धालु था अतः उसने विनम्र शब्दों में कहा-"हाँ, महाराज आया।"

तपोजी ने कहा—"तुम हासिल लेने की विशेष लालसा रखते हो, किन्तु सिद्ध-सम्प्रदाय में लोगों के दीक्षित होने पर तुम्हारी यह लालसा क्षीण हो जायेगी। मेरे घरवालों ने तुम्हें जिस कार्य के लिए भेजा है उसका तुम्हे पूर्ण ज्ञान नहीं है, अतः इस सम्बन्ध मे मेरी स्त्री से पूछ ताछ करो कि मैंने साल भर में घरवालों का कितना अन्न खाया है?"

ठाकुर के पूछने पर तपोजी की स्त्री ने उपस्थित जन-समुदाय के सामने ही कहा—"मैं इनके लिए प्रतिदिन दो रोटियाँ लाया करती थी, परन्तु ये सिर्फ एक ही रोटी रखते और दूसरी रोटी लौटा देते थे।"

तपोजी रोटी तो ले लेते थे, पर खाते नहीं थे। वे उस रोटी को 'ओवरी' में डाल देते थे। उन्होंने वे समस्त रोटियाँ 'ओवरी' में से निकाल कर सबके सामने रख दीं। रोटियाँ गणना के हिसाब से साल भर की पूरी निकलीं। इस दिन के बाद तपोजी ने घर छोड़कर बाहर जाने का निश्चय कर लिया। पर ठाकुर के विशेष अनुनय विनय करने पर वे चाऊ में ही रहने लगे और ठाकुर के विशेष आग्रह पर दूध पीना स्वीकार कर लिया। तपोजी के दूध पीने का लौटा अब भी उनकी बाड़ी के मन्दिर में रखा है।

तपोजी २४ वर्ष तक अपनी बाड़ी में तप करते रहे। वहाँ प्रतिदिन गंगाजी प्रकट होती और तपोजी उसमें स्नान करते। इसके चिन्ह अब भी वहाँ

देखा जा सकता है। तपाजी के जीवन काल में १२ शिष्य हुए थे।

(१) माटाजी— इन्होंने मौजर की बाड़ी में जीवित समाधि ली थी। कहा जाता है कि इनकी स्त्री ने भी यहीं जीवित समाधि ली थी।

(२) हरिदास(नाथ) मालक—इन्होंने तपोजी की बाड़ी में समाधि ली थी।

(३) मेसाजी मुरलक—ये भी तपाजी की बाड़ी में ही समाधिस्थ हुए।

(४) परवतजी—इन्होंने चिचासें गाँव में जीवित समाधि ली। चिचासें में इनकी बाड़ी की बड़ी भारी मान्यता है।

(५) बरसलजी तरड़— इन्होंने सावासर गाँव में समाधि ली थी।

(६) जाल्मजी— इन्होंने मेवासा (मारवाड़) में जीवित समाधि ली। इनकी कुछ फुटकर रचनाएं भी उपलब्ध होती हैं। इनकी समाधि मेवासा की पहाड़ी पर है यहाँ एक गुफा तथा कुण्ड बनी हुई है।[1]

(७) टेम ब्राह्मण—ये पारीक ब्राह्मण थे। यह अपनी स्त्री सहित दण्डवत करता हुआ द्वारिका स्नान के लिए जा रहा था। रास्ते में तपोजी से भेंट हो गई। उन्होंने इसको अपनी बाड़ी में ही गंगा दर्शन करवा दिया जिससे प्रभावित होकर ये वहीं तप करने लगे। इसकी स्त्री भी इसके साथ ही रही। इन्होंने वहीं जीवित समाधि ली।

(८) टेम ब्राह्मण की स्त्री—इस सती महिला ने भी अपने पति की भाँति ही जीवित समाधि ली। अब भी इन पति-पत्नी के पवित्र समाधिस्थल पर तपाजी की बाड़ी में कोठिये (चबूतरे) बने हुए हैं।

(९) जीवखाँजी— इनकी जीवित समाधि बीकूँसरा में है।

(१०) नारायणजी दुसाध—इनकी जीवित समाधि मेरासर ग्राम में है।

(११) सतीदास— इनके विषय में कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है।

(१२) इम्मोजी— इनकी समाधि भी सावासर ग्राम में है।

सम्भव है इनके अतिरिक्त भी तपाजी के अनेकों शिष्य हुए होंगे पर हमें अब तक इतने ही नाम प्राप्त हुए हैं।

---

(१) इस स्थान पर अब नाथ मतावलम्बी लोग रहते हैं।

अणदल सती—ये तपोजी की सती स्त्री थी। इन्होंने भी अनेक तपस्याये की थीं। ये योग्य पति की योग्य पत्नी थीं। इन्होंने अपने पति के सम्मुख ही वि० स० १७०० की जेठ वदी द्वितीया को जीवित समाधि ली थी। सती अणदल की समाधि पर उनके पगलिये (चरण-पादुका) हैं जिन पर समाधि का उपर्युक्त समय लिखा हुआ है। अणदल सती ने जीवित समाधि लेते समय अपने आनन्दोद्‌गार इस प्रकार प्रकट किये थे—

तपोजी तखत विराजिया, अणदल ऊभा आय।
मैं'र करी मन सुद्ध हुवो, कमी न राखी काय।
छोटा सूँ मोटा किया, असत्याँ सत दरसाय।
चम्पा नगरी चौवटै, मेळा थरप्या आय।
जाती आवै जुगत सूँ, ईसर रै अरथाय।
अन आरोगै ओगरो, मगल गावै नार।
संख पँचायण वाजसी, झालर रै झणकार।
नाचै वाँचै गुण कथै, दरमण आया दाय।
सिद्ध स्यामी सेवक घणाँ, जुग्में जोत जगाय।
होम हुवै हरख्या फिरै, सोरभ सुरगाँ जाय।
गादी गोरख माळियै, वैठ्या सिद्ध सुवाय।
साहू सुरपत सारदा, गोरों गंग सिहाय।
इमरत, मेवा, दूध, घी, ताँवा, रूपा राय।
भण्डारै भरती हुवै, तूठा तिरभण राय।
सेवग सारै वीनती, साम्भळज्यो रुघराय।
चाऊ माहीं चायवो, राखो सदा सहाय।

अणदल सती के समाधि लेने के १५ दिन पश्चात् ही सिद्ध तपोजी ने वि० स० १७०० जेठ सुदी ३ को अपने तप स्थान पर जीवित समाधि ले ली।

तपोजी की वाडी में पाँच जीवित समाधियाँ हैं।

तपोजी के चमत्कार पूर्ण अनेकों कथानक जसनाथ-सम्प्रदाय मे प्रचलित हैं। कहा जाता है कि तपोजी ने एकबार अपने माता पिता तथा स्त्री

माधासर में श्री जसनाथजी की बाडी की स्थापना के विषय में कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता है। बरसलजी या दमोजी, इन दोनों में से किसी एक ने या दोनों ने संयुक्त रूप से बाडी की स्थापना की थी। यहाँ छै जीवित समाधियाँ हैं— जिनके विषय मे पूर्ण जानकारी प्रयत्न करने पर भी उपलब्ध नहीं हो सकी है।

(१) बरसलजी—चाऊ प्रसंग मे यह लिखा जा चुका है कि सिद्ध तपोजी के बारह शिष्य थे, जिनमें बरसलजी भी एक थे।

(२) दमोजी- माधासर के सिद्धों की मान्यतानुसार दमोजी 'जालवाली' एल[1] की ओर से तपोजी के शिष्य थे।

(३) माननाथजी
(४) अमीनाथजी
} इनके विषय में विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हुई।

(५) गोविन्दजी— ये तपस्वी सिद्ध थे। कहते है - इन्होंने अपने हाथ से माधासर में झडबेरी की एक टहनी लगाई थी, जो हरी भरी होगई थी। गोविन्दजी ने इसी झाडी के नीचे तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की थी।

(६) अचैरी सती— पूर्ण विवरण उपलब्ध नहीं हो सका है।

खैराठ[2]—

खैराठ की बाडी की स्थापना साजननाथजी ने की थी। यह स्थापना किस सम्वत में हुई इस विषय में इतिहास मौन है, पर साजननाथजी का जीवन वृत्त अब भी सिद्ध परम्परा में अक्षुण्ण है। खैराठ में चार जीवित समाधियाँ हैं —

(१) साजननाथजी—ये महापुरुष गोदारा वंश में उत्पन्न हुए थे। मडा[3] ग्राम के निवासी थे। इन्होंने चाऊ के मूमोजी का शिष्यत्व अंगीकार किया था। इन्होंने मण्डा के आसपास की 'गूँछळा की झाडी'[4] नामक अरण्य में तपस्या

---

(१) फळसांवाली एल मे खेतनाथजी ने कतरियासर से भगवां लेकर सिद्ध सम्प्रदाय मे प्रवेश किया था।

(२) यह ग्राम चाऊ से दक्षिण में पाँच कोस दक्षिण की ओर तथा नागोर से पूर्व की ओर नौ कोस की दूरी पर स्थित है।

(३) यह ग्राम अब उजड चुका।

(४) वि० सं० १५८० के आसपास गूछळा की झाडी नामक यह एक निर्जन अरण्य था।

अवश्य देने के विशेष आग्रह को सिद्ध मनोहरनाथजी न टाल सके। महाराजा ने पानी के लिए एक बडा कुण्ड भी राज्य की ओर से बनवा दिया, जिस कुण्ड की वि० स० १७६५ में प्रतिष्ठा हुई। प्रतिष्ठा-समारोह पर मनोहरनाथजी को राजकीय सम्मान के रूप में नगारों की 'जोडी' चाँदी की बनी हुई छड़ी और चान्दी की 'गूर्ज' भेट की गई थी।

इनके समाधिकाल का विवरण अज्ञात ही है।

(३) सती सूरताजी मडी— ये सती सिद्ध साजननाथजी की धर्मपत्नी थी। इनके समाधिस्थ होने की तिथि तो ज्ञात नहीं, पर इन्होंने अपने पुत्र मनोहरनाथजी के साथ सत चढने पर जीवित समाधि ली थी।

(४) विल्होजी — ये श्रीजसनाथजी की बाडी के पोळ्यिा (द्वारपाल) थे। दैविक प्रेरणा से इन्होंने भी जीवित समाधि ली थी, पर तिथि अब तक अज्ञात है।

खैराठ की जसनाथजी की बाडी में उक्त सिद्ध पुरुषों की जीवित समाधियों पर सुन्दर मन्दिर बने हुए हैं, जिनकी दोनों समय विधिवत् आरति पूजा होती है। बाड़ी में पक्षियों के लिए गाँव के लोगों की ओर से चुग्गा-पानी की समुचित व्यवस्था है।

चित्ताणा[1]—

यहाँ तीन जीवित समाधियाँ हैं —

(१) परवतजी— ये तपोजी (चाऊ) के शिष्य थे। इन्होंने इस ग्राम में आकर महान तप साधना की एव लोगों को धर्मोपदेश दिये।

(२) नारा सती— इनका परिचय अज्ञात है।

(३) खींयोंजी — ये बडे सिद्ध पुरुष थे। इनका समाधिस्थल गाँव से पूर्वोत्तर चार कोस की दूरी पर स्थित है जो खींयोजी की बाड़ी के नाम से प्रसिद्ध है। इस स्थान के समीप एक मीठे जल का कूँआ बना हुआ है। खींयोजी का स्मृति-दिवस प्रतिमास शुक्ला द्वितीया को मनाया जाता है। उस दिन समीपवर्ती क्षेत्रों की जनता इनके समाधिस्थल पर एकत्रित होकर हवन

(१) यह ग्राम कालडी की बाड़ी से छै कोस पश्चिम की ओर है।

करती है। इन्होंने भाद्र शुक्ला द्वितीया को जीवित समाधि ली थी, लेकिन सम्वत् अज्ञात है।

मीकूँसर[1]—

यहाँ चार जीवित समाधियाँ हैं —

(१) जीवणजी— ये भी तपोजी (थाऊ) के शिष्य थे। इन्होंने थाऊ से यहाँ आकर तपसाधना की। इसके अतिरिक्त इनका और विवरण प्राप्त न हो सका।

(२) हरजीनाथजी }
(३) सती } इनका वृत्तान्त अज्ञात है।
(४) सती }

यहाँ जसनाथजी का सुन्दर मन्दिर है। उसके आमुख पर एक लेख खुदा हुआ है जिसमें लिखा है कि वि० सं० १८०६ चैत सुदी १० महाराज श्री गजसिंहजी राज श्री जसनाथजी रो शिवालो करायो छै जी।[2]

साजनवासी[3]—

यहाँ तपस्वी मैननाथजी ईसराम ने तप किया और कुछ समयोपरान्त यहाँ जीवित समाधि ली। इनकी पुण्य तिथि ज्येष्ठ की एकादशी मानी जाती है।

---

(१) यह ग्राम सरदारशहर से पश्चिम की ओर तीन कोस की दूरी पर स्थित है।

(२) इस लेख में उस समय के भाव भी इस प्रकार दिये गये हैं — बाजरी प्रति रुपया तीन मन मोठ पौने चार मन मूंग के सेर लिखा है।

(३) यह ग्राम सरदारशहर के पास है।

मालासर[1]—

जसनाथ-सम्प्रदाय मे "मालासर" टोडरजी एव सती प्यारलदे का बड़ा धाम माना गया है। यहाँ छै जीवित समाधियाँ हैं —

(१) टोडरजी – ये अति वयोवृद्ध महापुरुष थे और मालासर मे चालीस वर्ष से तप कर रहे थे। ये सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के पूर्ण अनुयायी थे। ये रूणिया ग्राम-वासी गोदारा शाखा के जाट थे और सिद्धाचार्य के प्रादुर्भूत होने के पूर्व ही मालासर मे तप किया करते थे। सिद्धाचार्य की कृपा से ही इनको अपार सिद्धि-सामर्थ्य प्राप्त हुआ। सिद्ध-सम्प्रदाय मे इनके विषय में अनेक कथानक प्रचलित हैं —

एक समय टोडरजी पजाब की ओर अन्न की कतार (कारवाँ) लाने के लिए गये। अनेको कतारियो महित टोडरजी जब अन्न की छाँटियाँ से लदे हुए ऊँटों के साथ वापिस आ रहे थे तब निर्जन बीहड के लम्बे मार्ग को पार करते हुए साथ के कतारियों को बडे जोर की प्यास लगी। उस समय टोडरजी ने दिशा-निर्देश करते हुए कतारियों को बताया कि अमुक स्थान पर तालाब है, जिसमें जल है। उनमे से एक व्यक्ति पानी देखने गया और उसने आकर बताया कि "वहाँ तो केवल एक घडा पानी है।"

टोडरजी ने कहा—"आप चिन्ता न करे, पहले सब अपनी अपनी

---

(१) यह ग्राम पुण्यभूमि कतरियासर मे लगभग दो कोस के फासले पर पश्चिम की ओर तथा बीकानेर-भटिण्डा रेलवे लाइन की जामसर स्टेशन से चार कोस पूर्व की ओर स्थित है। ग्राम के समस्त लोग जसनाथ-सम्प्रदायावलम्बी है, इसी लिए मृतक को अब तक समाधि देने की प्रथा का पालन करते है।

यहाँ की बाडी बडी ही सुन्दर है, जिसमें परिक्रमाबद्ध मन्दिर है, बाडी म मीठे जाल के अनेको पेड है। मन्दिर में दोनो समय हवन होता है यहाँ बाडी के पक्षियो के लिए चुग्गे की पर्याप्त व्यवस्था है— उसके विषय में बाडी के सेवकों की ओर से जो भी स्तुत्य प्रयत्न किया गया है, वह दर्शको के लिए आल्हादकारी है। प्रदेश के अन्य जसनाथी धामो की भान्ति यहाँ पर भी निश्चित समारोहो और पर्वो पर 'जागरणादि' शुभ काय सम्पन्न होते रहते हैं, जिनमें बाडी के सेवक भी सम्मिलित होते है।

दीपड़ी (मसक) भर लो। फिर एक एक कर ऊँटों को पिला लो, तब तक पानी समाप्त नहीं होगा।"

टोडरजी की कृपा से तृषित कतारियों ने ऊँटों सहित अपनी प्यास बुझाई। इसी समय कतारियों ने टोडरजी के सामने रोटी पकाने के लिए अग्नि का अभाव प्रकट किया जिस पर परम सिद्ध टोडरजी ने सिद्धि के प्रभाव से वहाँ तुरन्त अग्नि पैदा करदी। सबने रोटी बनाकर अपनी क्षुधा शान्त की।

जब कतार वहाँ से चलने को उद्यत हुई तब सबने यह निश्चय किया कि टोडरजी को ऊँट सहारा में सहयोग नहीं देना है इन्हें तब से क्या उपाय करते हैं।" ऐसा निश्चय कर साथ के सब लोग परस्पर के सहयोग से अपनी अपनी कतार लाद कर चल पड़े।

टोडरजी ने ईश्वर-सत्ता के सहयोग से अपनी लाटी लादकर साथी कतारियों से एक दिन पूर्व ही अपने स्थान पर आ गये। इसी चमत्कृतियों के बाद लोग इन्हें सिद्धपुरुष मानने लग गये।

टोडरजी की समाधि[1] के बारे में सबका एकनिश्चित मत नहीं है। मालासर के सिद्धों के कथनानुसार टोडरजी ने प्यारलदे सती के कतरियासर से यहाँ पहुँचने के दिन ही वि० सं० १२६१ आश्विन शुक्ला सप्तमी को समाधि ली थी। सम्प्रदाय के अन्य वयोवृद्ध पुरुषों एवं पाँचला के सिद्ध के मत से प्यारलदे सती ने टोडरजी की कुछ काल तक सेवा की और तत्पश्चात् ही इन्होंने जीवित समाधि ली थी। सतीजी के अनुज बोयतजी ने इन्हीं (टोडरजी) से गुरु दीक्षा प्राप्त की थी।

(२) सती प्यारलदे—यह पूर्व अध्याय में बताया जा चुका है कि सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी ने समाधि लेते समय प्यारलदे सती को टोडरजी के पास मालासर जाने की आज्ञा दी थी। सिद्धाचार्य की आज्ञानुसार सती प्यारलदे अपने भाई बोयतजी एवं समस्त बेनीवाल परिवार सहित वि० सं० १२६१ आश्विन शुक्ला सप्तमी को कतरियासर से प्रस्थान कर मालासर आ गई थी

(१) मालासर में टोडरजी तथा सती प्यारलदे की समाधि पर स्थित सवा मन्दिर के द्वार पर एक शिलालेख है पर जानबूझ कर किसी के द्वारा उसके अक्षरों को मिटाने के प्रयत्न से अस्पष्ट किया गया है।

इसलिए इनकी तिथि नवमी ही मानी जाती है।

सती प्यारलदे के पास उनके अनुज बोयतजी और सारा बेनीवाल परिवार दो साल तक मालासर में ही टिके रहे। तदन्तर सती प्यारलदे ने बोयतजी के सान्निध्य में बेनीवाल परिवार को मालासर से दक्षिण की ओर प्रस्थान की आज्ञा दी और कहा—"जिस जगह तुम्हारे बैलों का जूआ अपने आप नीचे गिर जाय, वहाँ तुम्हें कूआँ (सुघड़ माळ का) मिलेगा। कूए पर एक शिला होगी। उसे अलग कर देना। वही स्थान तुम्हारे निवास के लिए उपयोगी है।"

सती प्यारलदे ने मालासर में बारह वर्ष तक तप-साधना की। सती के पास दुधारू गायों के बड़े बड़े वाग (गोधन समूह) थे। वे गो-घृत को हवन कार्य में व्यवहृत[1] करती थीं।

एक बार बीकानेर राज्याधिकारियों ने सती प्यारलदे से 'मूँगा' मांगने के लिए उनके पास एक सवार को भेजा, पर उन्होंने सवार को 'मूँगा' देने से साफ इन्कार कर दिया। इस पर सवार ने सती को अपने साथ बीकानेर चलने को कहा। प्रत्युत्तर में सती ने सवार से कहा कि 'तू चल मैं स्वयं बीकानेर आ जाऊँगी।" किन्तु राज्य-मदोन्मत्त सवार ने फिर भी सती को अपने साथ ही बीकानेर चलने को बाध्य किया।

सतीजी ने पुनः कहा—"भाई, तुम चलो, मैं नित्य धर्म से निवृत हो कर तुम्हारे साथ रास्ते में हो लूँगी।"

ऐसा सुनकर सवार ने सोचा, अब तो मैं शीघ्र ही द्रुत गति से बीका

---

(१) आज से कुछ वर्ष पूर्व मालासर की वाड़ी के पास एक कूमटा (खदिर वृक्ष) था, उसके पेड़ में मथनी की रस्सियों के निशान थे। कहते हैं सती प्यारलदे उन वृक्षों को थेड़ी बनाकर घृत मथती थी।

आज से लगभग १०० वर्ष पूर्व देवायत नामके खेत की एक खजड़े की खोखली पेड़ों में झेरना (मथनी), लोहे का हाथ (जो आशीर्वादात्मक मुद्रा में निर्मित है) और दो छड़ियाँ (यष्टिका) मिली, ये सब वस्तुएँ मालासर के मन्दिर में सुरक्षित रखी हुई हैं। झेरने में गहरे निशान पड़े हुए हैं, जिससे स्पष्ट है कि उसको दीर्घकाल तक घृत मथने के उपयोग में लिया गया है। यह झेरना २½ सेर वजन का है।

नेर पहुँच कर सती की इस राजाज्ञा की अवहेलना की बात महाराजा के समक्ष कह दूँगा और यह अपने वाहन को सरपट दौड़ा ले चला। पर सती प्यारलदे ने सवार को बीकानेर से दो कोस इधर ही जा पकड़ा और कहा— अरे भाई अभी यहीं रेंग रहे हो ?" बिना वाहन के ही सती का यह काम देखकर सवार को बड़ा आश्चर्य हुआ।

बीकानेर में राजा के सामने सती प्यारलदे ने उपस्थित होकर राजा से कहा— राज्य के 'मूँगा' के पेटे मेरी तरफ जितनी रकम बकाया है उस कपड़ा लेकर पूरा करना चाहो तो करलो। नकद पैसे तो मेरे पास नहीं है।'

राजा ने कहा— तुम्हारे पास कपड़ा कहाँ है ? जिसको देकर 'मूँगा' के पैसे राज्य का अदा करोगी।"

यहाँ राजा के समक्ष सती प्यारलदे ने अपने सिद्धियोग से एक हाथ अपने सिर तथा दूसरा अपनी छाती से स्पर्श कर ऐसा चमत्कार प्रकट किया कि एक तरफ सिर से उतार २ कर ओढ़नी (पँवरी) तथा दूसरी ओर कंचुकियों के ढेर लगा दिये और राजा से इन वस्त्रों को लेकर अपना 'मूँगा' भर लेने को कहा।

राजा को पहले यह ज्ञान नहीं था कि सती प्यारलदे साक्षात योगमाया का प्रकट रूप है अन्यथा राजा सती के समक्ष इतनी बड़ी धृष्टता करने की भूल ही न करता। राजा ने सती के समक्ष करबद्ध प्रार्थना की – मातेश्वरी आप अपनी माया को समेटिये।"

सती ने कहा— राजा जितने वस्त्र लेकर तुम्हारा मूँगा पूरा होता हो ले लो। अतिरिक्त वस्त्र मैं वापिस ले जाऊँगी।

राजा ने चरण स्पर्श कर सती से क्षमा याचना की।

ऐसी चमत्कृति प्रकट कर सती प्यारलदे अपने स्थान लौट आई।

कुछ समय बाद रूणिया (भोजेराबास) के ग्रामवासी डालमजी ने सती प्यारलदे से अपना शिष्य बना लेने की प्रार्थना की। इस पर सतीजी ने डालमजी को आज्ञा दी कि वे बायतजी से उनके स्थान पर जाकर बाग वेश ले ले।

बोयतजी से वेश प्राप्त कर जब डालमजी पाँचला से लौटकर माला-सर आये तब तक सती प्यारलदे ने जीवित समाधि लेली थी।

सती प्यारलदे ने जीवित समाधि लेने से पूर्व अपने अधिकृत गोवन को अपने साथ आये हुए कुलगुरु देवपाल पाण्डिया व उनकी सन्तान जशपाल पाण्डिया को दान मे दे दी थी।

सती प्यारलदे के समाधि लेने की तिथि के बारे मे अब तक इतिहास मौन है। केवल आगमन तिथि ही उनकी स्मृति तिथि मानी जाती है।

(३) डालमजी— ये रूणिया ग्राम के भोजेरावास के निवासी थे और गोदारा वश में उत्पन्न हुए थे। ये बोयतजी के शिष्य थे। कहते हैं जब इन्होंने बोयतजी से शिष्य बना लेने का निवेदन किया, तब बोयतजी ने इनसे कहा— "मैं तो साधारण व्यक्ति हूँ, मुझ से तो श्रीदेव जसनाथजी का ध्यान मात्र ही बन पडता है।"

डालमजी ने कहा —"आप केवल भगवाँ दे दें। मुझ पर सती प्यारलदे का पूर्ण अनुकम्पा है। मैं उन्हीं की आज्ञा से आपके पास आया हूँ"

बोयतजी ने डालमजी को भगवाँ देकर सिद्ध-सम्प्रदाय मे दीक्षित कर लिया।

कहा जाता है कि—इन्होने यहाँ चौरासी वर्ष तक तप किया। पहले 'चरस' का पानी पीने का इनका नियम था। इससे पूर्व मालासर ग्राम के लोग जसनाथी नहीं थे। अत लोगों ने कौतूहल वश एक बार मिराशी से कूँआ जुतवा दिया, जब डालमजी का शिष्य कूए से पानी लाने गया तब लोगों ने दूर से ही इन्हें आते देख कर कहा— "डालमजी वाला 'गोधा' (साँड) आता है।"

डालमजी के शिष्य ने कूए की 'चाठ' में मिराशी को देखा और अपने प्रति उपहास पूर्ण कटु वाक्य भी सुने, उसने वापिस आकर सारा हाल अपने मुँह से कह सुनाया।

डालमजी ने कहा—"कूए पर उपस्थित लोगों को सावधान करदो और तुम गौ पुत्र साँड की तरह भूमि कूरेदना (खेरूँ करना) जिससे कुआँ जमीन मे

धँस जायेगा।"

शिष्य ने ऐसा ही किया और सचमुच कूँआ जमीन में धँस गया।

जाम्भजी मालासर के लोगों की दुर्भावना से खिन्न होकर पाँचला[1] चले गये। उनकी माता करमा[2] भी सदैव उनके साथ ही रही।

जाम्भजी पूर्ण गो भक्त थे, क्योंकि उन्हें हवन के लिए गो घृत की आवश्यकता पड़ती थी। कहते हैं जाम्भजी पहले पाँच सेर 'चूरमा' का भोजन करते थे, पर बाद में दूध पीकर ही रहने लग गये थे। एक बार माता करमा जाम्भजी को दूध पिला रही थी। जाम्भजी ने अपनी माता से विनायपूर्ण शब्दों में कहा— माता, अब मुझे दूध मत पिलाओ क्योंकि एक दिन तुम्हें दूध बहुत प्यारा लगेगा।"

माता ने कहा— 'जाम्भ तेरे से अधिक प्यारा दूध कभी नहीं हो सकता।"

जाम्भजी ने रहस्यमय ढंग से पुनः माता से कहा— माता, एक दिन ऐसा होगा कि तू मुझे दूध पिलाने से इन्कार हो जायगी।"

माता ने जाम्भजी को वात्सल्यपूर्ण आश्वासन दिया पर उस दिन के बाद उन्होंने दूध पान का परित्याग ही कर दिया।

जाम्भजी ने पाँचला के सेवकों के सामने इच्छा प्रकट की कि मैं भाद्र कृष्णा अष्टमी को मालासर की बाड़ी में समाधिस्थ होना चाहता हूँ"

सेवकों ने कहा— हम आपको अपने कन्धों पर बैठाकर मालासर पहुँचा देंगे।'

जाम्भजी ने कहा— वहाँ पहुँचना जरा कठिन होगा क्योंकि समाधि काल बहुत निकट है"

लेकिन उत्साही सेवकों ने अपने गुरु की इच्छापूर्ति के लिए मालासर ले जाने का निश्चय नहीं बदला। भाद्रपद कृष्णा सप्तमी को उन्हें अपने कन्धों

(१) इसका प्रथम कथाख्यान आगे दिया गया है।

(२) कहा जाता है कि जाम्भजी का यह संकेत बूढ़ोजी की ओर था क्योंकि माता यह समझ न सकती थी कि बूढ़ोजी जाम्भजी के ही प्रत्यवतार रूप हैं।

पर बैठाकर रवाना हुए। मुश्किल से एक कोस ही चल पाये थे कि रात हो गई और लोग ऊँघने लगे। सन्त हृदय डालमजी से अनुमति लेकर वे वहीं सो गये।

आचीणा ग्राम के एक डोगीवाल जाट ने जो आसपास ही अपना रेवड चरा रहा था, यह सुना कि डालमजी महाराज समाधिस्थ होने के लिए मालासर जा रहे हैं, तो उसने सोचा कि चलकर दर्शन करना चाहिए। वह अपने भानजे दूदोजी को एवड की रखवाली का भार सौंपकर डालमजी के दर्शनार्थ वहाँ आया और दर्शनोपरान्त उसे भी वहीं नींद आ गई। दूदोजी की इच्छा भी महाराज के दर्शन करने की हुई। वह भी अपने मामा के पीछे गुप्त रूप से चल पड़ा और झुरमुट में छिपकर बैठ गया। उसने सोचा, जब मामा उठेगा तब मैं भी छिपकर अपने एवड के पास चला जाऊँगा।

रात्रि में डालमजी ने 'सूत्या हो'क जागो हो'' (अर्थात् सो रहे हो या जाग रहे हो।) की तीन बार आवाज दी। छिपे हुए दूदोजी प्रत्युत्तर में कहते रहे, 'हाँ महाराज, जागता हूँ।' चौथी आवाज डालमजी ने प्रातःकाल होने के साथ दी, और सबने एक साथ जगकर कहा— 'हाँ महाराज, जागते हैं।' तब डालमजी बोले— 'जागण हाळो जागियो'र जाग्यो जाट अलाऊ'', अर्थात् जो जागृत होनेवाला था, हो चुका है, चाहे हमारा लक्ष्य उसे जागृत करने का न था, पर भाग्योदय को कौन रोक सकता है।

दूदोजी को वैराग्य हो गया, उन्होंने वहीं डालमजी से दीक्षा ले ली। डालमजी ने उन्हें आज्ञा दी कि तुम पाँचला जाकर माता 'करमा' तथा बोयतजी की समाधि की सेवा करना। तुम्हें इष्ट की प्राप्ति होगी। डालमजी अपने योगबल से मालासर पहुँच गये और पूर्व निश्चयानुसार भाद्रपद कृष्णा अष्टमी को समाधिस्थ हो गये।

डालमजी के समाधिस्थ होने का सम्वत् अभी तक अज्ञात है।

(४) अमीनाथजी— ये मालासर की बाडी के परम तपस्वी सिद्ध हुए हैं। उस समय बाडी में एक 'माळिया' था। अमीनाथजी उसी में अपनी साधना करते थे। उनके चढने की घोडी तथा गाय बाडी में ही रहती थी और स्वच्छन्दता पूर्वक जगल में चरा करती थी।

एक दिन एक सरकारी सिपाही घोड़ी तथा गाय के जंगल में चरने का मूँगा माँगने के लिए अमीनाथजी के पास बाड़ी में आया उसने हाथ में हुक्का लिए, जूता पहिने और घोड़ी पर चढ़े हुए ही बाड़ी में प्रवेश किया। अमीनाथजी ने इस दशा में दूर से ही उसके इस असभ्यतापूर्ण ढंग व बाड़ी के नियम विरोधी प्रवेश को रोकना चाहा पर सिपाही बाड़ी की ओर बढ़ता ही आया।

जब अमीनाथजी के रोकने पर भी सिपाही न माना और बाड़ी में घुसता आया वैसे ही अमीनाथजी भी जमीन में धसते गये। गर्दन तक धंस गये तब सिपाही ने कहा— मैं ऐसी नट-क्रिया से घबराने वाला नहीं यदि तुम सिद्ध हो तो कोई विशेष चमत्कार दिखाकर परिचय दो।"

अमीनाथजी ने सिपाही से कहा—' परचा माँगना तुम्हारे हित में ठीक न होगा।"

लेकिन सिपाही ने अपनी जिद न छोड़ी इस पर अमीनाथजी ने सिपाही से पुन कहा— परचा तू तन पर माँगना चाहता है या राज्य पर।"

सिपाही ने कहा— यदि तुम समर्थ हो तो मेरा ही अनिष्ट करो।'

अमीनाथजी बोले — तुम्हारी यह घोड़ी और ऊँट बीकानेर पहुँचने से पूर्व ही मर जायेंगे पर पहुँचने पर तुम्हें अपने पुत्र की अर्थी सामने मिलेगी और तुम्हारी स्त्री पागल हो जावगी।" सिपाही को यह कहकर अमीनाथजी पृथ्वी के गर्भ में सदैव के लिए समा गये।

इस घटना तथा समाधिस्थ होने की तिथि मिति का कोई पता अब तक नहीं चल सका है।

(५) चौधरी रूपाजी गोदारा— रूपाजी के बारे में ऐसी कथा प्रचलित है कि रूपाजी ने जब जीवित समाधि लेने की सोची तब माकासर ग्राम के समस्त लोगों को एकत्र करके कहा— जिस किसी को मुझ से परचा—वरदान माँगना हो समाधि में बैठने से पूर्व ही माँग ले। जब मैं समाधि में बैठ जाऊँ तब कोई कुछ न माँगे।

कहते हैं लोगों ने अपने मनवाञ्छित वस्तुओं की प्राप्ति के

वरदान माँगे। समाधि में बैठने के प्रश्चात् लोगों ने राजस्था-नबीकानेर का अमृतफल 'मतीरा' केशोजी को भेंट किया, उस समय एक व्यक्ति मजाक में केशोजी से पूछ बैठा—"केशो दादा, थानैं कीं दीसै ही है ?" अर्थात् आपको कुछ दिखता भी है ?

केशोजी ने कहा—"दीसै है थारी बीस गुवाड़्याँ की ऊत जाँती।" अर्थात् तुम्हारे कुल के बीस घरों का अन्त होता हुआ दिखाई दे रहा है।"[1]

केशोजी ने वि० स० १८८५ में समाधि ली थी।

(६) देवाराम नाई—इनके विषय में कहा जाता है कि इन्होंने मालासर मे समाधि लेने के पॉच दिन बाद गगा स्नान करके आनेवाले मालासर के कुछ लोगों को इन्होंने कतरियासर में सदेह दर्शन दिया एवं अपने हाथ से रोटी बनाकर खिलाई। अन्यान्य कई सिद्धों के समाधिस्थ होने की तिथि जिस प्रकार अज्ञात है, उसी प्रकार इनकी समाधिस्थ होने की तिथि भी अज्ञात है।

पाँचला सिद्धों का[2]—

सती प्यारलदे की आज्ञा से सिद्ध बोयतजी ने यहाँ आकर और सुघड नाल का कूँआ प्राप्त कर इस ग्राम को बसाया था। यहाँ यशोनाथ पुराण के अनुसार ८ आठ जीवित समाधियाँ हैं, पर वर्तमान सिद्ध के कथनानुसार यहाँ केवल तीन जीवित समाधियाँ ही हैं —

(१) बोयतजी—ये सतीजी (काळलदे तथा प्यारलदे) के छोटे भाई थे। सुना जाता है कि बोयतजी जन्मजात पगु थे, किन्तु जब सतीजी का चूड़ीखेड़ा से कतरियासर आगमन हुआ, उस समय सतीजी की अनुकम्पा से इनके पैर स्वस्थ हो गये।[3]

---

(१) मालासर के लोगों के कथनानुसार यह समस्त कुल नष्ट होगया है।

(२) यह ग्राम नागौर शहर से जोधपुर जानेवाले मोटर मार्ग (सड़क) की खीवसर स्टेशन से लगभग ४-५ कोस पश्चिम दिशा में स्थित है। मारवाड़ प्रदेश में पाँचला नाम के कई ग्राम है, किन्तु इसमें जो सिद्धों का विशेषण लगा है, वह स्पष्ट ही ऐतिहासिक तथ्य प्रकट करता है। अत इस ग्राम के नाम के साथ भी 'सिद्धों का' नाम जुट गया है।

(३) बोयतजी के विषय में भी किंवदन्ती है कि जब महासती काळलदे तथा

मारवाड़ में सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के प्रचारक के रूप में सब प्रथम—इन्होंने ही प्रवेश किया था। जसनाथ-सम्प्रदाय में बायतजी का बड़ा सम्मान है पर खेद का विषय है कि ऐसे आदर्श पुरुष का विशेष रूप से जीवन वृत्त प्राप्त हुआ नहीं हुआ।

इनकी समाधि के विषय में केवल इतना ही कहा जाता है कि बाय तजी एक दिन शौच के लिए (जहाँ वर्तमान में पाँचला का गढ़ के रूप में बना हुआ आसन' है) आये। साथ में इनके शिष्य लालमजी भी थे। वहाँ बायतजी ने बैठे २ बालकों के खिलौने की तरह मिट्टी की समाधि बनाली और सहसा लालमजी से कहा— 'मैं तो अभी इसी स्थान पर समाधि लूँगा, क्योंकि सकल सृष्टि के प्रेरक गुरुदेव का हुक्म होगया है। अब तुम परिवार को जाकर सूचित कर आओ।

इसके पश्चात स्वजनों के समक्ष सिद्ध बायतजी समाधिस्थ होगये और लालमजी ने अपने गुरु बोयतजी की समाधि के चारोंओर 'वाड़-बाएली (बाड़ी बनाली) और वहीं पर बहुत वर्षों तक तपस्या करते रहे। मनीराम परिवार भी उन्हीं की समाधि के आसपास आकर बस गया।

(३) दूरोजी— यह पहले बताया जा चुका है कि ये सिद्ध लालजी के शिष्य थे। दैविक संयोग से ही इनको वैराग्य एवं ज्ञानोदय हुआ। लालजी के प्रसंग में इनके इस सम्बन्ध की घटना बताई जा चुकी है। दूरोजी की जन्म भूमि मनिया (मारवाड़) थी। और वे अपनी ननिहाल आचीणा में रहते थे।

दूराजी प्रतिभाशाली सिद्ध पुरुष थे। किंवदन्ती है कि स्वयं सिद्धा चार्य श्री जसनाथजी ने पंगु की देह से शासन का निष्क्रमण करते समय इनके विषय में भविष्यवाणी की थी।[1]

प्यारसदे रथ में बैठकर कतरियासर आने को उद्यत हुई तब बोयतजी ने भी सह साथ चलने की इच्छा प्रकट की। कहते हैं उस समय मनीजी ने इनकी बाँह पकड़ कर खड़ा कर दिया तथा अपने साथ रथ में बैठा लिया— तब से इनका चमत्कार उत्पन्न रहा।

(१) वंशिष पद के प्रसंग में।

दूदोजी के सिद्ध पुरुष होने की चर्चा चारों ओर फैली हुई थी। उनके सिद्धियुक्त अनेक चमत्कारों से लोग भलीभाँति परिचित हो चुके थे। दूदोजी के जीवन घटना सम्बन्धी अनेकों उपाख्यान जसनाथ सम्प्रदाय मे प्रचलित है।

जोधपुर महाराजा जसवन्तसिंह को वीरमदेव[1] सुरज मलोत (उदयपुर) की पुत्री विवाही हुई थी। एक बार वह अपने पिता के यहाँ उदयपुर गई। वहाँ उसने अपने पिता को सिद्ध दूदोजी के सिद्ध पुरुष होने का परिचय दिया और वीरमदेव ने महाराणा जगतसिंह को इस विषय से अवगत कराया। महाराणा जगतसिंह दीर्घकाल से अस्वस्थ चले आ रहे थे। अत उन्होने अपने रोग से छुटकारा पाने के लिए उक्त सिद्धजी को उपयुक्त समझकर अपने विश्वास पात्र आदमियों को उनके पास भेजा।।

दूदोजी ने महाराणा जगतसिंह के लाभार्थ उनको सिद्धाचार्य के 'धुपेडे' की विभूति दे दी। इसके परिणाम स्वरूप महाराणा को तत्काल ही फायदा हो गया।

उस समय के पश्चात् महाराणा जगतसिंह ने सिद्ध दूदोजी को उदयपुर बुलाया तथा उनका बड़ा स्वागत सत्कार किया। कहते हैं महाराणा की पीडा का कारण उनमें भयकर दैत्य का प्रवेश था। उसको सिद्ध दूदोजी अपने योगबल से आबद्ध कर पाँचला ले आये और एक शिला खण्ड के नीचे दबा दिया।

पाँचला के 'आसन' के गढ का निर्माण होने के बाद उस राक्षस को दक्षिणी बुर्ज म 'कील' दिया गया। सिद्ध दूदोजी ने राक्षस से कहा था कि 'तुम्हारी दृष्टि उस शिला[2] में ही रहनी चाहिए, जिसमे राक्षसी योनि की अवधि समाप्त होने पर तुम्हारा कल्याण हो जाये।

महाराणा जगतसिंह को सिद्ध दूदोजी के यौगिक उपचार से स्थायी लाभ हुआ था। अत उन्होंने सिद्ध दूदोजी के लिए 'पेटिये' बाँध दिये थे तथा

---

(१) डा० ओझा, जोधपुर का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ० स० ४६६।

(२) यह शिला अब तक 'आसण' (गढ) के मुख्य द्वार के उत्तर की तरफ रखी हुई है। माथ पर भगवा चादर ओढ कर तथा हाथ में मयूर-पख लेकर इस शिला पर बैठकर रोग झाडने से रोगी रोग मुक्त हो जाता है।

राजकीय खर्च से जसनाथजी के 'आसन' के चारों ओर गढ़नुमा परकोटा चिनवाया और राजपूत शैली की 'पोल'[1] बनवाई। उस पर दूरोजी के निवास के लिए अति रमणीय महल भी बनवाया। उसके झरोखों को देखने से, सिद्ध दूरोजी के प्रति महाराणा जगतसिंह ने जो श्रद्धा प्रकट की है उसका सजीव चित्र सामने आ जाता है। कहा तो यहाँ तक जाता है कि महाराणा ने दूरोजी को तीन लाख रुपये भी भेंट में दिये थे।[2] उन रुपयों को सिद्ध दूरोजी ने ब्राह्मणों को बाँट दिया। कुलगुरु देवपाल पाविया की सन्तान को उन्होंने मान की मूठ की दो कटारियाँ भी उपहार में दी थी।

सिद्ध दूरोजी के चार शिष्य हुए—

(१) देवाजी (२) जोगीनाथजी (३) कँवराजी और (४) नाथाजी।

दूरोजी की रचनाओं में पैंसठ परवाणा ग्रंथ के अतिरिक्त अनेकों रस-प्लावित स्फुट रचनाएं उपलब्ध होती हैं। जसनाथी साहित्य को समृद्ध बनाने में दूरोजी का योगदान अत्यधिक सराहनीय है।

सिद्ध दूरोजी की चमत्कार पूर्ण अनेकों घटनाएं 'जसनाथ सम्प्रदाय' में प्रचलित हैं जिनमें माठिका की देवी के साथ वार्तालाप होना बहुत प्रसिद्ध है।[3]

सिद्ध दूरोजी वि० सं० १७५३ आषाढ़ कृष्णा सप्तमी मंगलवार को पाँचला के आसन में जीवित समाधिस्थ हुए। उनसे सम्बन्धित जसनाथ

---

(१) इस विषय में बाहरी—कोट की पोल में दक्षिण की तरफ एक शिला लेख है जिसमें कोट तथा राजा द्वारा कमठाणा (कोट निर्माण) करवाने का विवरण है।

(२) महाराणा जगतसिंह बहुत बड़े दानवीर थे। इस सम्बन्ध में देखिए डा० ओझा द्वारा लिखित राजपूताने का इतिहास दूसरी जिल्द पृष्ठ ८११ से ८१८ तक।

(३) सिद्ध दूरोजी के साथ वार्तालाप के लिए माठिका की देवी विमान में बैठ कर रात्रि में यहाँ आया करती थी। महल के बीच बैठे हुए लोगों को दो भिन्न स्वरों में बात सुनाई पड़ती थी। इस रहस्य को जानने के लिए गुप्त रूप से कई बार देखा गया पर महल में सिद्ध दूरोजी के अतिरिक्त दूसरा कोई दिखलाई नहीं पड़ता था। जिज्ञासु शिष्यों के पूछने पर उक्त रहस्य को दूरोजी ने प्रकट भी कर दिया था।

सम्प्रदाय में यह 'सबद' प्रचलित है —

समों सतरो, वरस'ज तीसो, सात्यूँ मंगळवारी ।
वद आसाढी में गुरु म्हारा, कीधी सत् असवारी ।
सत री न्याव चली सुरगाँ नै, भळकंते दीदारी ।
ग्यान ध्यान सूँ पूरा जोगी, शिव-गोरख औतारी ।
सुरग मँडळ दूदोजी वैठा, सत री वात विचारी ।
सुरग मँडल रा देई देवता, सभी करै जैकारी ।
गुरु सरणै टीकूँजी वोलै, महर करै गुरु म्हारी ।

(७) नाथोजी— इनका जन्म साठिका ग्राम में हुआ । यह ग्राम प्राचीन काल से ही देवी का स्थान होने के कारण मारवाड़ भर में प्रसिद्ध है । नाथोजी के विषय में कहा जाता है कि ये सिद्ध-सम्प्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व माताजी (देवी) के भोपा थे और उनकी आराधना में अपनी जिह्वा काटकर देवी के अर्पित किया करते थे ।

एक वार भ्रमण करते हुए सिद्ध दूदोजी साठिका पहुँचे । उस समय नाथोजी ने देवी को जिह्वा-खण्ड अर्पण कर रखा था, किन्तु आश्चर्य था कि तीन दिन वीत जाने पर भी उनकी जिह्वा जब पूर्ववत् न हुई तब साठिका ग्राम के लोगों ने यह घटना सिद्ध दूदोजी को निवेदन की । लोगों के कहने पर सिद्ध दूदोजी वहाँ पर गये और उन्होंने कृपापूर्वक नाथोजी की जिह्वा पर अपने हाथ से 'विभूति' लगाई । ऐसा करने पर नाथोजी की जिह्वा पूर्ववत् हो गई । इस चमत्कृति से प्रभावित होकर नाथोजी सिद्ध दूदोजी के शिष्य वन गये ।

एक दिन पाँचला के आसन में सिद्ध दूदोजी अपने शिष्यों और सेवकों के वीच वैठे हुए थे । उस समय लोगों ने नाथोजी की ओर संकेत कर पूछा—"सिद्धजी महाराज ! चेले के पैर टेढे क्यों हैं ?"

दूदोजी ने उत्तर दिया—"ठिकाने (उत्तराधिकार) का भार इसी पर है । गुरुतर उत्तरदायित्व के वोझ से ही इनके पैर टेढ़े हो गये हैं ।"

कहा जाता है कि दूदोजी की यह घोषणा सुनकर अन्य शिष्यों ने महन्त-पद की आशा छोड़ दी और उन्होंने अपने अलग २ आसन वना लिये ।

सिद्ध दूदोजी के समाधिस्थ होने पर नाथोजी ही पाँचला के महन्त-

पद पर आसीन हुए।

सिद्ध नाथाजी ने अपने गुरुस्थान पाँचले के आसन की बहुत उन्नति की। नाथाजी महाराजा अजीतसिंहजी के पूर्ण हितैषी थे और अनेक प्रकार से उनके हित-साधन में संलग्न थे।

जोधपुर में मुसलमानों का अधिकार होने के कारण हिन्दुओं को बड़ा तंग किया जाता था। फलतः अजीतसिंहजी का समर्थक होने के नाते मुसलमानों ने नाथाजी को भी बहुत तंग किया। इसलिए वे पाँचले के आसन का भार चौधरी ताजा तथा भाखर जगमाल पर छोड़कर मालासर (बीकानेर) आकर रहने लगे। लगभग पाँच वर्ष मालासर में रहने के पश्चात् जब वे पुनः पाँचला गये तब उस जाट और भाखर ने नाथाजी का पाँचला का आसन वापस नहीं सौंपा अपितु धक्का मुक्का देकर उन्हें आसन से बाहर निकाल दिया। कहा जाता है कि ऐसा करते समय नाथाजी की चद्दर का एक छोर आसन में ही किसी वस्तु से अटक गया और ज्यों ज्यों नाथाजी बाहर आते गये त्यों त्यों वह चद्दर लम्बी बढ़ती गयी। इस दृश्य को वहाँ उपस्थित भाटा बनीदास ने देखा तथा उन दोनों व्यक्तियों को इस घटना से अवगत कराया और कहा— "ये नाथोजी महाराज सिद्ध पुरुष हैं। इनके साथ तुम्हें यह दुर्व्यवहार नहीं करना चाहिये इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।"

पर उन बुद्ध-बुद्धियों पर इस चमत्कारपूर्ण घटना एवं भाटा बनीदास के शब्दों का कुछ असर न हुआ।

तदनन्तर जोधपुर-बीकानेर की कासीद (डाक) ले जाने वाला एक बिरनाई उधर से आ गुजरा। नाथाजी उसके साथ बीकानेर चले आये। बिरनाई द्वारा नाथोजी के बीकानेर आगमन की सूचना पाकर बीकानेर महाराजा ने उनका समुचित सत्कार किया।

मालासर के सिद्ध के कथनानुसार इस घटना का उल्लेख इस प्रकार है— जब जोधपुर में मुसलमानों का पूर्ण आधिपत्य हो गया तब नाथाजी बीकानेर आ गये। उन्होंने बीकानेर के गढ़ के सामने अपना आसन जमाया।

उस समय बीकानेर नरेश दिल्ली जाने की तैयारी में थे। राजा जिस हाथी पर सवार होकर दिल्ली जाना चाहते थे, वह हाथी महावत के पूर्ण

प्रयत्न करने पर भी जब खडा न हुआ तब राज्याधिकारियों ने नाथोजी से हाथी के खडा न होने का कारण पूछते हुए उसको खडा करने की प्रार्थना की। उन्होंने कहा—"जाओ, हाथी खडा हो जायेगा और जिस कार्य के लिए महाराजा दिल्ली जा रहे हैं उनका वह कार्य भी सिद्ध हो जायेगा।'

नाथोजी के कथनानुसार हाथी भी खडा हो गया तथा महाराजा को दिल्ली के अभीष्ट कार्य मे सफलता मिली।

इस चमत्कार से प्रभावित होकर बीकानेर महाराजा ने नाथोजी का राजकीय सम्मान किया और उनको नगारा जोडी, निशान और रथ भेंट किया तथा उन्हे मालासर पहुँचाया। महाराजा ने नाथोजी को तीन हजार बीघा जमीन भी भेंट स्वरूप दी, जो अब तक मालासर के सिद्ध के अधिकार मे है।

इस घटना के बाद बीकानेर से नाथोजी मालासर आकर रहने लगे। वहाँ उन्होंने 'रामदान' तथा 'गोरखदान' को अपना शिष्य बनाया तथा उनको कुछ समय अपने पास रखकर बाद मे इन दोनो को महाराजा अजीतसिंहजी की सहायतार्थ 'छप्पन' के पहाड़ो में भेज दिया।

वि० स० १७६३ को महाराजा अजीतसिंहजी का जब जोधपुर पर अधिकार हुआ तब महाराजा ने नाथोजी के उक्त दोनों शिष्यों से कहा—"तुम्हारे गुरु के दर्शन करवाओ। इस बड़े उपकार के बदले में मैं उनकी सेवा करना चाहता हूँ।"

उस समय उन शिष्यों ने महाराजा से नाथोजी एव पॉचला के जाट ब्राह्मण के आसन पर अधिकार कर लेने की घटना तथा अन्य सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

महाराजा ने आसन पुन उनके अधिकार मे करा देने का आश्वासन देते हुए उन दोनों शिष्यों को सिद्ध नाथोजी को शीघ्र बुला लाने के लिए मालासर भेज दिया।

सिद्ध नाथोजी महाराजा अजीतसिंह की अपने प्रति अटूट श्रद्धा देखकर शिष्यों के साथ सीधे जोधपुर आ गये। महाराजा ने उनका बडा

सत्कार किया एवं राज्य की सहायता देकर पाँचला का आसन पुनः इनके अधिकार में करवा दिया। उक्त दोनों व्यक्तियों को दण्डित करना चाहा पर नाथोजी के क्षमाशील स्वभाव ने महाराजा को ऐसा करने से रोक दिया।

सिद्ध नाथोजी ने अपने आसन की समुचित व्यवस्था कर कुछ समयोपरान्त जीवित समाधि ले ली।

सिद्ध बोयतजी, सिद्ध दूदोजी और सिद्ध नाथोजी के पवित्र समाधि स्थल पर पाँचला के आसन में सुन्दर मन्दिर बना हुआ है।

यथा प्रसंग पाँचले के आसन का परिचय कराया जा चुका है अपितु यह बताना असंगत न होगा कि पाँचला के श्री जसनाथजी के आसन की मान्यता जसनाथ सम्प्रदाय के अतिरिक्त बड़े बड़े ताजीमी जागीरदारों तथा राजघरानों तक भी है। नये महन्त के आरोहण समारोह पर प्रचलित पद्धति के अनुसार जागीरदार लोग महन्त के राजी का तिलक लगाते हैं चद्दर उढ़ाते हैं और यथा श्रद्धा भेंट देकर अपने मयश का मान्य स्वीकार करते हैं।

सुदूर क्षेत्रों के जागीरदार भी पाँचला आसन के सेवक हैं। मेलों (चैत्र शुक्ला सप्तमी और माघवा शुक्ला सप्तमी) के समय कनात तने रथों को देखकर जसनाथजी के प्रति मारवाड़ के क्षत्रियों की श्रद्धा का भाव सजीव दृष्टिगत होता है। अन्य यात्री भी उक्त मेलों में हजारों की संख्या में दूर दूर से चलकर आते हैं। दूसरे जसनाथी धामों की भाँति यहाँ भी जसनाथी लोग गंठ जोड़े की यात्रा तथा बच्चों का 'चूड़ाल संस्कार' करते रहते हैं।

जसनाथी पर्वों पर यहाँ मनों सुगन्धित द्रव्ययुक्त घृत का हवन होता है। सेवकों द्वारा हवन के लिए प्रतिदिन मनों घृत तथा पक्षियों के लिए मनों चुग्गा आसन में आता रहता है। श्रद्धालु लोग यहाँ मनौतियाँ मना मनाकर चाँदी सोने के छत्र इत्यादि चढ़ाते रहते हैं जो धरोहर रूप में सुरक्षित रखे जाते हैं। आसन की आय आसन के कार्यों में ही व्यय होती है। निज स्वार्थ के लिए उसका उपयोग नहीं होता। यहाँ अब तक ऐसी ही परिपाटी चली आ रही है।

यात्रियों के लिए आसन की ओर से दोनों समय की भोजन व्यय

स्था की जाती है। इस भोजन व्यवस्था को 'ओगरो' या 'जसनाथजी री शेप' कहते हैं, जो जसनाथ-सम्प्रदाय के यात्रियों के लिए अनिवार्य है।

आसन में दो बडे-बडे जलकुण्ड बने हुए हैं, जिनमे वर्षा का मधुर जल भरा रहता है। आसन की ओर से बने कूँओं मे भी पर्याप्त मीठा जल है।

आसन मे जीवित समाधियों पर मन्दिर तथा सिद्ध महन्तों की समाधियों पर कमरों की तरह विशाल ढोलों के मन्दिर और छत्रियाँ बनी हुई हैं। मन्दिर परिधि के 'पिछोकडे' मे भी जाल के सुन्दर पेडों के झुरमुट हैं, जिनमे मयूरादि पक्षी बडे आराम से निवास करते रहते हैं। वहीं पर धूपेरण' वृक्ष का एक बीडा (पौधा) है। इसका रस धूप बनाने के उपयोग में लाया जाता है। परकोटे के चारों बुर्जों के सिवाय आसन मे अनेकों छोटे बडे मकान बने हुए हैं।

आसन में 'नौचौकिया'[1] नाम का मकान बड़ा ही कलापूर्ण ढग से बना हुआ है। 'नौचौकिये' मे एक काष्ठ का सिंहासन भी रखा हुआ है। वहीं एक कुण्डा (मृत्तिका पात्र) रखा हुआ है, जिसका वर्णन करणों के प्रसग मे दिया गया है।

आसन के परकोटे के उत्तरी भाग मे एक हौज नुमा तालाब बना हुआ है। परकोटा निर्माण के लिए इसी स्थान से पत्थर निकाला गया था। आसन से पश्चिम की ओर लगभग एक कोस पर बकरों की थाट और आसन की ओर से ही एक कूँआ बना हुआ है। थाट मे जसनाथी लोगों के भेजे हुए हजारो बकरे रहते हैं, जिनके चराने एव रखवाली के लिए सवेतन कई आदमी आसन की ओर से ही नियुक्त हैं, पर इसकी अन्य व्यवस्थाओं के लिए पाँचला के लोगों की एक कमेटी बनी हुई है, जो समय समय पर बकरों की समुचित देखभाल करती रहती है। रात्रि में बकरों को सुरक्षित रखने के लिए चहार दीवारी बनी हुई है।

आसन के पीछे 'ओयण' भी बना हुआ है, जिसमें बकरे तथा अन्य पशु चरते रहते हैं।

---

(१) यह पत्थर के स्तम्भो पर नौ गुम्बजो का अति सुन्दर खुला कमरा है। इसके बनाने का श्रेय किसी जसनाथी सेवक को है। नौचौकिये के बाहर एक शिला लेख भी है, जिसमें इसके बनने का पूरा उल्लेख है।

करणू'

यहाँ रा जीवित समाधियाँ हैं यह समाधिस्थल गांव से लगभग डेढ़ फर्लांग उत्तर की ओर स्थित है—

(१) देवोजी– जसनाथ-सम्प्रदाय में सिद्ध देवोजी महान व्यक्तित्व वाले विशिष्ट सिद्धपुरुष हुए हैं। य पाटा" शाखा में उत्पन्न हुए थे। इनकी जन्म भूमि मानियौसर बीकानेर थी पर बाद में य करणू जाकर बस गये। इनके सद्‌गुरु पाँचला के सुप्रसिद्ध सिद्ध रूपोजी महाराज थे। सिद्ध देवोजी का जीवनवृत्त बड़ा गम्भीर उतार चढ़ाव लिए हुए समस्यापूर्ण था।

इनकी स्त्री बड़ी कर्कशा थी। वह इन्हें बहुत कष्ट देती थी स्त्री के स्वभाव से बाध्य हो कर इनको घर का सारा कार्य करना पड़ता था जिसकी अभिव्यक्ति इनके द्वारा रचित साहित्य में स्पष्ट रूप से झलकती है।

इनको जंगल में गौंव एकत्रित करते समय गुरु गोरखनाथजी की मर्जी के दर्शन हुए थे। इस सम्बन्ध में स्वयं देवोजी ने अपने सबद' में भावुकता से उल्लेख किया है—

> भगवान सीखो आपरी मरजी, मैं दुख भुगत्यो सारो
> मैं भिखयारी फिरूँ बन माहीं, धाकर घोर तमारो
> इण कूमट फिरसार पधारया, ऊग्यो सूर सुवारो
> गून घुगन्तौं गोरख मिळिआ, मान्यो घोर अन्धारो
> काया-पालक माँ मीं शदिया दरसण हुयो धर्म्यां रो
> माँड पिसार मिल्या बाबोजी, जद सुख दीठो थारो
> रंग महल रा थे राजसर, अठै क्यूँ आप पधारो
> आप थका इस्ती रै होवै, जद 'श्री'– करप्यो म्हारो
> स्वार-जमारो बिखमी बिळियाँ, मैं दुख भुगत्यो सारो
> पाँच कोस रो पैंडो करतो, सिर लकड़ियाँ रो भारो
> पाँव पिसार पीसणों करतो, मळ ढोतो पणियारो

(१) यह ग्राम पाँचला सिद्धा का" से लगभग सात कोस की दूरी पर उत्तर की ओर स्थित है।

बीती बात 'देवो सिद्ध' बोलै, गरब करो न गिंवारो

गुरु गोरखनाथजी के दर्शनोपरान्त देवोजी वचन सिद्ध हो गये। कहा जाता है कि इन्होंने घर आकर अपनी स्त्री के स्वभाव को बदलने के लिए इसको यह शाप दिया था —

ऊतर भारा, चढ़ बड़ा, घट्ट'ज घूमैं बा'र
ओडाँ रै घर लादणी, ज्यूँ 'देवै' घर-नार

सिद्ध देवोजी बहुत समय तक गृहस्थ रूप में ही रहे। वे समय समय पर पाँचला जाकर सिद्ध दूदोजी महाराज से सत्संग लाभ किया करते थे। किंवदन्ती है कि जब दूदोजी महाराज पाँचला के महल में देवोजी से बातें करते थे, तब एक दिन सिद्धजी के अन्य शिष्यों एव पोळियों ने उनसे कहा — "सिद्धजी महाराज, आप देवा से तो बहुत समय तक बातें करते रहते हैं और हम से बोलते तक नहीं यह क्या कारण है ?"

सिद्ध दूदोजी ने कहा — 'यह देवा सिद्ध पुरुष है। इसलिए मुझे इससे बातें करने में आनन्द मिलता है।'

एक बार की बात है कि सिद्ध दूदोजी के दर्शनार्थ करण् से देवोजी पाँचला आये। उस समय ईर्षावश दूदोजी के अन्य शिष्यों ने कहा—महाराज आपका सिद्ध पुरुष चेला देवा आ गया है। अत उसे कूँए पर भेजकर पानी वैका'णा (गाडी) मंगवाइये, क्योंकि कूँआ तो अभी बह ही रहा है।"

शिष्यों की डाहपूर्ण बात सुनकर देवोजी ने कहा—"कूँआ बह तो नहीं रहा है, फिर भी मैं गुरु कृपा से पानी अवश्य ला दूँगा।"

देवोजी गाडी पर मटकियाँ तथा घडे रखकर कूँए पर गये कूँआ पहले से बन्द था ही। उन्होंने कूँए की परिक्रमा की तथा गाड़ी उसी प्रकार वापस मोड ली। जब वे आसन की पोळ में प्रवेश करने लगे तब देवोजी ने कहा— 'भरिया सो भरिया, ठाला सो ठाला (जो भरा हुआ है वह तो भरा ही रहेगा और जो रिक्त है वह भर नहीं सकता अर्थात जो ज्ञानी है वह तो ज्ञानी ही रहेगा और जो अश्रद्धालु है उसे ज्ञान प्राप्त होना कठिन है) ऐसा कहते ही गाडी में बन्धे हुए सारे घडे पानी से भर गये। मजाक करने वाले सन्न रह गये।

× × ×

देवोजी द्वारा उक्त चमत्कृति प्रकट करने पर भी ईर्ष्यालु शिष्यों तथा पाखियों की द्वेषाग्नि शान्त न हुई उनका सदैव यही प्रयत्न रहा कि यदा कदा देवोजी को परास्त कर उनके सिद्ध पुरुष होने की बात मिथ्या सिद्ध की जाय।

देवोजी पाँचला आते जाते तो रहते ही थे। एक बार जब वे यहाँ आये तो दूदोजी के शिष्यों ने एक युक्ति सोची और आटे का एक साप बना कर कुण्डे के नीचे छिपा दिया फिर अपने गुरु के सामने ही देवोजी से उन शिष्यों ने पूछा — "तुम सिद्ध पुरुष तो हो ही बताओ! कुण्डे के नीचे क्या रखा है ?"

देवोजी ने उन लोगों की ऐसी दुष्प्रवृत्ति देखकर कहा—

"करणू सूँ सिद्ध देवो आयो, मान सको तो मानो
परगट हुय'र सिद्ध कहायो, लोग कहै इग्यानो
म्हारे ओढण चोळा पसतर, गुरु रै भगवाँ बानो
कुण्डै हेटै साप छिपायो, कद रैसी ओ छानो"

देवोजी के इस कथन से आटे का साप सचा साप बनकर उन शिष्यों पर झपटा और वे लोग घबरा कर मूर्च्छित हो गये। उस दिन के बाद दुराग्रही शिष्यों ने देवोजी के सिद्धपद को स्वीकार कर लिया।

कुछ लोगों का मत है कि यह घटना जोधपुर में घटित हुई थी कि जब जोधपुर महाराजा के यज्ञादि प्रयत्नों के बाद भी राज्य में वर्षा न हुई और ज्योतिषियों ने किसी कारण वश वर्षा का योग नहीं बताया तब सिद्ध दूदोजी को वर्षा करवाने के लिए जोधपुर बुलवाया इस अवसर पर देवोजी भी उनके साथ थे।

सिद्धजी ने अपने योगबल से राज्य भर में पर्याप्त वर्षा करवा दी।

(१) पद्यांश इस प्रकार है—
जिलमादेसर गुरु हँस राजा नौरंगदेसर ध्यामा
कम राज सूँ कुसी मेल्या "मढो बाजक माढो
पामक स गिरधर ने चाल्या कद न धम्मो पामो
इधा करा ता म्हारी सुणज्यो दिल रो अन्तर मामा

इससे राज-ज्योतिषियों एव पण्डितों को इनसे बडी ईर्ष्या हुई। उन्होंने राजा के कान भरे और इनके सिद्धि-परीक्षण के लिए यह 'धाघ वाला षड्यन्त्र जोधपुर दरबार में ही रचा गया था।

कहते हैं, वहाँ देवोजी ने पण्डितो के 'अन्धानुकरण मतों का अपनी स्फोटमयी वाणी में खण्डन किया था।

इस घटना से जोधपुर महाराज बडे प्रभावित हुए और उसी के फलस्वरूप महाराजा जसवन्तसिंहजी ने चार 'हलवा' भूमि सिद्ध देवोजी को देकर 'पीयाई' आदि की लाग माफ करदी थी। इस आशय का ताम्र-पत्र भी जोधपुर महाराज ने इनको दिया था।[1] इस बात से यह भी सिद्ध हो जाता है कि उक्त घटना जोधपुर में ही घटित हुई थी।

तदनन्तर देवोजी सिद्ध दूदोजी से भगवाँ वेश लेकर जसनाथ-सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये और पापाचारियों को मार्ग विमुख कर कलिकाल ग्रसित प्राणियों को अपनी सर्वतोभद्रा वाणी द्वारा सदुपदेश देने लगे।

देवोजी की जीवन समस्याओं का हल सद्गुरु सिद्ध दूदोजी द्वारा हुआ। इसका कृतज्ञता पूर्ण उल्लेख स्वय देवोजी ने अपने 'सबद' में किया है—

भूख सगीसी व्यथा वणाई, अन् ओखद फरमाया
खीर खाँड रा इमरत मेवा, भूखा अन्त सिराया
जेठ महीनों खळहर तपतो, अट्ठै तीरथ न्हाया
विरै-विरै रा माँय रहूँगा, मिरगा फिरै तिसाया

---

(१) ताम्र पत्र की नकल इस प्रकार है —

स्वस्ति श्री महाराजा धिराज महाराज श्री जसवन्तसिहजी वचनायतु तथा सिद्ध देवो दर्दे रो चेलो गाँव करणू में छै तिणनूं धरती हळवा चार श्री हजूर सूं इनायत कीवी छे सू इणरी आल ओलाद भोगिवी जावसी इणमें तफावत होसी नाही पाणी री पीयाई वगैर कोई लाग लागसी नाही श्री हजूर रो हुकम छे सम्वत १७०० आसोज सुद नै मु० गढ जोधपुर श्री मुख परवानगी गोपालदास सुन्दर दासोत मेडतिया माढ-दासोत।

अपदन्त परदन्त जेलो पन्त वसुन्धरा
नर नरका जावन्त चन्द दिवाकर

सीमथ सत अळ हुयो रै'तो, आखर सूँ सुळझाया
ऊँचै अमलै कोयल बैठी, बोलै सबद सुवाया
गुरु री दाती मूर सती री, कंचन वरणी काया
दूदैजी रा दरसण करतौं, काया अति सुख पाया
गुरु परताप 'देवो' (जी) बोलै, दाखविया जस गाया

असम्भव को सम्भव बनाने वाले गुरु के सामर्थ्य का देवाजी ने अपनी ओजपूर्ण भाषा में कितना सुन्दर एवं सरस वर्णन किया है—

अळख लिख्या कोई लेख न जाणैं, कुण जाणैं कायम रा पार
फिरता चिम्भा ईसर खेलै, जोत सरूपी जुग-दातार
करड़ो पथ कै'र कठिनाई, से सेवै से जाणैं सार
हरजी गिंवर किया गादर सूँ, आपै चढ़ै शेष असवार
पै'लाँ धवळो कान न सँतो, पर धूनो हुयो सिकदार
पाँच मणाँ पग पाछो पड़तो, किरोड़ मणाँ के जूत्यो भार
सीपाँ मोती निज नीपज्या, तुस में रतन कियो विसतार
गिरम्याँ पून तिसायाँ पाणीं, हर सूँ लाग्यो हेत पियार
ज्यूँ गळ डीवै ज्यूँ मन मोवै, साँस-साँस में सौ-सौ वार
अळ में मीन उदक में वासो, कै'वै पियो कद आणें सार
गै'रो पेड़ सैंस पर डाळा, जड़ बिन बिरछ कियो विसतार
जिणरी छाया कीड़ी न सँची, लसकर उतर्‌या अणत अपार
माखी चिरत सेर भर पोयो, मुसियो चढ्यो सिंघाँ री लार
मुसियै पेट सिंघाँ रो वासो, पूल्यो वाण'स लीन्यो मार
तरगस-तीर सै'स बिन सिंगी, गोळी गैब री लीनो मार
से पूजै हरिहर नै बूझै, साँस-साँस साँचा सुचियार
गुरु परताप 'देवो' सिद्ध बोलै, सामैं गावै करै विचार

सिद्ध पुरुष हान के पश्चात् कुछ दिन के लिए सिद्ध देवाजी अपनी जन्मभूमि 'सोनियासर (बीकानेर) आकर रहने लगे थे पर सोनियासर निवासियों के उद्दण्ड स्वभाव से खिन्न होकर वे वापस करणू ही आ गये।

सोनियासर छोडने की घटना इस प्रकार बताई जाती है कि ' देवोजी के बच्चों एवं परिवार के अन्य बालकों में एक झड-बेरी के फलों (बेर) के लिए झगडा हो गया, यह झगडा इतना बढ गया था कि इसमें बच्चों के मा-बाप तक को भाग लेना पडा। इस स्थिति से खिन्न होकर देवोजी ने करणू ही आ कर बसने का विचार किया। इस सम्बन्ध में देवोजी ने सोनियासर के लिए ये दोहे कहे—

सोनियासर तो सूनो होसी, अठै बोलसी मोर
पोटॉ ऊपर पटकी पड़सी, आय बसैला ओर
कळैगारी बोरड़ी तेरैं, कदै न लागसी बोर
म्हे तो म्हारा करणू जास्यॉ, सॉवरियै सुख-जोर

सिद्ध देवोजी ने वि० स० १७२४ आश्विन शुक्ला एकादशी को करणू ग्राम की रोही' (जगल) में समाधि ली। उस समय उनके गुरुभाई नाथोजी भी वहॉ उपस्थित थे।

समाधिस्थ होते समय सिद्ध देवोजी ने अपने गुरुभाई नाथोजी के सम्मुख महाराजा जसवन्तसिहजी की काबुल में मृत्यु[२] होने तथा स्वकथित तिथि पर मारवाड में मुसलमानों द्वारा उपद्रव एव अधिकार होने की भविष्य-वाणी की—

ग्यारा बरसै गोमदो, कै' आगम री बात
सम्वत सतरै बरस चौडसै, बॉचि कै' परवाण
पैंतीसै में धरा पाचटै, आसी चिरँगी वार
रै'सी राज मॅडोर रो, धर काबल रै पार

---

(१) कहा जाता है कि गॉव के लोगो द्वारा क्षमा मॉगने पर सिद्ध देवोजी ने सोनियासर के लिए पद्य को निम्नलिखित प्रकार से बदल दिया—

'सोनियासर सुवस वसो, आय बसैला ओर'

(२) इस भविष्यवाणी के अनुसार महाराजा जसवन्तसिंहजी की मृत्यु वि० स० १७३५ पौष वदि दशमी को काबुल में हुई।

(डा० ओझा, जोधपुर राज्य० इ० प्र० ख० पृ० ८९)

दो घेळा इक वाकसी, हिन्दू मुसलमान
मोम मसाई मोमिया, मुपस मसै ओषाण
पतसाही नेजा खँचै, पूरब दिसा नीसाण
काया पग पाछा पड़ै, सूरौं नर आसाण
नाळ पळीता वासती, उडसी ईंट पखाण
ओधार्णे नर धादसी, कायम हद को नीर
पलक पलक परचा देवै, परचाधारी पीर
फागण बद पाँच्यू तिथि, चढ़ै सवायो नीर
ऊपर घोल अजीत रा नवकोट्या पूँ सीर
सम्वत सतरै साल चासठे महर करै गुरु पीर
देवो (जी) आगम भाखसी, साय करै रणधीर

देवोजी की रचनायें —

(१) गुरु माल्म—(नीति भक्ति का उपदेशात्मक काव्य ग्रंथ)
(२) देसूँटो—(पाण्डवों के अज्ञातवास का सरस वर्णन)
(३) धरत परभाव—(माता पृथ्वी के गुणानुवाद का अधिकार पूर्ण वर्णन)
(४) लापचक्र लीला—(भक्तिरस की सामान्य रचना)

इनके अतिरिक्त ३ के लगभग लघु रचनायें प्राप्त हैं जो सिद्ध रणाजी की ग्रन्थावली के नाम से संग्रहीत है।

(२) हरनाथजी—ये सिद्ध देवोजी के सुपुत्र थे और ये भी अपने पूज्य पिता के सुयोग्य पुत्र थे। इनका जीवित समाधिस्थल देवोजी के समाधिस्थल के पास ही है पर इन्होंने कब समाधि ली इसका समय ज्ञात नहीं हो सका। इनकी भी अनेकों स्फुटादि की भावपूर्ण रचनायें उपलब्ध हैं—

हँसो विगसो मोवण्याँ, गुरु गोमद गावो
पूरै गुरु नै सेवतां, अमरा पुर पावो
चित चेतो कर आतमा, मत भूले चावो

(१) यह ग्रंथ हमारे द्वारा सम्पादित है और शीघ्र ही इसी प्रकाशन से प्रकाशित किया जायेगा।

कुण रा मिन्तर मेळिया, कुण रा ईया बाबो
जीव नैं जॅवर पठावसी, आवै ऊधरावो
धोरा बाँधो धरम रा, खड खेत निपावो
बीज गुरु रो नाँव है, बाचा लग बा'वो
सैंस गुणॉ फळ लागसी, हर हेत लगावो
करसण कजा न लागसी, कोई दुरमत दा'वो
बैकुंठॉ बासा बसो, जो अलख थे धियावो
जॉ जैसा हर ओळख्या, जैं जिस्यो ठावो
करणी किरत कमायल्यो, जग मोटो लावो

पाँचूड़ी[1]—

यहाँ केवल जोगीनाथजी की जीवित समाधि है जो सिद्ध दूदोजी के शिष्य थे। इनकी समाधि पर सुन्दर मन्दिर है और पानी का कुण्ड भी है। जोगीनाथजी की समाधि के चारों ओर 'ओयण' भी छोड़ी हुई है, जहाँ शिकार आदि करना पूर्णतया निषिद्ध है।

रामपुरा[2]—

यहाँ भी सिद्ध दूदोजी के शिष्य कँवरोजी की एक ही समाधि है। इन्होंने वि० स० १७२० में जीवित समाधि ले ली थी। कँवरोजी की समाधि पर मन्दिर तथा मकान भी बने हुए हैं।

बगसेऊ[3] —

यहाँ साजननाथजी गोदारा ने जीवित समाधि ली थी। ये देवोजी के दीक्षा प्राप्त शिष्य थे। ये थावरिया ग्राम मे यहाँ आकर आबाद हुए थे।

एक बार बगसेऊ के दो सगे भाई भोक्ता (भूस्वामी) परस्पर लड़ पडे।

---

(१) यह ग्राम पाँचला सिद्धों का से उत्तर की ओर ४ कोस की दूरी पर स्थित है।

(२) यह ग्राम मारवाड में है।

(३) यह ग्राम भी साजनवासी के समीप है।

मालननाथजी ने बीच में पड़कर दोनों की तलवारें पकड़ लीं जिसमें इनके हाथ की अंगुलियाँ कट गई पर साथ ही लड़ाई भी रुक गई। मूलाजी ने इस उपकार के बदले में इनको जमीन भेंट की। यहाँ प्रतिवर्ष वैशाख शुक्ला सप्तमी को जागरण होकर हवन होता है। मालननाथजी की पुण्य तिथि प्रति माह शुक्ला पंचमी मानी जाती है।

मालसर—

यहाँ तीन जीवित समाधियाँ हैं—

ये तीनों ही समाधियाँ जसनाथी सतियों की हैं पर दुर्भाग्यवश इन तीनों का ही विवरण भूतकाल के गर्भ में है। भोले ग्रामीण भाइयों के स्मृति पटल से इनका वृत्त उतर गया अनेक प्रयत्नों के बाद भी कोई उल्लेख नहीं प्राप्त हो सका। इसी प्रकार अन्य कई समाधियों का विवरण भी अज्ञात रहा है।

यहाँ की बाड़ी में स्थित मन्दिर में रखे हुए चरण चिन्हों पर एक लेख खुदा हुआ है— सं० १७१५ वर्षे शाके १६० ज्येष्ठ मास सुदी १३ सोमवार इसके अतिरिक्त अक्षर स्पष्ट न होने के कारण पढ़ा नहीं जा सका। सम्भव है उपर्युक्त तीनों सतियों में से किसी एक ने इस सम्वत् में समाधि ली होगी।

बाड़ी सुन्दर एवं रमणीय जाल वृक्षावली से घनीभूत छाई हुई है। यहाँ का दृश्य बड़ा मनोहारी है। जागरणादि यहाँ भी निश्चित तिथियों पर मनाये जाते हैं।

ऊपनी —

यहाँ दो जीवित समाधियाँ हैं—

(१) चाम्होजी—इन्होंने यहाँ कई वर्ष तक निरन्तर तप-साधना की। इस तपस्या के फलस्वरूप इन्हें देव श्री जसनाथजी के दर्शन हुए तथा इनको सिद्धि प्राप्त हुई।

बीकानेर से बाहर जाते समय तत्कालीन बीकानेर महाराजा ने इनके दर्शन किये और इनके वैराग्य से प्रभावित हुए। कहा जाता है कि बीकानेर महाराजा ने इनके लिए हवन के निमित्त घृत आदि का समुचित प्रबन्ध कर

(१) यह ग्राम रीड़ी से लगभग चार कोस की दूरी पर पश्चिम की ओर स्थित है।

दिया था। राज्य की ओर से बहुत समय तक यहाँ जसनाथजी का जागरण भी लगता रहा।

चान्दोजी ने कब किस सम्वत् मे समाधि ली यह अभी अज्ञात ही है।

(२) यहाँ एक सतीजी ने भी समाधि ली थी, पर इनके विषय का कोई भी वृत्त अब तक प्राप्त नहीं हो सका है।

कालड़ी[1]—

• यहाँ सर्व प्रथम खींवोजी ने ८४ वर्ष तक तप किया। तत्पश्चात् सिद्धाचार्य की अन्त प्रेरणा से यहाँ मोतीनाथ सऊ ने तप किया।

यहाँ आज से लगभग ५५ वर्ष पूर्व मोतीनाथजी सऊ ने अपने द्वारा सस्थापित जसनाथजी के मन्दिर मे घृत की अखण्ड दीपशिखा प्रज्वलित की थी, जो अब तक निरन्तर जलती चली आ रही है। इसलिए तो इस बाडी के विषय में कहा गया है—"कळजुग किनारै कालडी, इन्द्र को रहसी मान" वाडी मे स्थित मन्दिर के चारों ओर वृक्ष पंक्तियाँ बडे सुन्दर रूप में लगी हुई है, जो दर्शक को अपनी ओर बरबस आकर्षित कर लेती हैं। बाडी में सुन्दर सुन्दर अनेकों पक्के मकान बने हुए है जिसका श्रेय वर्तमान सिद्ध को है। यहाँ जसनाथी पर्वों पर जागरणादि शुभ कार्य सम्पन्न होते रहते हैं। इन अवसरों पर समीपवर्ती जसनाथ मतानुयायी यात्रियों का मेला लगता है। बाडी के सामने पक्षियों के लिए एक विशाल कबूतरखाना लोहे की शलाकाओं से बना हुआ है। पास ही बाडी के उत्तर की ओर एक मीठे जल का कूँआ भी है।

साधूणा[2]—

इस ग्राम मे दो जीवित समाधियाँ हैं —

(१) गिरधारीनाथजी—इनका विशेष वृत्त अब तक उपलब्ध नहीं हो सका है, पर इनकी कुछ सामान्य स्फुट रचनायें मिलती है।

(२) पदमनाथजी—इनका वृत्त भी अज्ञात ही है।

---

(१) यह ग्राम बीकानेर जोधपुर रेलवे लाईन की अळाय स्टेशन से लगभग तीन कोस की दूरी पर पश्चिम दिशा में स्थित है।

(२) यह ग्राम नोखा मडी से एक कोस पश्चिम-दक्षिण में बसा हुआ है।

प्रदेश की समस्त जसनाथजी की बाड़ियों में ढ़ौंसेरा के बाद सुन्दरता एवं रमणीयता की दृष्टि से माधूणा की बाड़ी का दूसरा स्थान है।

यहाँ बाड़ी में दो मीठे जल कूएँ हैं जिनका निर्माण का श्रेय साधु पुरुखनाथजी का है। माधूणा की बाड़ी के लोग जसनाथजी के प्रति विशेष श्रद्धा रखते हैं।

सेरूणा[1]—

यहाँ तीन जीवित समाधियाँ हैं –

(१) लालनाथजी—इनकी समाधि सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही हुई थी।

ये उच्चकोटि के सिद्ध पुरुष होने के साथ साथ सुकवि भी थे। इनके द्वारा रचित साहित्य जसनाथी साहित्य की अमर निधि है। इनके 'चार जुगी सबद आदेश आदेश रो छंद और जलम झूलरा' आदि रचनाएं सर्व प्रसिद्ध हैं।

(२) खेतजी गोदारा
(३) डूँगरजी खाती
— इनका कोई वृत्त प्राप्त नहीं हो सका।

पूनरासर[2]—

यहाँ जाग्रत जसनाथजी की बाड़ी है। यशानाथ पुराण में यहाँ पर पाँच जीवित समाधियों के होने का उल्लेख मिलता है।

इन पाँचों ही समाधियों का कोई विवरण हमें प्राप्त नहीं हो सका पर यह सुनिश्चित है कि यह ग्राम जसनाथ सम्प्रदाय की विरक्त मण्डली के महात्माओं का विशिष्ट केन्द्र रहा है।

बिलनियाँसर[3]—

यहाँ दो जीवित समाधियाँ हैं—

---

(१) यह ग्राम सूडसर स्टेशन से पश्चिम की ओर चार कोस की दूरी पर स्थित है।

(२) यह ग्राम बीकानेर दिल्ली जाने वाले मोटर मार्ग (सड़क) पर स्थित धामासर ग्राम से तीन कोस की दूरी पर बसा हुआ है।

(३) यह ग्राम नाथजी वाले सालासर के पास है।

(१) पूलण सती—ये सती ठुकरोजी की माता थी। जब ये बिलोवणा (दधि मथन) कर रही थी तब सहसा 'नेडी' के पास जाल का पेड पैदा हुआ। क्षण भर में ही उसने बडे पेड का रूप ले लिया। ज्यों ही पेड बढ़ा त्यों ही सती पूलण को सत चढ गया और तत्काल ही सती ने उसी स्थान पर जीवित समाधि ले ली।

(२) किसननाथजी—ये पूलण सती के भतीजे थे। ये बड़े गौ-भक्त थे। कहा जाता है कि ये अपने भरे खेत में गायें चराकर जीवित ही समाधिस्थ हो गये।

ऊँटालड़[1]—

यहाँ दूदोजी सियाग ने सं० १८५३ माघ शुक्ला प्रतिपदा को जीवित समाधि ली। यहाँ माघ पर्व पर जागरण एव हवन होता है। उक्त जीवित समाधि से पूर्व भी यहाँ जसनाथजी की बाडी थी।

जोगलिया[2]—

यहाँ तीन बाडी हैं, जिनमें चार जीवित समाधियाँ हैं—

(१) हेमोजी— महिया शाखा के सिद्धों में सर्व प्रथम वि० सं०.१५४५ में हेमोजी ही सिद्ध हुए थे। कहते हैं इनको श्री जसनाथजी के अनुग्रह से ही भगवों टोपी मिली थी।[3] उस दिन के बाद इन्होंने जसनाथ-सम्प्रदाय में प्रवेश किया।

हेमाजी महान सिद्ध पुरुष थे। इन्होंने सबलजी बीदावत (सॉवलदासौत) को पुत्र प्राप्ति का वरदान दिया। पुत्र होने पर उक्त ठाकुर ने इनकी बाडी की मान्यता की। इनकी जीवित समाधि गाँव से दक्षिण की ओर है, जिसको लखाणों की बाडी के नाम से भी पुकारा जाता है।

---

(१) यह ग्राम पारेवडा ग्राम से तीन कोस की दूरी पर पश्चिम की ओर स्थित है।

(२) यह ग्राम राजलदेसर (बीकानेर) से लगभग पाँच कोस की दूरी पर दक्षिण दिशा में स्थित है।

(३) अन्य मतानुसार ये मूमोजी (चाऊ) के दीक्षा प्राप्त शिष्य थे।

(२) माननाथजी—इन्हें सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी की अनुकम्पा से ही सिद्धि प्राप्त हुई थी। इन्होंने स्थानीय ठाकुर के नाई रूपजी को पुत्र होने का वरदान दिया था जिसके बदले में उसने जसनाथजी की बाड़ी (मान बाड़ी) के पीछे ओरण छोड़ा। माननाथजी ने वि० सं० १६१६ भाद्रपद शुक्ला त्रयोदशी शुक्रवार को जीवित समाधि ली। इनका समाधिस्थल गाँव के पास दक्षिण की ओर एक ऊँचे टीले पर बना हुआ है। यह स्थान बड़ा रमणीय है। यहाँ चैत्र पर्व पर जागरण हवन होता है। माननाथजी की स्मृति में प्रतिमास शुक्ला त्रयोदशी को ग्राम की ओर से सामूहिक हवन होता है। उस दिन पक्षियों को समस्त गाँव की ओर से चुग्गा डाला जाता है।

यहाँ के निवासी शाखा के सिद्धों में सबसे पहले पाँचाजी ने हाँसाजी (या उनकी परम्परा) से भगवाँ वेश लेकर जसनाथ-सम्प्रदाय में प्रवेश किया। इनका समाधिस्थल मन्दिर है। गाँव में गोई शाखा के सिद्धों की अलग से जसनाथजी की बाड़ी है जिसमें हुई जीवित समाधियों का परिचय निम्न प्रकार है—

(३) गुमाननाथजी — ये बड़े दयालु थे और साथ ही सिद्ध पुरुष भी। इनके पास आगन्तुक संत मंडली का जमघट लगा रहता था। इनके पवित्र स्थल पर एक छोटा-सा सुन्दर मन्दिर बना हुआ है।

(४) इस बाड़ी में एक महिया शाखा के सिद्ध की जीवित समाधि होने का पता चलता है।

जसनाथी पर्वों पर यहाँ जागरणादि शुभ कार्य सम्पन्न होते हैं। बाड़ी में मीठे आम के कई सुन्दर पेड़ हैं। पक्षियों के लिए यहाँ चुग्गा पानी की पर्याप्त व्यवस्था है।

जैतासर[1]—

यहाँ पाँच जीवित समाधियाँ हैं—

(१) देवनाथजी—ये सोई शाखा के सिद्ध थे। इन्होंने वि० सं० १८११ से पूर्व ही जीवित समाधि ली थी। जैतासर के पट्टों को देखने से ऐसा ही

(१) यह ग्राम [illegible] से डेढ़-दो कोस की दूरी पर पश्चिम में है।

प्रतीत होता है।

(२) भींवनाथजी—ये उक्त देदनाथजी के पुत्र थे और जोगलिया के ठाकुर से रुष्ट होकर यहाँ आ बसे थे। एक बार जब जोगलिया का ठाकुर यहाँ आया और भींवनाथजी को अपने सम्मुख देखकर कहने लगा—"भींवनाथ, अभी मुझे दिखाई ही दे रहे हो क्या ?"

तब भींवनाथजी ने ठाकुर से कहा—"अब से तुम्हे नहीं दीखेगा।"

तब से ठाकुर अन्धा हो गया। भींवनाथजी ने समाधि के समय लोगों द्वारा अर्पित दूध को मुँह लगाकर पीया और अवशेष उच्छिष्ट दूध-कटोरा अपनी स्त्री को देना चाहा, पर स्त्री ने जब वह दुग्ध अस्वीकार कर दिया तब उन्होंने अपने छोटे भाई नरसिंघनाथ को वह दुग्ध का कटोरा दिया। दूध पीते ही नरसिंघनाथजी को भी सत चढ गया।

(३) नरसिंघनाथजी—सत चढने पर इन्होंने भी अपने पूज्य भाई भींवनाथजी के साथ वि० स० १८५९ में जीवित समाधि ली।

(४) पन्ना सती—यह उक्त भींवनाथजी की लडकी थी और स्थानीय जाखड़ सिद्धों की दादी थी। इन्हे भी अचानक ही बिलोवणाँ करते समय सत चढा था। उस दिन सती ने अपने लड़के से कहा—"आज मैं समाधि लूँगी, अत नाई के पास जाकर हजामत बना आओ।"

प्रात ही जब लडके नाई के पास गये तब नाई ने कहा—"अभी सूर्योदय मे विलम्ब होने के कारण दिखाई नहीं पडता है—दोपहर में आना।

नाई के यही शब्द लड़कों ने आकर अपनी माता पन्ना सती से कहे। सती ने कहा—"सच है, नाई को दीखता नहीं।"

कहा जाता है कि नाई उस दिन के बाद अन्धा हो गया। सती ने समाधि लेते समय एक पचास वर्षीय अविवाहित ब्राह्मण को पाँच पुत्रों के पिता होने का वरदान दिया। ब्राह्मण का विवाह हो गया और उसके वरदान के अनुसार ही पाँच पुत्र हुए।

पन्ना सती ने वि० स० १९१३ को जीवित समाधि ली।

(५) हरजीनाथजी गोदारा—इन्होंने वि० स० १८४३ वैशाख कृष्णा अमावस्या को जीवित समाधि ली।

रीड़ी[1]—

यहाँ लालोजी नाम के सिद्ध पुरुष ने ६ वर्ष तक जसनाथजी की बाड़ी में तप किया। इसकी स्मृति में यहाँ प्रतिवर्ष फाल्गुन शुक्ला सप्तमी को[2] जागरण होकर हवन होता है।

सारायण[3]—

यहाँ तपसी नामक बड़े सिद्ध पुरुष हुए हैं। बीकानेर महाराजा सूरतसिंहजी ने इन्हें अपना गुरु बनाया और इनको मान्यता के साथ-साथ एक ऐसा ताम्र-पत्र भेंट किया जिसमें समस्त जसनाथी सिद्धों के हित राज्य द्वारा सुरक्षित रखने का उल्लेख है। इन्होंने अनेकों जगह कूए बनवाये। अपनी भतीजी के कहने पर इन्होंने बीकूसरा ग्राम में राज्य व्यय से कूआँ बनवाने का प्रबन्ध किया था।

बेनीसर (बणीसर)[4]—

यहाँ दो जीवित समाधियाँ हैं—

(१) पूनमदे सती (कुँवारी सती)—यह बापेऊ निवासी किसी बाणी शाखा के जाट की लड़की थी। इसकी सगाई सम्बन्ध बेनीसर के किसी गोदारा के साथ किया हुआ था। दैव संयोग से उस व्यक्ति की सर्प-दंश से मृत्यु हो गई। मनोनीत वर की मृत्यु का समाचार पाकर पूनमदे सती अपने पीहर बापेऊ से यहाँ आकर उसके साथ सती हो गई। कहते हैं सती ने उस समय अनेकों चमत्कार दिखलाये। पूनमदे सती के समाधि स्थान पर पहले शिवरात्रि को जागरण लगता था। पूनमदे सती की पुण्य तिथि प्रतिमास कृष्णा सप्तमी को दूध-दही चढ़ाकर मनाई जाती है। यह घटना १६ वीं शताब्दी की है।

(२) रामी सती—रामी सती का जन्म [illegible] ग्राम में हुआ था। इसके

---

(१) यह बीकानेर डिविजन का सुप्रसिद्ध ग्राम है। यहाँ की बाड़ी में जसनाथजी का सुन्दर मन्दिर है जिसका श्रेय समस्त ग्रामवासियों को है।

(२) इसी दिन पुनरासर, डोबियासर और लिखमादेसर में भी जागरण होता है।

(३) यह ग्राम तारानगर से उत्तर की ओर लगभग ७ कोस की दूरी पर है।

(४) यह ग्राम बीकानेर दिल्ली रेलवे लाइन की छोटी स्टेशन है।

पिता का नाम विरमनाथजी था। ये मंडा शाखा के सिद्ध थे और पहले भर-पाळसर के निवासी थे। सती के भाई का नाम भारूजी था। रामी सती का विवाह वेनीसर के गोदारा शाखा के सिद्ध जालनाथजी के साथ हुआ था, जो बाद में बोलाणी ग्राम में बस गये थे।

रामी सती परम्परा से ही सत्यभाषिणी एवं ईश्वर भक्ता थी। रामी सती को बोलाणी में अपने घर चक्की पीसते समय अचानक ही सत चढ गया, पर घरवालों ने यह समझा कि रामी पागल हो गई है। अत सती को मकान मे बन्द कर बाहर ताले लगा दिये। जब ताले तत्क्षण ही टूट गये तब घरवालों को रामी पर सत चढ़ने का विश्वास हुआ।

रामी सती ने अपने आदि ग्राम वेनीसर मे समाधि लेने का निश्चय कर लिया तो वह बोलाणी से यहाँ आ गई और विक्रम स० १६२१ भाद्रपद शुक्ला तृतीया को उसने समाधि ले ली। इस सम्बन्ध में रामी सती की धायली जसनाथ सम्प्रदाय में बहुत प्रचलित है—

रामी सिवरै स्याम नै, परसण काळल मात।
बारा धूणी धरम री, असत् न भाखो बात।
वेमाता ऊँट बाळिया, कायम लिख्या पुरास।
हर हर कर रामी उठ्या, हिरदै हुयो उजास।
अरज हुई वैकुँठ में, सुर तेतीसाँ कान।
भगत सताया स्याम रा, वेगा जाओ पियाण।
शिव सिंघासण काँपिया, काँप्या श्रीभगवान।
हाथ जोड़ जालम कहै, सुण हो सगत औतार।
राकस धरती पर हरो, चालो थळी मँझार।
(बटै) सुर तेतीसाँ वैसणौं, होवै होम हजार।
भाग थळी जसनाथजी, दुख खंडन सुखधार।
सती सतेड़ा नीकळी, सती कियो सिणगार।
सुर तेतीसाँ वैसणौ, चाल्या थळी मँझार।
छिलर हेव्या तट भर्या, जळ से भरी निवाण।

भ्रम न भीज्यो टेवँता, रती न लागी पाप ।
म्हारी थ पत राखस्यो, थारी श्री भगवान ।
बोळाजी सूँ विदा हुया, एटै लियो मस्दाम ।
पैंलो मेळो परिवार सूँ, मिल्या सगत ईं थाय ।
सनमुख मिलतां भाइयाँ, ये मोळा'स मिलियां फोंय ।
कोई फळ क लगावस्यो, ईं इटै सग माँय ।
तारां-पीहर-साररो, लाम्मण लावां नाँय ।
सायर नर साथै चलो, मूरख चालो'स नाँय ।
सती सवेडाँ नीसर्‌या, अपमै खड़िया ताम ।
मळकीसर रै चौहटै, डेरा दिया है आय ।
स्याम सहेला नीसर्‌या, रुदन कियो मन माँय ।
लागी फेर'स प्रीत री, दिल रहियो मेठाव ।
हाथ जोड़ जालम कहै, सुण दो सगत औतार ।
(म्है) साथै सुरगाँ चालस्याँ, सारै रैंवाँ'स नाय ।
सती सवेडाँ नीसर्‌या, मोम दिवि सा पूठ ।
लालनाथ फिरणी फिरै, भरम राज रा पूत ।
उत्तम धरती थावटी, माँय छिपाया पूत ।
सती वचन यूँ भाखवै, म्हे भाम करां पैकूँठ ।
मार उतारो भाइयाँ, पींगैं स्यामो पलाण ।
भरम चौक डेरा करो, दूर करो केकाण ।
घर सिंगार्‌या साजियाँ, कंचन वरण सरीर ।
मर माड़ूको ओसर्‌यो, नाळा भरिया नीर ।
मेळै आवै मेदनी, मळसर लाग्या पीर ।
सूरज गयो घर आपरै, नैणाँ आई नींद ।
पौ फाटी परगड़ो भयो, सामी सीमा-ज्यूम ।
राता सम नै पूरबै, चौव परवाँसै धूम ।

साद्द थे सुभागिया, टिगस गुंथावो सीस ।
गावो सगत की छावळी, मंगळ विस्वा वीस ।
सती सिधाया सुरग नै, हाथ लियो नारेळ ।
हाथ लियो नारेल, सिमरण सेल स'माया ।
वैठा धारै जोय, गुरु रा जाप सुणाया ।
जपो गायत्री, करो होम, इन्द्र का जाप मनाया ।
लिखमाणों सुवस वसो, हंस गुरु दरसाया ।
वधे पोहर-रिवार, वधज्यो जोत सवाया ।
वधज्यो सासर वास, सिद्धजी रो मान वधाया ।
मंडळ भळकै मिण तपै, सूरज आयो मथार ।
सती वैठा समाध मैं, वूठा इमरत धार ।
सुरग सिधाया देवता, कळा रही संसार ।
सती सवद सुणाविया, (चतरनाथ) सारण कर्‌या विचार ।

अन्य जीवित समाधियां—

उपरोक्त जीवित समाधियों के अतिरिक्त निम्न स्थानों पर भी कई सिद्ध पुरुषों की जीवित समाधियां हैं—

हामेरा	एक	समाधि
राजपुरा	दो	,,
मम्मीसर	दो	,,
चूरस्	एक	,,
मार्थीना	,,	,,
नौहर	,,	,,
ठुकरियासर	,,	,,
सोमलसर	,,	,,
सुमेरियां	दो	,,
सत्तासर	एक	,,
ओलसीसर	,,	,,
रोम		,,
रुपियां	,,	,
दुसारणा	,	,,
बरसिंगसर	,,	,,
बखिवासर	,,	,,
भादवर	,,	,,
लालासर	,,	
नइरामसर	,,	,,
भासासर		,,

परिशिष्ट

'सिमूखड़ा' का सतनाम–सम्प्रदाय में महत्वपूर्ण स्थान है। यह एक प्रकार का विशेषकर सतनामी–साहित्य का एक छन्द है। सतनामी–साहित्य में प्रचलित समस्त सिमूखड़े यहाँ दिये जा रहे हैं। इसका दूसरा नाम डामखार भी है। इनके समय इनका पाठ करना अनिवार्य है। ये सिमूखड़ा' एक विशेष प्रकार की राग की उदात्त ध्वनि में उच्चारित किये जाते हैं।

सिंभू धड़ा

मंगळ-गीत

ओं पाणी मंगळ पोणा बुध, धरती बिसपत सुकरो इन्द।
चन्दो थावर सूरज अदीत, नर वासंनर भणीयैं सोम।
दै देवता करसी होम।
जिण नगरी न जाइये, क्या जाणूँ कुण राह।
परभु थारो व्याहड़ो, अलखे गोरख राव।
दीसँता गुरु बाळा भोळा, बोलन्ता बांवन वीरूँ।
सोइ बाण देवतां सान्ध्यो, सो पण खाँचां तीरूँ।
सीखो खोजो विवरो विनो, खोज लियो गुरु वीरूँ।
गुरु रीखिया री हाल्यो नाहीं, डगर न पायो डांडो।
अकल विहुणा लंमनर हाँडै, जां'रै सत गुरु भयो न खांडो।

(१) ओ३म् यह सर्वाधार सर्वेश्वर पर ब्रह्म परमात्मा का नाम है, ओ३म् मित्येकाक्षरम् (गीता) प्रणव मध्य अक्षर ये तीनों एका (शिव० आ०) विसपत= वृहस्पति। सुकरो=शुक्र। इन्द=इन्द्र। थावर=शनि, शनिवार। अदीत= आदित्य, रविवार। वासनर=वैश्वानर, अग्नि। भणीयै=उच्चारण कीजिये। दै=देवी।, होम=यज्ञ। उस नगरी में मत जाओ जिसका मार्ग सशयशील है। हे प्रभु गोरखराव आपका व्यवहार दृष्टिगोचर नहीं हो सकता। गुरु देखने में तो वडा भोला भाला लगता है पर बोलता हुआ बावन वीरों के समान हैं। विवरो=विवरण करो, विचार करो। विनो=विनय। रीखियाँरी=ऋषियों की। हाल्यो=चला। डगर=पगडडी। डाडो=राजमार्ग। खाडो=सहायक।

गोरख जोगी कथै विचार, ये तत जीतै सातो वार।
आदित वार ब्योरि ले आप, आपा ब्योरत पुनि न पाप।
दुहू पखा सो आरम्भ करै, अनभै करि जमपुर परहरै।
सोमवार ससि पटण भरो, सतगुरु खाजो दूतरि तिरो।

अहंकारे हिरणाकुस खिणो, कियो खण्ड विहंडो।
कलजुग में निकळंगी थायो, (गुरु जसनाथ) जेर अवली थ.णू ऊंडो।
निकळंग ने नित जप हो पिराणी, आयो मार हमारू ।
ताती बीरियाँ ताव न लाग्यो, ठाढी बीरियाँ ठारू ।
निम बीरियें सर न खपियो, जांरे बोहोत हुवा कसवारू।
करणी चूका कवस्यो भूला, से नर पार न पारू
गोरखन.पू खणे'ज खेती, एका खवे इकीसाँ पावे,
एकाँ परले धंधु कार उडावे।
जाणी सो थिन ग्यान उपाई, किंत न चाले मोळा।
धरती अर असमान मिचाळे, स्यूं है पदे सें तोळा।
पातस्या सोही पत मयेसी, खांन खोटां ने खोवे।
गरवा गोरख गुरु कर मानो, आखें ग्यान घड़े।

हिरणाकुस = हिरण्यकश्यप। खिणो = नष्ट। खण्ड विहंडो = टुकड़े-टुकड़े, बुरी तरह से लाञ्छित। थाणू = स्थान। ऊंडो = गहरा। निकळंग हमारू = हे प्राणी। निष्कलंक भगवान का जप (स्मरण) करो बिना नाम जप के आवागमन नहीं मिट सकता। भगवद्प्राप्ति के बिना जन्म मरण के हमारे आव र्तन होते रहते हैं। ताती बीरियाँ = तप्त के समय। ताव = गर्मी। ठाढी = ठण्डी (जोधपुरी बोली में) ठारू = ठण्डा, शीतल। निमबीरियें = सूर्यास्त के समय। कसवारू = हानि। करणीचूका = कर्तव्य-च्युत। कवस्यो भूला = वचन विस्मृत। से नर पारू = उस नर का कोई ठीकाना नहीं। खणे'ज = पैदा करना। (लोकमा) परले = प्रलय। धंधुकार = धनधुन्ध। जाणी = जानने-वाला परिज्ञाता। किंत = कीर्तन, यश। स्यूं है = वैसे। पातस्या = बादशाह। सोही = वही। पत = प्रतिष्ठा। खोटां = बुरा। खोवे = नष्ट कर। गरवा = गौरवशाली। आखें = आवे। ग्यानघड़े = ग्यान रूपी तराजू। इति मीठोम जाप।

★ ★ ★ ★

दसवें द्वारि दीर्घ बंध रो अजराबर थिर हुवे कंध।
मनकठार बन्दे पाया धन आरमा अठे निरंजन देव।

ओ वड़ोते सिंभू सिरजण हार, सर्व रूप कियो विस्तार ।
पाये धरती सीस गणार; ता सिंभू नै निमसकार ।
धरती माता ओपण सिंभू, सर्वा सर्व सहिल्ं भार ।
गिरणा रूपी ओपण सिंभू, तारा मंडल तारो तार ।
चॅंदा रूपी ओपण सिंभू, वाळी मूरत वाळ कुंवार ।
सूरज रूपी ओपण सिंभू, आभ जोत तपै दीदार ।
पाणी रूपी ओपण सिंभू, झर झर वरसै अमी फूंवार ।

(२) वडोत = बहुत बड़ा, विशाल । सिंभू = शमु, शिव । पाये = पाद, पैर। गणार = आकाश । इस पद में भगवान् शंकर की व्यापकता का वर्णन है । समस्त भार को सहन करने वाली माता धरती के रूप में भगवान् शिव शोभा-मान हैं । गिरणा = आकाश । ओपण = शोभायमान। तारोतार = तारक समूह । वाळीमूरत=बालमूर्ति, सुन्दर आकृति । आभ = पानी । जोत = ज्योति, ब्रह्मज्योति तपै = तपता है । दीदार = दर्शन, स्वरूप । अमीं फूंवार = अमृत के फव्वारे ।

पंच पुहुप, लें पूजा करो, मति वुधि ले सिवपुरी संचरो ।
वधिवार मति वुधि प्रकाश, अहि निसि रहिवा जोग अभ्यास ।
दिढकरि लोचन आसापास, सिधि साधो अमरापुरि वास ।
ब्रहसपतिवार विषम मन लिया, ग्यान षडग लिया विग्रह किया ।
अहुठ कोटि दल दीया पयाणा, जम मस्तकि वाजै नीसाणा ।
शुक्रवार सूषिम जलसाधि, लहरि न पसरै सहज समाधि ।
माया मारि मरि थिर जु होई, आत्मा परचै भरै न कोई ।
थिरि थावर जु सनीचर वार, काया मध्ये सातौं वार ।
सतगुरु खाजौं उतरो पार, सुसमवेद सुषमन विचार ।
वेद पुराण पढै चित लाइ, विद्या ब्रह्म कथ थिरि थाइ ।
मछिंद्र परसादै जती गोरख कहै, सप्त वार कोई विरला लहै ।
आदित आंख्या सोम श्रवण, मगल मुख परवाण ।
वुध हिरदै वृस्पति नामी, शुक्र तंद्द्री जाण ।
शनि गुदा वाय राहते मेन, केत ते नासिका रहै ।
सप्त वार नवग्रह देवता, काया भीतरि श्रीगोरख कहै ।

पिसना रूपी ओपण सिंभू, केवट जीमै अलप आहार।
पोणा रूपी ओपण सिंभू, गाजै वाजै हिंयाळी हॉस
सर्वा सर्व सहिल मार।
जुग चोफेरी आप ऊपाना, परलै घु घुकार।
बाहर सिंभू आप ऊपनो, भीतर सिरज्यो सो संसार।
इतरे चिलते जोग'ज ऐणू, म्हे पथ सोहो तिण गुरु लार।
जिण गुरु रो ग्यान पुराणु सराहनवी हे, सुणज्यो दुनियाँ अेह विचार।
अन्त न दीनो भद न पायो, सांत कुहायो अलख अपार।
गुरु परसादे गोरख बचने, (श्रीदेव)जसनाथ(जी) वांचे सारां को सार।

विसना = विष्णु। पोणा = पवन। गाजै वाजै = गर्जन तर्जन। हिंयाळी = हर्षो ल्लास। जुग = जग। चोफेरी = चारों ओर से। ऊपाना = उत्पन्न किया। सो = सब। इतरे = इतने। चिलत = चरित्र, कार्यकलाप। जोग'ज = योग को। ऐणू = कैना। सोहो = अच्छे लगते हैं। तिण = (तिन) उन। गुरु लार = गुरु के पीछे। सरा = निकटवर्ती क्षेत्र। नवी है = झुकी है नतमस्तक हुई।

• • • • • •

ओ पै'ला सिंभू आप अपना, आप रह्या निरकारू।
जोग छतीसों न्यारा रहिया, कुहाया एकू कारू।
धरती माता नीवें रचाई, सीस रच्यो गीगारू।
वैरा पोन'र पाणी सिरज्या, चाँद सूरज दीवारू।
बिरमा बिस्न महेसर हुवा, कीया सब विचारू।
मँडलाई को पड़दो लियो, रूप रच्या ओतारू।
मछ कछ हुँता ईसर हुवा, आप उपावण हारू।
ईसर सिरज्या देवा'र देवता, जहाँ कियो मटकारू।
देतां टोगै देवाँ लाहो, कही न मानी कारू।

(२) पै'ला = पहिले। निरकारू = निराकार। जोग छतीसों = छत्तीसयुग। कुहाया = कहाए। एकू कारू = एकाकार एकात्मा। नीवें = नींव नीचे। गीगारू = आकाश। पोन'र = पवन। उपावणहारू = उत्पन्न करने वाला। लाहो =

मछ कै रूप संखासर छेदयो, सागर कियो खारूं ।
कछ कै रूप झबरख मारयो, कटंक खायो काइ ।
कुरम रूप कलन्दर गायो, मारयो घात सिंघारूं ।
सत जुग आयो हिरणा ढायो, छळ मंड्यो छळ कारूं ।
सिंह्याँ मैह्याँ सर्वे पाले, पाल्या मू'रत वारूं ।
निनाणवैं कोड़ा गढ हाकै ढाया, निरसिंघ री जय कारूं ।
सत जुग में हिरणाकस छेद्यो, तीखि नहर पलारूं ।
सत जुग वरत्यो त्रेता आयो, त्रेता आयो वावन कुहायो ।
भिखे किये भिखारूं ।
वावन रुप छळयो वळराजा, देखळयो चट कारूं ।
परसा रुप सैंसा अर्जुन छेदयो, मारयो खड़क उभारूं ।
घर दसरथ रै जद ओतरियो, लाखे लखण कुवारूं ।
वाण संजोय दुसमण नै वोयो, दसर दाणूं नै मार'र लायो छारूं ।
त्रेता वरत्यो द्वापर आयो, द्वापरआयो कान कुहायो वासक रो असवारूं ।
कान-कळा कंसासर छेदयो, नूरे लखण कुवारूं ।
दस डालम अर सुगड़ो छेदयो, दोड़या कोर'र वारूं ।
हिन्दु अर पारधिया ढाव्या, माहे कीर कहारूं ।

लाभ । कारू =कीर, नीच । खारू =कड़वा । कलंदर=सर्पराज । घात= आघात । सिंघारू =सहार । हिरणा=हिरण्यकश्यप । ढायो=मारयो । मड्यो =मडितहुआ । छळकारू =कपट करनेवाला । सिंहयाँ महयाँ=साहन वाहन । पाले=मनाकिया । पाल्या=वर्जित किया । मू'रत=मुहूर्त । वारू =दिवस, वार । कोड़ा=करोड़ों । हाकै =गर्जकर । ढाया=नष्ट किया । पलारू =धार देने की क्रिया । वावन=वामन-अवतार । भिखे=भिक्षुक । भिखारू =भिखारी । चटकारूँ =चमत्कार । उभारू =उठाकर । ओतरियो=अवतार लिया । सजोय =सयुक्त कर । वोयो=नि शक्त करना । दसर दाणूं =रावण राक्षस । दस . कहारू =इस पक्ति में राजा सगर का विवरण दिया है । सुगड़ो =राजा सगर ।

सुगदो अरज करै सायब नै, स्वामी सुणो पुकार ।
बो'ळा किरत किया उण राजा, नाव रह्यो पण मोखन पायो
अगत्यो गयो गिवार ।
भागीरथ सिव शंकर सेयो, ल्यायो गँग सुधारू ।
जटा मुकट सोह जा हर नै, थीं कियो (मुकुट) जल धारू ।
जद तद गगा सोरम पाटे, दस डालम (सिंभू) जयकारू ।
पुच रूपी पासु पांडु सिरज्या, सास ठाकर हेत पियारू ।
कोड़ अठारा कैरू छोतया, आँ कियो भईकारं ।
द्वापर बरस्यो कलजुग मायो, कलजुग आयो निफळँग कहायो
काळँग रिप किरतारू ।
काळँग रो 'जी' सनकै वासी छेदै, संत उपगारू ।
घोडा घोडा हसम घाले, नाचै घर गैणारू ।
गणा मंडल में तारा नाचै, बणी अठारह मारू ।
एंका बिलंका मेळ मिलाया, उदगर नासैं मेर सणा हथियारू
सिद्द फुळी में फान मणीजै, किसन-कळा किरतारू ।

पुकारू = प्रार्थना । बो'ळा — ज्यादा । मोख — मुक्ति । अगत्यो = अवगति । गिवारू = मूर्ख भामीण । निफळंग — निष्कलंक । काळंग = कलियुग के अन्त में होने वाले महा दानव राक्षस जिसको कल्कि अवतार नष्ट करेंगे । जसनाथी साहित्य में काळंग के सम्बन्ध में काफी विवरण मिलता है । निफळंग परवाण इसी सम्बन्ध में एक स्वतंत्र रचना है । सनकै — सिहरम । उपगारू — उपकारी । बणी अठारा मारू — अठारह प्रकार की वनस्पति । कलियुग के अन्त में होने वाले 'काळंग' राक्षस के मारने को भगवान् छत्रधारी श्वेत घोड़े पर बैठ कर जब आवेंगे उस समय लंका और बिलंका एक हो जावेगी । काळंग का मारने के निमित्त भगवान् उदयगिरि तथा

(१) अठारह और अठारह भार सन्त और लोक साहित्य में वनस्पति के लिए कई बार आता है। कबीर का यह पद मिलाइए — अठारह भार वनासपति कहिए फिर परवत के नर'।

भाग थळी ओतार लियो है, कुणलह अन्त'र पारूं।
खोजिया खोजी रेहु रहोजी, बांचै है ओतारूं।
जुगां जुगां रा दिवें नवेड़ा, अबच वाचणहारूं।
पैलाणै गुरु मोरत भेज्या, पाछैं लखण कुंवारूं।
जपो ईसर ध्यावो गोरख, आप उपावण हारूं।
पांच पूर्व गुरु नांव कुहावै, जप रह्या निरकारूं।
गुरु परसादे गोरख वचने, (श्रोदेव) जसनाथ(जी) वांचैं इमरत
निज सारांई सारूं।

सुमेरू पर्वत का हथियार बनायेंगे। कुण लह=कौन ले सकता है। अन्त'र पारू =अन्त और पार। खोजिया=पद-चिह्न। खोजी=खोज करने वाला (परम तत्व को समझने वाला)। रेहु=रहने वाले। रहोजी=रहगये। नवेड़ा=अन्त। पैलाणैं=पहले।

* * * *

ओं विस्नु ध्याया आव वधै, गोरख ध्यायां रिछा।
ईसर ध्यायां मोख मुगत, चाँद सूरज दो साखी।
ईसर वाचै ओ जुग सिरज्यो, सिरज्यो सब संसारूं।
चवदै भवन घड़या इक घाई, पैला पार अपंपर पारूं।
काया कोठी जीव'ज गढवो, मनस्या मुदै मुदारूं।
सील नगरी गोरखजी बैठा त्रिस्ना थंधु कारूं।
सील सेज में ईसर(जी) (नै) गोरख भेट्या, भळकंतै दीदारूं।
जे नर से नर धरम ज्हाँ पल, करणी चाली–सारूं।

(४) ध्यायाँ=ध्यान करने से। आव=आयु। रिछा=रक्षा। मोख मुगत =मोक्ष-मुक्ति। साखी=गवाह, साक्षी। इक घाई=एक साथ ही। अपपर= अपरम्पार। काया जो है वह तो एक कोठी है और उसमें रहने वाली जीवात्मा एक प्रहरी की तरह है इसमें प्रधान स्पदनकारी इच्छा ही मुख्य है। जिसने शील व्रत लिया उसको भगवान का साक्षात्कार हुआ। भळकतै= चमकता हुआ। जे नर से नर सारू=वे मनुष्य ही वास्तव में मनुष्य हैं

ईसर देव सिधां में साधक, जुग जुग रो ओतारू ।
ईसर जाटे जटवो राजे रजवो, बाणीदे बिणजारू ।
ईसर सारा हुंता खोखर करस्यै, खोखर करस्यै सारू ।
ठाला छलै भरया रितावै, करसी खोट मनारू ।
ईसर लाहे लाख खुदामे खुदायो, आपो है निरकारू
ईसर पीरे पीर दरगाये दरवेस, नित छाजे निरकारू ।
सन्यासी ये सन्यासी, जोगी ये जोगी, सरवदो सरेवदो
आपो है घट धारू ।
ईसर मीठा मेवा ओरां सोंपै, आप चरे बिस खारू ।
ईसर खोटे खोटो असले मोटो, कूड़ा साथ खवारू ।
ईसर आप ही गाजे आप ही गुड़के आप ही बरसण हारू ।
ईसर आप ही, जम आपही जरवाळों आप ही जंवर जिनारू ।
ईसर गास पियाले चक चोफेरी घु घ लियो घु घकारू ।
चान्द सूरज मस्तक ईसररै सीस मळके तारू ।
ईसर वीने दीन मूरते मूरत, चार जिसो दिलवारू ।

जिनके पल्ले (पास) धर्म है और करणी (सुकृति) के अनुसार चलते हैं। ईश्वर जन्म लेकर कर्म को जागृत करता है इस क्रम से ईश्वर के अवतार होते रहते हैं। ईश्वर जाट में जाट स्वरूप है राजा में राजा स्वरूप है और बनिये में वाणिज्य स्वरूप है। सारा = सम्पूर्ण साबत । हुंता = होते हुए । खोखर = खोखला जीर्ण शीर्ण । सारू = सुधारू । ठाला = खाली रिक्त । छलै = भरना। करसी = करेंगे। खोट मनारू = बुरे आदमियों को नष्ट करने वाले हैं। छाजै = शोभा देता है । ओरां = दूसरों को । खोटे खोटो = बुरों के साथ बुरा । असले मोटो = अच्छों के लिये अच्छा। कूड़ा = झूठा मिथ्यावादी । खवारू = क्षय करने वाला। जरवाळों = यमदूत । जंवर = यम । जिनारू = जीव। दरवेस = दरवेश जिसको दर का ज्ञान होगया हो अर्थात ब्रह्म की प्राप्ति होगई है। सन्यासी = जिसे सोऽहं की अनुभूति होगई है स्वयं ब्रह्म है।

ईसर उतरे उत्तर दिखणे, दीखण पूरबे पूरब पिछम है
निरकारूं ।
वण तिण त्रिभण नूर ईसर रो, वणी अठारा भारूं ।
अटकळ परवत नूर ईसर रो, सायर सात पखारूं ।
सुरनुर कोड़ाँ देई देवता, कहिये ईसर गोत परवारूं ।
ईसर'रै कोई खेड़ न खड़वड़, तुरी न ताजी न घोड़ो उलठाणूं ।
धरती अर असमान विचाळैं, भागां न द्यै जाणूं ।
पैलाणै गुरु दैत गडीरयो, आपो है जट धारूं ।
उत्तमे उत्तम खुमसी ईसर, भळ लेसी रजवारूं ।
कूड़ै मन न ध्याय पिराणी, हुय जपियो हुँसियारूं ।
जप्यो ईसर ध्यायो गोरख, आप उपावण हारूं ।
पांच पूर्व गुरु नांव कुहायो, जप रहियो निरकारूं ।
गुरु परसादे गोरख वचने, (श्रीदेव) जसनाथ(जी असली ज्ञान विचारूं ।

घण=वनस्पति । तिण=तृण । त्रिभण=त्रिभुवन । नूर=स्वरूप । अटकळ= अष्ट कुलि पर्वत[1] । पखारूँ=प्रक्षालन करने का भाव । भागा=दौड़ने पर । गडीरयो=गाड दिया, नष्ट कर दिया । खेड़=खेद, चिन्तिमा । खड़वड़=उपाधि । धरतो ... जाणू । धरती और आसमान के बीच अपराधि को ईश्वर विना दण्ड दिये नहीं रहता । खुमसी=खमस, उत्पाति ।

इन सिंभू-धड़ों के विषय में ऐसा मत है कि इनके रचयिता सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के पाटवी शिष्य श्री हारोजी हैं । दूसरा यह भी मत कि हारोजी ने तो केवल गुरु-प्राप्त सिंभू-धड़ों को श्रद्धालु जसनाथी सिद्धों एव भक्तों में प्रचारित ही किया है । वि० सवत १६०५ की एक हस्तलिखित प्रति (क) में

(१) महाभारत के अनुसार कुल पर्वत सात ही है—महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान् ऋक्षवान, विन्ध्य और परियात्र । सभवत योगमार्ग वालो ने हिमवत् को भी उसमें जोडा हो । हिमवत् का सिद्धयोगियो में बडा महत्व माना जाता है ।

(जो हमारे संग्रह में है) पद्य के अन्त में "समाग" के स्थान पर "श्री देव जसनाथजी" ऐसा लिखा हुआ है। अन्य (ख) और (ग) प्रति में भी ऐसा ही लिखा हुआ पाया जाता है। जसनाथी सिद्ध लोग भी पद्यान्त में 'श्री देव जसनाथजी" उच्चारण करते हैं। अपनी ही विशाल रचना में यद्यपि 'जी" लिखना भारतीय संत परम्परा नहीं है, फिर भी ऐसा लिखा गया एवं कथन किया जाता है। इससे तो यही अनुमान लगाया जाता है कि बाद की शिष्य परम्परा तथा प्रतिलिपिकारों ने अपने आदि गुरु के प्रति 'जी" लिखकर सम्मान प्रकट किया है। तीसरे सिंभू-धड़े की पद्य पंक्ति- "भाग बाछी ओतार लियो है कुम्भ श्व अम्ब'र पाळ" ऐसा आभास प्रकट करती है कि संभवतः ये पंक्तियाँ उनके शिष्यों की रची हुई हों किन्तु अधिक जनमत सिद्धाचार्य की रचना के पक्ष में ही है। यही धारणा आगे अंकित कड़ों" के विषय में जाननी चाहिये।

कोड़ां

ओं तंते मंते जोत जगाई, थांके वचने काया उपाई।
मीठो थां सागर सोस्यो, खारो कियो थांई।
प'लै दीपक चन्दो सिरज्यो, सिरजी सिस्ट सुवाई।
दूजैं दीपक सूरज सिरज्यो, सूरज जोत सुवाई।
अंग हुंता ईसर गोरां सिरज्या, गोरख कळा जगाई।
एकैं हाथ न ताळी वाजै, रळ दोय काया उपाई।
मछ कै रूप संखासर वेध्यो, सागर कियो छाई।
कछ कै रूप होय झवरख मारयो, वोह गयो विण आई।
नारसिंघ हिरणाकस छेदयो, सतजुग वार कुवहाई।
कोड़ पनारै टोटै दीनी, पाँचा घर पोंचाई।
पांचा रो मांझी है पहलादो, पहलादै नै मान घड़ाई।
थे उण राजा री करणी हालो, जो मत पार लंघो मोरा भाई।
सो गुरु सदा सिंवर हो पिराणी, थाँरी उमत आव उपाई।
उमत घटती वाचा वधती, जै गुरु गोरख जाग जगाई।
गुरु परसादे गोरख वचने, (श्रीदेव) जसनाथ (जी) वांच सुणाई।

॥१॥ ओं=ओ३म्। तंते=तन्त्र या पंचतत्वादि। मंते=मन्त्र, मन्तव्य। जोत=ज्योति। जगाई=जागृत की। उपाई उत्पन्न। था=आप। सोस्यो=शोषण किया। थाई=आपने ही। सिस्ट=सृष्टि। दूजैं=दूसरे। अंग हुंता=स्वयं आपके होते हुए भी अंग (पिण्ड) पिण्ड राजस्थानी में अपने शरीर के लिए व्यवहृत होता है। गोरा=गौरी, पार्वती। एकैं हाथ= एक हाथ से। ताळा=ताली, करतल-ध्वनि। रळ=मिलकर। विण आई=विना आई, विनाश। कोडपनारै . मान घडाई=भक्तराज प्रह्लाद के सत्सग से पाँच करोड़ मनुष्यों का उद्धार हो गया, उन विमुक्त पुरुषों के नेता भक्तराज प्रह्लाद सम्मान और बढाई के पात्र हैं। आप लोग भी उस राजा के अनुकरणीय (करणी) पदचिन्हों पर चलो। जिस मत पर चलने से (इस भवसागर से) पार हो जाओगे। आव=आयु।

❀ ❀ ❀ ❀

सत जुग बरस्यो त्रेता आयो, त्रेता आयो बावन कहायो
मिखे कियो मिवारू ।

बावन रूप छळ्यो बळराजा, ब्रह्ममुवा दोय भाई ।
रामां रूप दसासिर छेद्यो, लाखणजी नै मान बडाई ।
जुग त्रेता में राव हरीचन्द, खिण धरम किन्या परणाई ।
खिण डीकरडी रो नाव छो असरति, असरत तास अंवाई ।
सांवण बावण राजा सोंप्या, सोंपी आण दुहाई ।
कोड इकाइसों टोटै दीनी, सातों भर पोंचाई ।
सातां रो मांझी राव हरीचन्द, राव हरीचन्द (नै) मान बडाई ।
ये उण राजा री करणी हालो, जो मत पार लंघो मोरा भाई ।
सो गुरु सदा सिंवर हो पिराणी, थारी उमत भाव उपाई ।
उमत घरूडी बाचा बधती, जै गुरु गोरख आग जगाई ।
गुरु परसादे गोरख बचने, (श्रीदेव) जसनाथ (जी) सांच सुणाई ।

॥२॥ बरस्यो=व्यतीत हुआ । रामांरूप=राम के रूप में । दसासिर=दशानन रावण । परणाई= विवाह किया । डीकरडी=लड़की । रो=को । छो=था । तास=उसका ।

★ ★ ★ ★

त्रेता बरस्यो द्वापर आयो, द्वापर आयो कान कहायो
रुखमण साथ चलाई ।

कान कळा कंसासर छेद्यो कंस चाणूर दोय भाई ।
दस बालम भर सुगडो छेदयो, उपर फेरी छाई ।
युध रूपी पांचू पांडू सिरज्या, आं कुन्तादे माई ।
कोड सताईस टोटै दिनी, नवां भर पोंचाई ।
नवां रो मांझी राजा जहुठळ राव जहुठळ (जी) नै मान बडाई ।

॥३॥ रुखमण=रुकमणी । बालम=ईश्वर । जहुटळ=युधिष्ठिर ।

थे उण राजा री करणी हालो, जो मत पार लंघो मोरा भाई ।
सो गुरु सदा सिंवर हो पिराणी, थारी उमत आव उपाई ।
उमत घटती वाचा व्रधती, जै गुरु गोरख कळा सुवाई ।
गुरु परसादे गोरख वचने, (श्रीदेव) जसनाथ(जी) वांच सुणाई ।

× × × × ×

द्वापर वरत्यो कळजुग आयो, कळजुग आयो नर निकळंगी
(श्रीजसनाथ) कहायो जिण धर गणार उपाई ।
पवन पाणी रा हीर ढुळैला, बेदन तोड़ गिड़ाई ।
कोड़ छतीसां टोटै दिनी, वा'रा धर पोंचाई ।
वा'रां रो मांझी गुरु निकळंगी (श्रीजसनाथजी) उण सायव
ने मान वड़ाई ।
थे उण सायव री करणी हालो, जो मत पार लंघो मोरा भाई ।
सो गुरु सदा सिंवरो हो पिराणी, थारी उमत आव उपाई ।
उमत घटती वाचा वधती, जै गुरु गोरख जाग जगाई ।
गुरु परसादे गोरख वचने, (श्रीदेव) जसनाथ(जी) वॉच सुणाई ।

४ बेदन = वेदना ।

× × × × ×

कोड़ा पनारा, कोड़ा इकीसां, कोड़ा सताइस, कोड़ा छतीसों
चोहां जुगां री वांध'र भार ।
कोड़ा निनाणवैं टोटै दीनी, अैता चल्या मन आई ।
जॉनै कड़कड़ करता कीड़ा खासैं, वांटै जंवर वधाई ।
कोई कह म्हारो काको पिता, कोई कह म्हारो भाई ।

५- पनारा = पन्द्रह । टोटै = हानि होना । जॉनै = जिनको । कड़कड़ = क्रोधित होकर । खासैं = खाते हैं । जवर = यम ।

कोई कहै ईसर म्हांई साचा, ईसर देवतमा विड़दाई ।
इमरत सिघ है गोरख नावों, जाँ दये जाँ बड़ाई ।
बिरमा बिस्ना का जी पांचै, चारूं वेद समाई ।
गुरु परसादे गोरख मथने, (श्रीदेव) जसनाथ(जी) पांच सुणाई ।

× × × × ×

कोड़ा पांचा, कोड़ा सातां, कोड़ा नवां, कोड़ा बा'रा,
कोड़ा तेतीसों सुरग पहूँता, एता गुरु फरमाई ।
गुरु परसादे गोरख मथने, (श्रीदेव)जसनाथ(जी) पांच सुणाई ।

इन शब्दों का मुख्य वर्णन है कि सुकृत–कार्य के प्रभाव से प्रह्लाद ने पांच करोड़ मनुष्यों को मोक्ष का अधिकारी बनाया राजा हरिश्चन्द्र ने सात करोड़ मनुष्यों को स्वर्ग पहुँचाया सत्यवान युधिष्ठिर ने अपने सत्य के प्रभाव से नव करोड़ मनुष्यों का उद्धार किया भगवान् कल्कि अवतार (जसनाथी सम्प्रदाय के अनुसार निष्कलंक भगवान् सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी) ने बारह करोड़ जीवों का उद्धार किया ।

भगवें का मन्त्र—

ॐ ब्रह्मेति विचार लखाया
अणहद वाणी सबद सुणाया
जो खट भग भगवान उपाया
कर भगवाँ भगवान दिराया
एश्वर्य जस धरम सु पाया
लिछमी ग्यान विराग लखाया
एश्वर्य चादर जस जळ धोई
ग्यान गेरू कर रगत होई
लिछमी विद्या रूप सुवाई
धरम गुरू निज ग्यान लखाई
त्याग विराग जोग सु पाया
श्री गुरू गोरखनाथ सुणाया
या भग से भगवा सिध होया
सो सिध जोग जुगत कर जोया
जसोनाथ गुरू देव लखाया
भगवा जाप सु पूरण माया

धागा मन्त्र—

ॐ कार मे धागा आया
तीन लोक धागे में पाया
धरम धागे करूआ विचारा
तीन लोक मे धागा न्यारा
जो राखै धागै री आस
सो पावै वैकुण्ठा वास
धागा मन्त्र सपूरण भया
श्री गोरखनाथजी जसनाथ नै केंया

भोत्र का मन्त्र—

दिगपाल देवता सबद बिसम हाय
पवन राजा भोत्र का ध्यान प्राप जोय
भोत्र मन्त्र सम्पूरण भया
श्री गोरखनाथजी जसनाथ ने कैंया

नीसाण का मन्त्र—

मत रा नेजा सबद नगारा
सुमरथा सुखवाँ ध्यान विचारा
अभकर संक सुरंगी सारा
गोरख बचने जसवंत पारा

फुम्पोजी—

ये आलसर ग्राम के वासी के राजपूत थे और हाँसोजी के शिष्य थे
उदाहरणार्थ इनका एक 'सबद' यहाँ उधृत किया जाता है.—

सतजुग पै'ली सावथा हम कैथ बसंदा
अमट पमट बरती हुई जद केथ रहंदा
अखत जुग ऐडे रिया कम कार रचंदा
ईडो फोड हर नीसरया घर धाम रचंदा
गीरी मेर गोवल चराया स्वामी ध्यावंदा
जाग बतीसूं साधिया पग एक जईदा
पलक वधाड़ो परम गुरु, अरजन पूजंदा
चम्पू चार नैं सुमरै कोइ जुग धरपंदा
मैं तनैं बूझूं अरजनां जुग काम सहंदा
मन ता स्वामी खेयमी जुग अखत बहंदा
अरजन मुकट सम्भाळियो आयस सिकसंदा
ममस्या फारी माहुवै, मन आयत करंदा
मैं तनैं बूझूं अरजनां एक अगम रहंदा
गुरु दरवाजा मले—बद हम मूं आवंदा

पाणी ऊपर हालणूँ, नखतर जोवदा
निरगुण पार उतरे, पापी डूबदा
अरजन रिख भेळा हुआ, वातॉ वूझदा
मै तनै वूझूँ अरजनॉ, तू क्यूँ आवदा
हम को हरजी भेजिया, तम को तेडदा
पॉव पसारया परम गुरु, माटी काढदा
गोडे ऊपर गोमदै, एक पतर घड़दा
चावळ लेहर चाढिया, तळ आग जळदा
भात परूसै परम गुरु, तीनूँ जीमदा
सतजुग पी'रो थरपियो, जुग जाप जपदा
तिरपत हुआ देवता, मै छावूँ छदा
कर जोडै कूंपा भणै, जुग थारा वदा

सिद्धाचार्य के आविर्भाव सम्बन्धी—

सुरता अलेख सरेविये, कीजै हर का जाप
जिभिया हर गुण गाईये, कटै काया का पाप
मनस्या रूपी माहुवा, खोल'र देखो ताक
भेळा इतरा पॉतर्‌या, जसवँत जाण्या जाट
जुग सिरज्यो, जोडो रच्यो, मनस्या देवा साथ
देव'र दाणों निरदळ्या, खडग बजाई हाथ
सिम्भू री चढा, गुरु गोरख नव नाथ
थळ-सर आसर थरपियो, मात सती जसनाथ
सं'वै बामण हर नॉव रो, से नर आवै जात
कर जोडै सुरतो भणै, जाग जती जसनाथ

विपरीत मान्यताओं के खण्डन-रूप में सिद्ध देवोजी ने यह 'सबद' ज्योतिषियों को कहा —

पढियाँ आगे वीनती, अरज करू अरथाय
दुग मत पावा देवजी, वूझूँ भोळै भाय
गैं'ण लेवो असमान रा, लीन्यो जुग भरमाय

जेसोजी के विचार—

चाऊ माहीं चायवो, श्रो देवाँ रो गाँव ।
अलख निरंजन ओतर्‌या, नारायण निज नाव ।
गिगन गढ़ै री मेखळो, धरण दुलीचा ठाँव ।
सीत सति अर सारदा, आया लिछमण राम ।
भरत चतर घिन आविया, सन्ता सार्‌या काम ।
हुणवत हीडा सारिया, लिखिया वह विराम ।
जेसोजी जस भाखिया, मनस्या राखो मान ।

ऐतिहासिक तथ्य—

थळी, प्र० अ० पृ० १०, इस भूखण्ड का नाम, प्राचीन काल में यह था। कतरियासर से तीन कोस की दूरी पर उत्तर की ओर ऐसे अवशेष अब भी प्राप्त होते हैं, जिनसे स्पष्ट जाना जाता है कि पहले यहाँ कोई बड़ा शहर था। कतरियासर के किसी किसान को एक बार यहाँ हल चलाते समय एक मिट्टी के वर्तन का टुकड़ा (ठोकरी) मिला था, जिस पर 'भागनगर' लिखा हुआ था।

श्याम पाण्डिया — प्र० अ० पृ० १३ श्याम पाण्डिया के सम्बन्ध में राजस्थान के बडे बूढ़ों की जबान पर अनेकों अलौकिक संस्मरण थिरकते रहते हैं। ये अपने समय के लोकप्रिय जननायक हुए हैं। इनके विषय में यह प्रसिद्ध है कि इन्होंने जयपुर महाराजा के आमन्त्रण पर एक ऐसा वृहद् यज्ञ किया था, जिसके फलस्वरूप विधर्मी सल्तनतें नष्ट हो गईं। यह भी प्रसिद्ध है कि इनकी धोती आकाश में निराधार सूखा करती थी। ये 'का'यल' पाण्डिया थे। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक इन्हीं श्याम पाण्डिया के वशज हैं।

मघानाथ पोळिया—प्र० अ० पृ० १५। ये कतरियासर के भूतपूर्व सिद्धजी सुखनाथजी के शिष्य थे।

चौरासी बाड़ियाँ—अ० प्र० पृ० १६। 'जसनाथ-सम्प्रदाय' की मुख्य बाड़ियों की सख्या चौरासी ही मानी गई है। पूर्वकाल में चौरासी सिद्धों ने अवतरित होकर इनकी स्थापना की थी।

कतरियासर मडल के नीचे निम्न गाँव है —

(१) ऊपनी (२) ऊटाळड

बम्बलू मडल के बचे हुए ग्राम—

(१) तेजरासर (२) लाछड़सर

लिखमादेसर मडल के बचे हुए ग्राम —

(१) सुमेरिया (२) काळूसरिया (३) टूकरियासर (४) मत्तासर (५) बनेहू (६) लूणासर ।

पूनेरासर मडल—

(१) ज्याक (२) दुसारणा (३) बाडडिया (४) मळकीसर ।

मालासर-पाँचला मडल— (१) पूनार

परमहँस मंडली—

जसनाथ-सम्प्रदाय में विरक्त संतों की मडली परमहँस मडली के नाम से प्रसिद्ध है। इस मडली में अनेकों ऐसे सत पुरुष हुये हैं, जिनके अलौकिक एव सुखद संस्मरण लोगों की जबान पर आज तक ताजा हैं। प्रारम्भ में इस सम्प्रदाय में दो प्रकार की विरक्त मडलियाँ थीं, दुग्धाहारी मडली और परमहँस मडली। दुग्धाहारी मडली खेतनाथजी के बाद समाप्त हो गई। दुग्धाहारी मडली के सत लिखमादेसर की बाड़ी में ही अधिक रहे। खेतनाथजी की जीवित समाधि लिखमादेसर की बाड़ी में ही हुई, जिसका वर्णन आ चुका है। विद्वता की दृष्टि से परमहँस मडली के सत बहुत प्रसिद्ध हुये हैं। वर्तमान परमहँस मडली के मुख्य सत से परमहँसों की यह परम्परा हमे प्राप्त हुई है, जो निम्न प्रकार है —

श्री कुम्भनाथजी के शिष्य लालनाथजी हुए और लालनाथजी के शिष्य समर्थनाथजी हुये। इन्होंने लाल्हासर ग्राम में तप किया। वहीं इनकी जीवित समाधि हुई। इसी परम्परा में बाद में खेतनाथजी नाम के परमहँस महात्मा के शिष्य श्री भावूनाथजी (विरक्तनाथजी) हुए। और इन्हीं भावूनाथजी से परमहँस मडली का अधिकाधिक विकास हुआ। ये बड़े विद्वान और वीतराग सत थे। भावूनाथजी के शिष्य पजाब के निवासी मुक्तिनाथजी

हुये। ये बड़े भारी दिग्गज विद्वान् थे। इन्होंने 'सर्वस्व संग्रहसार' नामक वेदान्त विषयक ग्रंथ का सम्पादन किया। यह ग्रंथ हस्तलिखित रूप में कैलाश आश्रम हृषिकेश में सुरक्षित है। मुक्तिनाथजी के दो शिष्य हुये श्री लक्ष्मीनाथजी और भगवाननाथजी। लक्ष्मीनाथजी बड़े भारी विद्वान थे। इसीलिये विद्वान सत मंडली में उनको पंडितजी के नाम से पुकारा जाता था। भगवाननाथजी के अनन्य शिष्य हुये जिनमें बलभनाथजी धर्मनाथजी मेघनाथजी शम्भूनाथजी निमलनाथजी आदि मुख्य संत हुए। मेघनाथजी के दो शिष्य हुए। प्रथम सुप्रसिद्ध मंगलनाथजी ये भारत के उच्च कोटि के संत और चोटी के विद्वान थे। इनके दो ग्रंथ प्रसिद्ध हैं— 'विचार-विन्दु' और 'वीर विजय'। ये दोनों ही संस्कृत के वेदान्त विषयक ग्रंथ हैं। दूसरे गुलाबनाथजी ये दौसरा नाम के थे और सिद्ध महात्मा थे। भावूनाथजी के एक शिष्य ज्ञाननाथजी नामक हुए। ये नागा पुरुष थे। ज्ञाननाथजी के मोतीनाथजी शिष्य हुये। मोतीनाथजी ने कालायत में बहुत वर्षों तक तप किया। 'मोतीनाथजी का धोरा' नामक एक विशाल भवन इनके नाम पर बना हुआ है।

जसुनाथजी—

ये कतरियासर के टीकाई महन्त थे। इनके पिता का नाम हीराम नाथजी था। इनका देहान्त सम्वत् १६३६ में हुआ। बीकानेर नरेश महाराजा श्री डूँगरसिंह ने सिद्धों से जमीन की लगान मांगी। सिद्धों के प्रतिनिधि के रूप में श्री जसुनाथजी ने रकम देने से इन्कार कर दिया। डूँगरसिंहजी इस बात से बड़े कुपित हुए और सिद्धों को सताना प्रारम्भ किया और जसुनाथजी को पकड़कर जेल में डाल दिया। जसुनाथजी ने बीकानेर रियासत में आजीवन अन्न ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा की। जसुनाथजी के शाप से डूंगरसिंह कुष्टि हो गये तब उन्होंने जसुनाथजी को मनाया तथा राजी करने की चेष्टा की। दयालु सिद्ध ने महाराजा पर कृपा की। जसुनाथजी के सम्मान में महाराजा ने सिद्धजी को हाथी पर बैठाकर जुलूस निकाला और ११०० रुपये उनके भेंट किये। जसुनाथजी और डूँगरसिंहजी के विषय में यह प्रसिद्ध है—

जसुनाथ— तन दरसण नै लूंठ सताया और बिगाड़्या माई
डूँगरसिंह— अब बाबाजी क्यों रुसाई राजी नहीं भाई

जसुनाथ— अन मुखड़ै जद घालाँ राजा, जलम दूसरो धारों
गुरुदेवा रा होवों होसियारी, लाज भेख नै मारों
डूँगरसिंह— कै वो तो बाबा भेख करास्या, खरच राज सूँ भरस्यों
अब को गुनो माफ करीजै, भळ भगवें सूँ डरस्यों
जसुनाथ— गुनो राजा माफ नहीं है, बणी अनीती खाई
डूँगरसिंह— हाथी हिंवर गुरु नै बगस्या, ऊपर चँवर ढुळाई

हरनाथजी के शेषांश 'सबद' की पंक्ति—

नीन्द भर सोवो (काई) भाविया, करो अलेख सनेहो।
सूरत मूरत पारकी, जाँरा ओजस केहो।
कुण थारा वागो वँतियो, कारीगर केहो।
घागै चोळी ऊपरै, फाटैली जेहो।
हँस काया सूँ ढळ पड़ै, आ विणसै देहो।
माटी में माटी मिलै, हुय उड़ै खेहो।
हरनाथ (जी) हर नै वीनव, स्यामी सरण रखेओ।

परम्परा : साहित्यिक : सांस्कृतिक महत्व : विकास और प्रसार

मूल ग्रंथ में भली भाँति बताया जा चुका है कि सिद्ध-सम्प्रदाय का आविर्भाव सिद्धाचार्य भगवान् श्री जसनाथजी द्वारा हुआ था। उन्होंने लोक-कल्याणकारी छत्तीस धर्म-नियमों का प्रतिपादन कर अपने ज्ञानयोग से राजस्थान की धरती को प्रकाशवान किया था। गुरु गोरखनाथजी से दीक्षित शिष्य द्वारा प्रतिपादित होनेके कारण,'सिद्ध-सम्प्रदाय' 'नाथ-सम्प्रदाय' से सम्बन्धित है, किन्तु नाथ-सम्प्रदाय की तरह विभिन्न परिपाटियों को स्वीकार न कर अधिकाधिक वैष्णवी विशिष्ट मान्यताओं को ही अंगीकार किया है।' सिद्ध-सम्प्रदाय को माननेवाले दो प्रकार के लोग हैं, पहला वर्ग 'सिद्ध नाम से सम्बोधित किया जाता है तथा दूसरा वर्ग 'जसनाथी-जाट' कहलाता है। इन दोनों वर्गों की मान्यता और धर्म पालन की परिपाटी एक

गर्व है। विशुद्ध राजस्थानी भाषा में रचित यह साहित्य अत्यन्त प्रभावशाली एवं ज्ञानगम्य है। 'जसनाथी-साहित्य' में धर्म-प्रचार, नीति उपदेश और विशुद्ध लोक-साहित्य की सर्जना हुई है। इस प्रकार इस साहित्य का कई भागों में विभक्त कर जनमन के समक्ष रखा जा सके तो यह विशेष उपयोगी सिद्ध होगा। शोधकों एवं अन्वेषकों का ध्यान इस ओर जाना वांछनीय है।

राजस्थान का लोक-साहित्य संसार भर में अपने सरस एवं सुरुचि पूर्ण भाव के लिए प्रसिद्ध है। जसनाथी-साहित्य' भी राजस्थान का लोक साहित्य ही समझा जाना चाहिए, क्योंकि इसमें लोक-साहित्य की समस्त भाव धारायें प्रस्फुटित हैं। अब तक विद्वानों एवं जनसाधारण की दृष्टि में यह साहित्य न आने के कारण प्रसिद्ध नहीं हो सका पर राजस्थान के गाँवों में तो इसकी पर्याप्त प्रसिद्धि एवं मान्यता है।

इसी प्रकार जसनाथ सम्प्रदाय का सांस्कृतिक धरातल भी बड़ा मजबूत एवं समृद्ध है। जसनाथी सिद्धों का अग्नि नृत्य', मेले और जागरण पर्व इत्यादि तथा नारी पुरुषों के रंगीन परिधान उनकी संस्कृति के प्रतीक हैं। मनुष्य की सुकामल भावधारा इस संस्कृति की लोक में एकाकार हो कुछ क्षण के लिए चैतन्य उल्लास में मुग्ध होकर बह जाती है। जसनाथ-सम्प्रदाय के इन सांस्कृतिक प्रतीकों में सहज आकर्षण है और है जीवन का सन्देश आध्यात्म के चिरंतन चैतन्य का दर्शन मनुष्य जीवन की सुकुमार कलाभिरुचि और जीवन-दर्शन का गूढ़ निवेदन। मानवता का विकासोन्मुख सांस्कृतिक पर्व भोले ग्रामीणों को नई चेतना नई प्रेरणा नई जीवन-दायिनी शक्ति और नवीन उल्लास प्रदान करता है। विभिन्न मासों में मेला इत्यादि पर्वों का उल्लेख किया जा चुका है कि किन किन अवसरों तथा तिथियों पर ये पर्व मनाए जाते हैं लेकिन कतरियासर, बम्बलू, लिखमादेसर पूनरासर पाँचला सिद्धों का इत्यादि स्थानों के मेले अति प्रसिद्ध हैं।

मेलों के इन पुनीत अवसरों पर सिद्ध-सम्प्रदाय के लोग मन्दिर एवं समाधियों के पावन दर्शनों के साथ २ हवन भी करते हैं और घृत आदि पवित्र वस्तुएँ अपने इष्ट को चढ़ाते हैं। इन अवसरों पर ये लोग एक विशेष नृत्य का

आचमन कर अपने धर्म-नियमों को दोहराते है तथा पालन करते रहने का संकल्प करते रहते हैं। मनसा, वाचा, कर्मणा जो इस धर्म को ग्रहण नहीं करता उसको यह आचमन नहीं दिया जाता।

छींट इत्यादि रंगीन चमकदार वस्त्रों को धारण कर स्त्रियों के झुण्ड के झुण्ड मेलों में दिखलाई पड़ते हैं। सिद्धों की स्त्रियाँ एक विशेष प्रकार का परिधान धारण करती हैं, जिसको 'विलायती भाँत' की छींट का घाघरा कहते हैं। लोक-गीतों को गाती हुई, मेले के आनन्द का उपभोग करती हैं। स्त्रियों के लोक-गीतों में 'जसनाथजी री नै सतीजी री छावळियाँ' अति प्रसिद्ध एवं कर्ण प्रिय गीत हैं।

स्त्रियों की भाँति पुरुष भी पूरे लोकगायक एवं लोकनर्त्तक हैं। मीठे 'सबद', वाणी तथा अन्यान्य प्रगीतात्मक ध्वनियों से धरती और आकाश को मुखरित कर देते हैं। गायक नगाड़ा और नगाड़ी वाद्यों पर गाते हैं। प्रथम बड़ी राग से 'सबद' शुरू होते हैं—'मोवण्या थे रळमिळ चालो, ज्यूँ कूँजा री डारे' और सचमुच ही ऐसी अनुभूति होती है कि इनका संगीत-नृत्यमय मधुर जीवन-दर्शन देखकर, सब हिलमिल कर चल रहे हैं, जैसे क्रौंच पक्षियों की कतारें।

अग्निनृत्य—

सिद्धों की संस्कृति का सबसे बड़ा प्रतीक है अग्निनृत्य, जिसे देखकर आँखें विस्मय से विस्फारित रह जाती हैं। सिद्ध-सम्प्रदाय का यह लोकनृत्य बड़ा ही दर्शनीय है।

यह नृत्य, अग्निनृत्य के नाम से पुकारा जाता है। राजस्थान में प्रचलित समस्त लोकनृत्यों मे यह अभूतपूर्व लोकनृत्य है। राजस्थान को ही नहीं, समस्त भारतवर्ष को इस नृत्य पर गर्व करना चाहिये। सैकड़ों मन लकड़ियों को जलाकर अंगारे तैयार किये जाते हैं। उन दहकते हुए अंगारों के ढेर पर यह नृत्य सफलता पूर्वक सम्पन्न होता है। अंगारों के ढेर का माप ७ फुट लम्बा, ४ फुट चौड़ा एवं ३-४ फुट के लगभग ऊँचा होता है, किन्तु सुविधानुसार यह माप संकीर्ण तथा विस्तृत भी किया जा सकता है। प्रारम्भ

में छ आदमी होते हैं जिनमें से एक आदमी नगाड़ों की जोड़ी को हथेली से बजाता हुआ ओंकार-ध्वनि जैसा आलाप करता है अन्य पाँचों आदमी दो अलियों में विभक्त होकर 'मजीरा' बजाते हुए इस आलाप को उठाते हैं। इनका मजीरा एवं नगाड़ा बजाने का ढंग निराला है।

सर्व प्रथम नर्तक सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के (सबदों) पदों को गाते हैं। तीन सबद गा चुकने के बाद सिद्ध श्री रुस्तमजी के साखियों पद गायन के साथ नृत्य नाचने का करते हैं इससे पहले अग्नि-ढेर के चारों ओर पानी छिड़क दिया जाता है तथा अपनी इष्ट मनौती के लिए शुद्ध घृत का हवन भी करते हैं। तत्पश्चात् नर्तक अपनी 'साम' छोड़ने लगते हैं। इनके नृत्य का तौर-तरीका बड़ा ही स्वाभाविक है। नृत्यकार काफी देर सारी पृथ्वी पर नगाड़े के आगे नाचते रहते हैं, जैसे ही राग की ध्वनि और नगाड़े की ताल की गति बदलते हैं वैसे ही ये लोग उस विशाल अग्नि-ढेर (धूणों) में कई बार प्रवेश करते हैं और निकलते हैं किन्तु इन्हें नगाड़े की थापी का बड़ी सावधानी से ध्यान रखना पड़ता है। क्योंकि थापी चूक जाने से जल जाने का भय रहता है। अंगारों को हाथ में लिए रखना तथा छोटी २ चिनगारियों का मुँह में डालकर दर्शकों की ओर फैंकना कौतूहल पैदा करता है। कभी २ ये लोग बड़े बड़े प्रज्वलित अंगारों को दाँतों से भी पकड़े रहते हैं और फूँ-फूँ करते छोटी छोटी चिनगारियाँ फैंकते हैं। अग्नि-ढेर में बैठकर बड़े २ अंगारों को हथेली में रखकर 'मतीरा' फोड़ने का प्रदर्शन पैरों से साँप की तरह अग्नि ढेर को कुरेदना इस नृत्य के आश्चर्यजनक भाव हैं।

अग्नि-नृत्य के प्रचलन के बारे में सम्प्रदाय में अभी कुछ मतभेद है। कुछ लोग सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी द्वारा और कुछ सिद्ध रुस्तमजी द्वारा इस नृत्य के प्रचलन की बात कहते हैं—लेकिन अभी तक कोई खास प्रमाण दोनों के विषय में ही प्राप्त नहीं हो सका है।

विकास : प्रसार—

सिद्ध-सम्प्रदाय काफी विस्तृत हो चुका है। सिद्ध-सम्प्रदाय के लोगों की संख्या इस समय दस लाख के लगभग है। बीकानेर-जोधपुर इसके मुख्य

क्न है, जहाँ पर सिद्ध लोग रहते हैं। सिद्धों के घरों की संख्या १५०० के लगभग है। 'सिद्ध-सम्प्रदाय' का प्रसार भी विकास की भाँति काफी हो चुका है। राजस्थान के अलावा कच्छ, भुज, पजाव, हरियाणा, मालवा आदि अन्यान्य प्रदेशों में भी 'सिद्ध-सम्प्रदाय' के लोग बहुतायत से रहते हैं। इस प्रकार 'सिद्ध-सम्प्रदाय' एक विकसित एव समृद्ध सम्प्रदाय है।

आधुनिक कवियों की सिद्धाचार्य के प्रति श्रद्धाञ्जलि—

आधुनिक कवियों के हृदय में भी सिद्धाचार्यजी के प्रति पूरा पूरा प्यार है। श्री किशोर कल्पना कात ने कुछ कवितायें इनके सम्बन्ध में लिखी है, जिनमें से दो नीचे दी जाती हैं —

(१)

मरुभोम जलम मरुवाणी में मत मारू मरम बतावणिया
मुरधर नैं सुरग बणावणिया
जलम्या जद थें जुग जोत जळी
हरखी हिवड़ा री कळी-कळी
हरखी मुरधर री गळी-गळी
कंठा में मत री कड़ी पळी
जसनाथ जलमिया धरती पर मिनखा नै गैल दिखावणिया
मुरधर नै सुरग बणावणिया
जीभड़ल्यां अब भी जस गावै
नीं सत पुरस नैं बिसरावै
आसोज सुदी सात्यूँ आवै
जद म्हारो तन मन मो गावै
थे सिद्धराज हा धरती रो, हरजम सू कष्ट मिटावणिया
मुरधर नै सुरग बणावणिया
अब और जलम मत राखणिया
अब और जलम पत राखणिया
अब और जलम मिथ साधणिया
अब और जलम नित जागणिया
नुच मारू मिरज मायत रा थें दिपनै रा मा ज्यूं चानणिया
मुरधर नैं सुरग बणावणिया